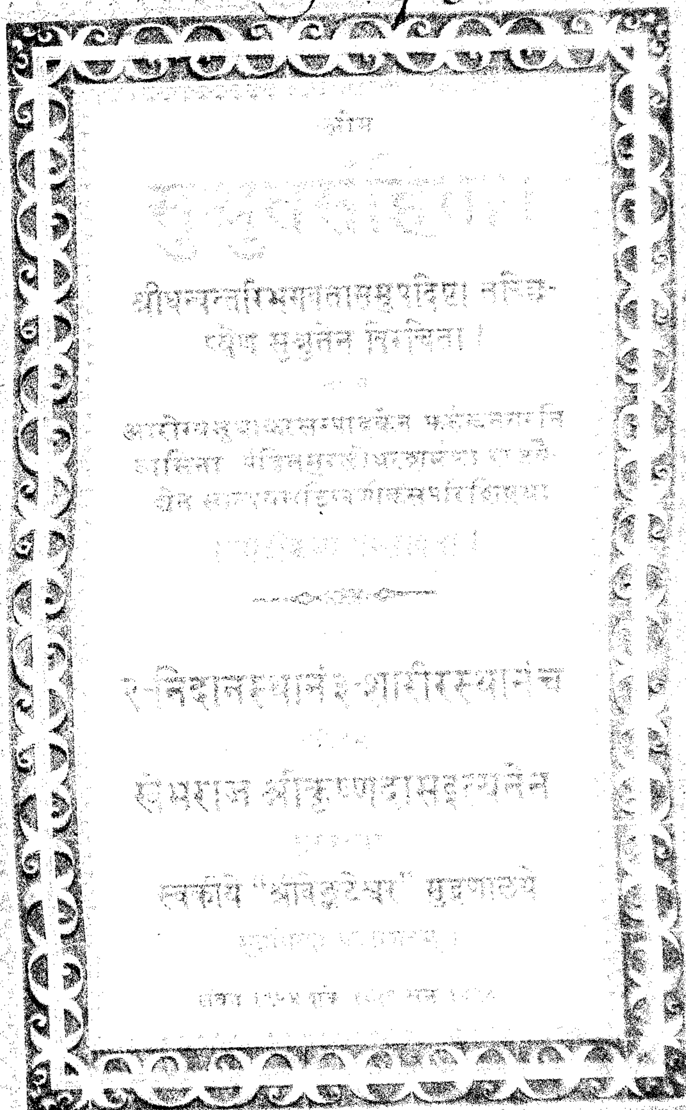


ओम्

सुश्रुतसंहिता।

[illegible]
सुश्रुतेन विरचिता।

[illegible]

[illegible]

निदानस्थानं शारीरस्थानं च

क्षेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

[illegible]

[illegible]

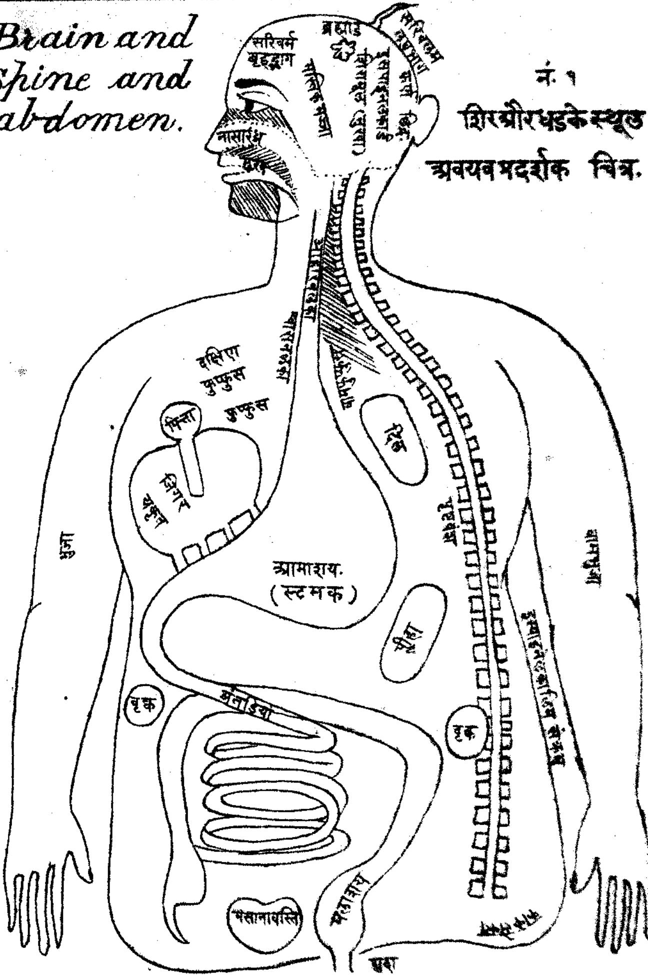
भूमिका।

प्रायः [illegible] है कि [illegible] शरीर [illegible] तक [illegible] है ॥

[illegible] आदिकी रक्षा [illegible] विचार [illegible] लिखित की।

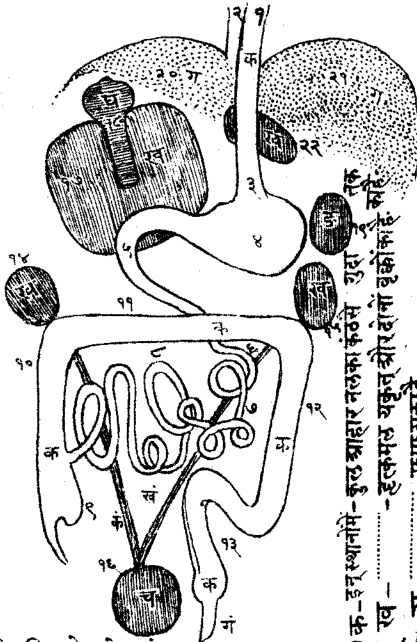
यद्यपि [illegible] लिखे गये हैं [illegible] सुज्ञान [illegible] और [illegible] कि [illegible]

[illegible]


Brain and Spine and abdomen.
नं. १
शिर और धड़के स्थूल अवयव प्रदर्शक चित्र.
सरिवर्म बृहद्भाग
नासारंध्र
दक्षिण फुप्फुस
फुप्फुस
पित्त
यकृत
जिगर
भुजा
आमाशय. (स्टमक)
प्लीहा
वृक्क
वृक्क
मसानावस्ति

अंत्र (आंतडे) प्रदर्शक चित्र जिसमे कंठसे मलाशयतक कुल आहार नलका (एलीमेंटरीकनाल *Alimentary Canal*) का स्फुट आकार है.

१ और २ के अंक का स्थान कंठ है जहा ये दोनो नालियां १ आहार नलका और २ श्वासनलका जुदी हुई है.

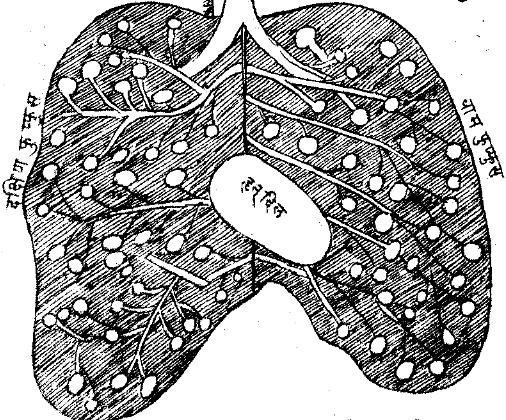


क – इन स्थानोंमें – कुल आहार नलका कंठसे गुदा तक है.
ख – .... – हृत्कमल यकृत और दोनों वृक्कोंका है.
ग – .... – फुप्फुसका है.
घ – .... – पित्तेका है.
ङ – .... – प्लीहाका है.
च – .... – मूत्राशय और मूत्रनलकाओंका है.

इस चित्रमें १ के चिन्हसे ३ के अंक तक आहार नलका *Esophagus* है ४ आमाशय *Stomach* है. ५ से ६ तक तन्वंत्रका ऊपरीभाग. ७ यहजिज्यूनम और ८ एलिअम इनतीनोको तन्वंत्र बारीक आंतें *Small Intestines* कहते है. ९ इसे स्थूलांत्रका अधोभाग - सीकम और १० यह एसिंडिंग कोलन और ११ ट्रांसवर्स कोलन १२ डिसेंडिंग कोलन कहलाती है. इनको स्थूलांत्र मोटी आंतें *Large Intestines* कहते है - १३ को मलाशय *Rectum* कहते है - १४-१५ ये दोनो वृक्क *Kidney* है १६ वस्तिमूत्राशय *Bladder* है १७ यकृत *Liver* है १८ पित्ता *Gall-bladder* है. १९ प्लीहा *Spleen* है. तथा जहां २ का अंक है वह कंठकी दूसरी श्वासनलका TRACHEA है. २० और २१ ये दोनो फुप्फुस *Lungs* हैं. और २२ यह हृत्कमल *Heart* है तथा क और ख दोनों मुख्य मूत्रनली है. और "गं" गुदातथा मलद्वार है.

फुप्फुस-फेंफडोंकाचित्र.

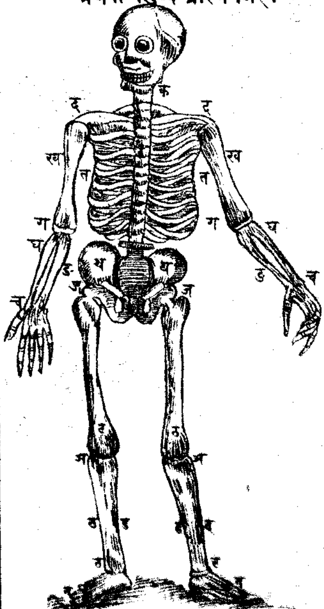
अँगरेजीमें फेफडोंको लंग्स कहते हैं और अरबीमें रीया कहते हैं- बाहरका वायु श्वासद्वारा इसीमें प्रवेश करता है. (*Lungs*)

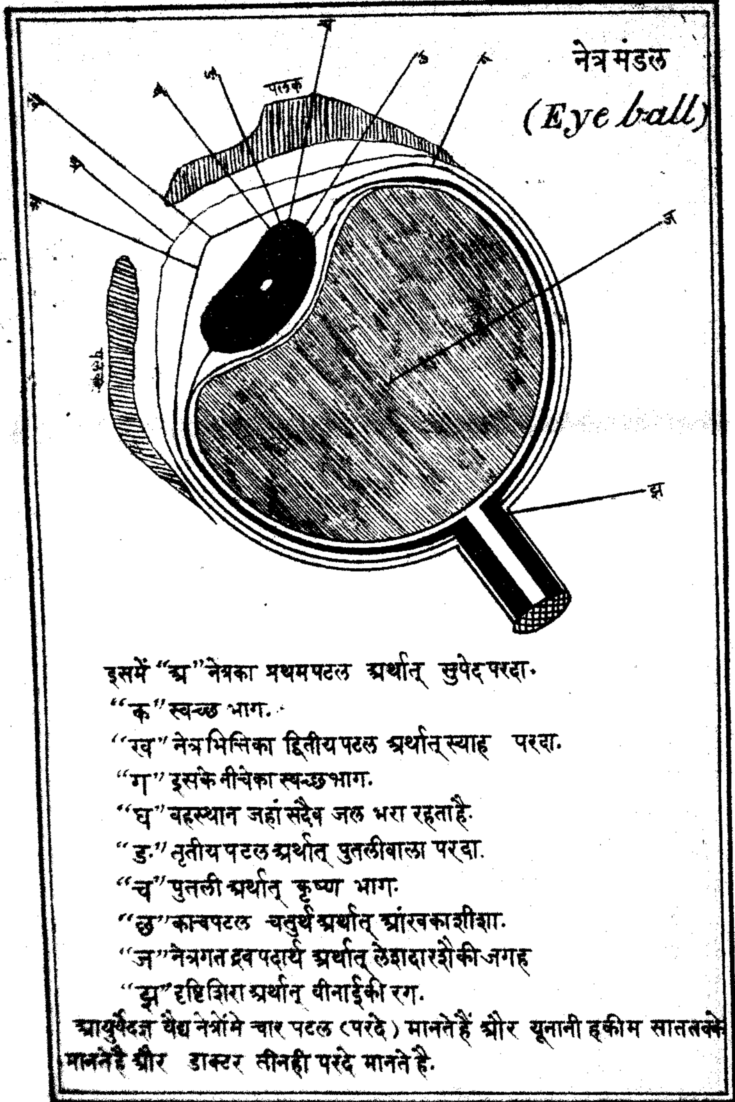


इसमें जो श्वास नलका है यह आहार नलकासे जुदी है अर्थात् यहश्वास नलका अगाडी होती है. और इससे पीछे आहारनलका दूसरी होती है जो मुहसे आमाशय को जाती है.

नरकङ्काल. (*Skeleton.*)

अथवा मनुष्य अस्थिपंजर.





इसमें "अ" नेत्रका प्रथमपटल अर्थात् सुपेद परदा.

"क" स्वच्छ भाग.

"ख" नेत्र भित्तिका द्वितीयपटल अर्थात् स्याह परदा.

"ग" इसके नीचेका स्वच्छभाग.

"घ" वहस्थान जहां सदैव जल भरा रहता है.

"ङ" तृतीय पटल अर्थात् पुतलीवाला परदा.

"च" पुतली अर्थात् कृष्ण भाग.

"छ" काचपटल चतुर्थ अर्थात् आंखका शीशा.

"ज" नेत्रगत द्रवपदार्थ अर्थात् लेशादारशै की जगह

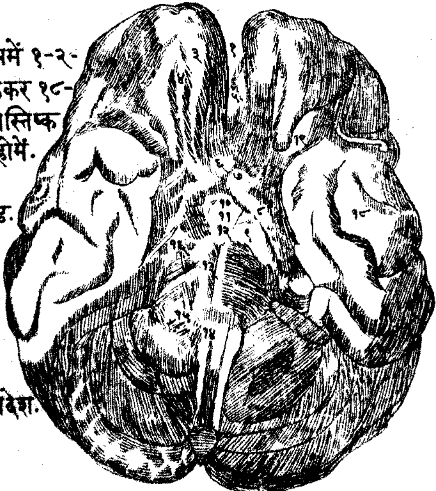
"झ" दृष्टिशिरा अर्थात् बीनाईकी रग.

आयुर्वेदज्ञ वैद्य नेत्रोंमे चार पटल (परदे) मानते हैं और यूनानी हकीम सात तबके मानते है और डाक्टर तीनही परदे मानते है.

मस्तिष्क संबन्धिचित्र. (*Brain*)

इस मस्तिष्क संबंधी चित्रमें १-२-३-४ चिन्ह इत्यादिसें लेकर १८-१९-२० चिन्हपर्यंत मस्तिष्क कानीचेका प्रतिरूप तिन्होमें.

१ क्षुद्रमस्तिष्क.
२ मस्तिष्कका अग्रखंड.
४ घ्राणस्नायु.
७ दर्शनस्नायु.
८ दर्शनस्नायुप्रदेश.
९ नेत्रस्पंदक स्नायु
१० दृष्टिसन्धि.
१२ पश्चान्छिद्रान्वितप्रदेश.



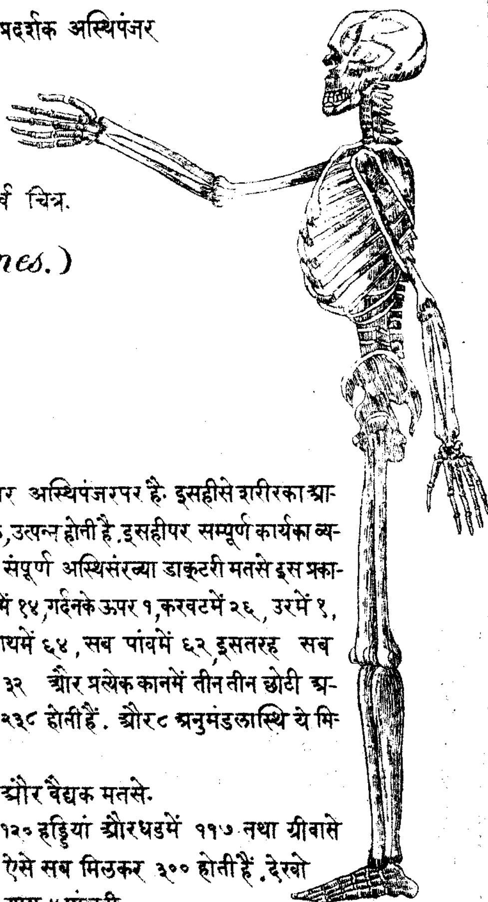


हस्तशिराप्रदर्शक चित्र.



चरणशिराप्रदर्शक चित्र.

पार्श्वप्रदर्शक अस्थिपंजर



अस्थिप्रदर्शक पार्श्व चित्र.

(*Bones.*)

शरीरका मुख्य आधार अस्थिपंजरपर है. इसहीसे शरीरका आकार, दृढता, गमनशक्ति, उत्पन्न होती है. इसहीपर सम्पूर्ण कार्यका व्यवहार निर्भरहै. शरीरमें संपूर्ण अस्थिसंख्या डाक्टरी मतसे इस प्रकारहै. खोपडीमें ८, चहरामें १४, गर्दनके ऊपर १, करवटमें २६, उरमें १, पांसूमें २५, सम्पूर्ण हाथमें ६४, सब पांवमें ६२, इसतरह सब मिलकर २००हैं. दांत ३२ और प्रत्येक कानमें तीन तीन छोटी अस्थि हैं सबमिलकर २३८ होती हैं. और ८ अनुमंडलास्थि ये मिलकर २४६ हैं.

और वैद्यक मतसे.

चारों हाथ पावोंमें १२० हड्डियां और धडमें ११७ तथा ग्रीवासे उपर ६३ हड्डियां हैं. ऐसे सब मिलकर ३०० होती हैं. देखो शारीरकस्थान अध्याय ५ पांचवी.

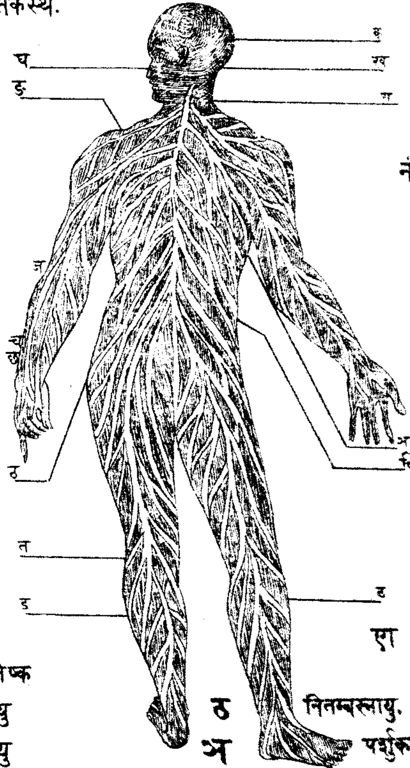
स्नायुप्रदर्शक चित्र (*Nervous*)

इस चित्रमें क मस्तकस्थ.

बृहत् मस्तिष्क.

पृष्ठ २५१

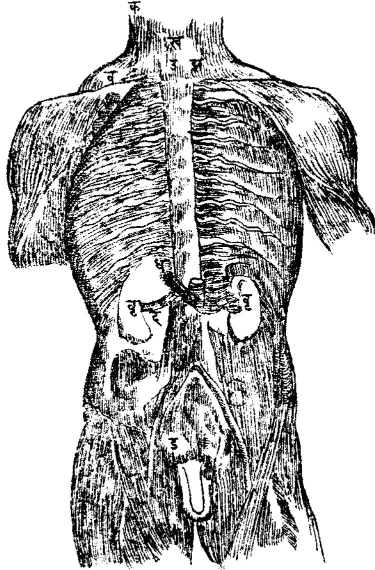
नंबर १०



ख	क्षुद्रमस्तिष्क	ठ	नितम्बस्नायु.
ग	ग्रीवास्नायु	अ	पर्शुकाभ्यंतर स्नायु
घ	वदनस्नायु	ड	जानुपश्चात्स्नायु.
ङ.	प्रगंडसन्धिस्नायु	ट	जान्वभिमुखस्नायु.
ज	प्रगंडस्नायु	ण	पदतलस्नायु.
च	प्रकोष्ठस्नायु	टि	कटिस्नायु
छ	प्रकोष्ठनिम्नस्नायु.	त	ऊरुस्नायु.
झ	करतलस्नायु		

शिराप्रदर्शक चित्र.

पृष्ठ २७० नंबर ११



इस शिराप्रदर्शक चित्रमें क ख ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठशिरा.

ग अनारव्यातशिरा.

घ जत्रुनिम्नशिरा.

वृ वृक्कद्वय.

ट वृक्कशिरा.

ध ऊर्द्ध्ववृक्कग्रंथिशिरा.

रेतो रज्जूशिरा.

थ बाह्यबस्तिशिरा.

जत्रुके नीचे ऊर्द्ध्वस्थ महाशिरा तथा बस्तीसें अधस्थ महाशिरा.

श्रीः ।

सुश्रुतसंहिताया

विषयानुक्रमणिकाप्रारम्भः ।

विषय.	पृष्टांक.

अथ निदानस्थानम् ।

अध्याय १

विषय.	पृष्टांक.
वातव्याधिनिदान	४९५
संपूर्ण वातव्याधिके विषे चरकमुनि और धन्वंतरिजीका परस्पर प्रश्नोत्तर.	,,
शुद्धवायुके कर्म.	४९६
वायुके प्राणादि पांचनाम.	,,
प्राणवायु.	४९७
उदानवायु.	,,
समानवायु.	,,
व्यानवायु.	४९८
अपानवायु.	,,
आमाशयादि स्थानस्थित वायुके उपद्रव.	,,
आमाशयादि स्थानमें पित्तादिसे मिली हुई वायुके विकार.	५००
वातरक्त.	५०१
वातरक्त लक्षण.	५०२
वातरक्तके पूर्वरूप.	५०३
साध्यासाध्यता.	,,
आक्षेपक वायु.	,,
अपतानक, दंडापतानक वायु.	,,
अपतानक वायुमें धनुस्तंभादि भेदोंका वर्णन.	५०४
आक्षेपक वायुमें बारप्रकारके भेदोंका कथन.	५०५
गृध्रसी.	५०८
विश्वाची.	,,
क्रोष्टुशीर्ष.	,,
खंजादिरोगोंका पृथक् २ वर्णन.	,,

अध्याय २

विषय.	पृष्टांक.
अर्शनिदान	५११
छः प्रकारके अर्श और तिनके रूपोंका वर्णन.	,,
वातार्शके लक्षण.	५१३
पित्तार्शके लक्षण.	,,
श्लेष्मार्शके लक्षण.	५१४
रक्तार्शके लक्षण.	,,
सन्निपात और सहजार्शके लक्षण.	५१५
साध्यअसाध्य अर्श.	,,
मेढ्रगतअर्श.	५१६
कान, नेत्र, नाक, मुख इनकी अर्श.	,,
चर्मकीलके लक्षण.	५१७
द्वंद्वज आदिअर्श.	,,

अध्याय ३

विषय.	पृष्टांक.
अश्मरीनिदान	५१८
चार प्रकारकी अश्मरीके हेतु.	,,
अश्मरीके सामान्य लक्षण.	५१९
कफाश्मरी	,,
पित्ताश्मरीका रूप.	५२०
वाताश्मरीका रूप.	,,
शुक्राश्मरीका रूप.	५२१
शर्करादिकोंके पृथक् २ लक्षण.	,,

अध्याय ४

विषय.	पृष्टांक.
भगन्दरनिदान	५२४
भगन्दरके जातिभेद.	,,
भगन्दरकी निरुक्ति और पूर्वरूप.	५२५
शतपोनक.	,,

विषय.	पृष्ठांक.
उष्ट्रग्रीव.	५२६
परिस्रावी.	”
शंबूकावर्त.	५२७
उन्मार्गी भगन्दरके लक्षण.	”
अध्याय ५	
कुष्ठनिदान	५२९
कुष्टरोगके हेतु.	”
कुष्ठका पूर्वरूप.	५३०
अठारह कुष्ठोंका वर्णन.	”
महाकुष्ठोंके स्वरूप और लक्षण.	५३१
क्षुद्रकुष्ठोंका कथन.	५३२
किलास रोगका वर्णन.	५३४
कुष्ठोंके उपद्रव.	”
धातुगत कुष्ठलक्षण.	५३५
मातृज पितृज कुष्ठ.	५३६
कुष्ठकी साध्यासाध्यता.	”
कुष्ठादिकी संक्रामणता.	५३७
अध्याय ६	
प्रमेहनिदान	५३८
प्रमेहके हेतु और पूर्वरूप.	”
कफनिमित्त प्रमेहोंका वर्णन.	५३९
पित्तनिमित्त प्रमेहोंका वर्णन.	५४०
वातनिमित्त प्रमेहोंका कथन.	५४१
कफप्रमेहके उपद्रव.	”
पित्तप्रमेहके उपद्रव.	”
वातप्रमेहके उपद्रव.	”
प्रमेहपिडका.	५४२
प्रमेहपिडकाओंके लक्षण.	”
पिडकाकी असाध्यता.	५४३
वातप्रमेहकी असाध्यता.	”
प्रमेहका परिज्ञान.	”
मधुप्रमेहका वर्णन.	”
अध्याय ७	
उदररोगनिदान	५४४
उदररोगोंकी संख्या और हेतु.	५४५
उदररोगोका पूर्वरूप.	५४५
वातोदर.	५४६
पित्तोदर.	”
कफोदर.	”
सन्निपातोदर.	”
प्लीहोदर.	५४७
बद्धगुदोदर.	”
क्षतोदर.	५४८
जलोदर.	”
सब उदररोगोंके सामान्य चिह्न.	५४९
अध्याय ८	
मूढगर्भनिदान	५५०
मूढगर्भके हेतु और लक्षण.	”
कीलादि चारप्रकारके मूढगर्भके लक्षण.	५५१
मूढगर्भकी आठप्रकारकी गतिका वर्णन.	५५२
गर्भस्रावादिकोंका वर्णन.	५५३
अध्याय ९	
विद्रधिनिदान	५५४
छः प्रकारके विद्रधियोंके लक्षण.	”
अन्तर विद्रधि.	५५५
अन्तर विद्रधिके स्थान.	५५६
विद्रधियोंके विशेष लक्षण.	”
विद्रधियोंकी साध्यासाध्यता.	”
अध्याय १०	
विसर्पनाडीस्तनरोगनिदान	५५९
विसर्पकी संप्राप्ति.	”
विसर्पके लक्षण.	”
आठप्रकारके नाडीव्रणके हेतु.	५६०
नाडीव्रणके लक्षण.	५६१
स्तनरोगके हेतु.	५६२
दूषित स्तन्यके लक्षण.	५६३
शुद्धस्तन्यके लक्षण.	५६४

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ११	
ग्रंथी, अपची, अर्बुद, गलगण्डनिदान	५६४
ग्रंथिनिदान.	,,
वातादि ग्रंथियोंके लक्षण.	५६५
अपचीनिदान.	५६६
अर्बुदनिदान.	,,
रक्तार्बुदके लक्षण.	५६७
मांसार्बुद.	,,
गलगण्डनिदान.	५६८
वातगलगण्डके लक्षण.	५६९
कफके गलगण्डके लक्षण.	,,
मेदोज गलगण्डके लक्षण.	,,
गलगण्डकी असाध्यता.	,,
परिशिष्ट (गण्डमालाके लक्षण.	५७०
अध्याय १२	
वृद्धि (अंडवृद्धि) उपदंश, श्लीपद निदान	,,
अंडवृद्धि.	,,
वृद्धिका पूर्वरूप.	५७१
वायु आदि अंडवृद्धिका पृथक् २ वर्णन.	,,
असाध्य अंडवृद्धिके लक्षण.	५७२
उपदंशनिदान.	,,
वातादि उपदंशके पृथक् २ लक्षण.	५७३
परिशिष्ठ–फिरंगरोगनिदान.	५७४
तीन प्रकारके फिरंगरोगके पृथक् २ लक्षण.	,,
श्लीपदनिदान.	५७५
वातादि श्लीपदके लक्षण.	,,
अध्याय १३	
क्षुद्ररोगनिदान	५७६
अजगल्लिकादि (४४) क्षुद्ररोगोंके नाम.	,,
चँवालीस क्षुद्ररोगोंके पृथक् २ लक्षण.	५७७
अध्याय १४	
शूकदोषनिदान	५८५
शूकदोषके हेतु तथा तिससे सार्षपिकादि (१८) व्याधियोंकी उत्पत्ति.	,,
इन सबके लक्षण.	,,
अध्याय १५	
भग्ननिदान	५८८
संधिमुक्त.	,,
कांडभग्न.	५८९
अध्याय १६	
मुखरोगनिदान	५९२
होठरोग.	,,
दंतमूल (मसूढोंके) रोग.	५९४
दंतरोग.	५९६
जिह्वाके रोग.	५९७
जिह्वारोगोंके लक्षण.	,,
तालुरोग.	५९८
कंठरोग.	५९९
सर्वमुखके रोग.	६०२
पूर्त्तिः	६०४

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः सान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट भाषाटीकायां निदानस्थानं समाप्तम् ॥

विषय.	पृष्ठांक.

अथ शारीरस्थानम् ।

अध्याय १

विषय.	पृष्ठांक.
सर्वभूत चिंताशारीर	६०७
संपूर्ण भूतादिकोंकी उत्पत्तिके हेतुका सविस्तर वर्णन.	,,
प्रकृति और पुरुष के साधर्म्य तथा वैधर्म्यका कथन.	६१२
साधर्म्य.	,,
प्रकृति और पुरुषके पृथक् २ लक्षण.	,,
सात्विक, राजस और तामस (जीवोंके) मन के गुण.	६१६
पंच महाभूतोंके गुण.	६१७

अध्याय २

विषय.	पृष्ठांक.
शुक्रशोणितशुद्धिःशारीर	६१९
दूषित शुक्रके लक्षण.	,,
दूषित शुक्र और शोणितकी शुद्धिका उपाय	६२०
शुद्ध शुक्रके लक्षण.	६२२
शुद्ध आर्तवके लक्षण.	,,
असृग्दर (रक्तप्रदर)	६२३
उसका यत्न.	,,
नष्टार्तव.	,,
रजस्वलाकी कर्तव्यता.	६२४
लब्धगर्भाका कृत्य.	६२८
गर्भके चारहेतु.	६२९
शरीरके वर्णका कारण.	,,
नेत्रोंका वर्ण.	६३०
आसेक्यादिकी उत्पत्ति.	६३१
गर्भमें बालकके मलमूत्रादि न करने और न रोनेका कारण.	६३३
बालक गर्भमें श्वासादि कैसे लेता है.	,,

अध्याय ३

विषय.	पृष्ठांक.
गर्भावक्रान्तिशारीर	६३४
गर्भोत्पत्तिका वर्णन.	,,
ऋतुमती स्त्रीके लक्षण	६३६
गर्भ रहनेका तात्कालिक लक्षण.	६३७
गर्भवती स्त्रीके लक्षण.	,,
गर्भवतीका कृत्य.	६३८
प्रथमादि मासोंमें गर्भका रूप.	,,
दौहृद न मिलने मिलनेके हानिलाभ.	६३९
दौहृदके फल.	६४०
गर्भकी पुष्टि.	६४१
गर्भका कौन अंग पहले हो इसका विवेचन.	६४२
गर्भके पितृज मातृज रसज आदि अंश.	६४३
गर्भमें पुत्र पुत्री आदिकी परीक्षा.	६४४
गर्भके अंग प्रत्यंगोंकी सुंदरता असुंदरता.	६४५

अध्याय ४

विषय.	पृष्ठांक.
गर्भव्याकरणशारीर	,,
अग्न्यादिकोंकी प्राणसंज्ञा.	,,
त्वचाओंका वर्णन.	६४६
परिशिष्ट.	६४७
कलाओंका वर्णन.	६४८
यकृत प्लीहा फुप्फुस और उडुंककी उत्पत्ति	६५१
अंत्रा (अंतडियोंकी) उत्पत्ति.	६५२
जिह्वाकी उत्पत्ति	६५२
स्रोतों (द्वारों) और पेशियोंकी उत्पत्ति	,,
वृक्कआदिकी उत्पत्ति	६५३
निद्रा	,,
तामसी निद्रा	६५४
स्वाभाविकी निद्रा	,,
वैकारिकी निद्रा	,,
दिनमें सोनेकी विधि और निषेध	६५५
दिनमें सोनेसे हानि	६५६
रातमें अधिक जागनेसे हानि	,,
निद्रानाशका हेतु और यत्न	६५७
अतिनिद्राका प्रतीकार	,,
रातमें जागना तथा दिनमें सोना किनको हित है	६५८
तंद्राका लक्षण	,,
जृंभा	,,
क्लम	,,
आलस्य	,,
उत्क्लेश	६५९

विषय.	पृष्ठांक.
ग्लानि	६६९
गौरव	,,
प्रकृति	६६०
वातप्रकृति	६६१
पित्तप्रकृति.	,,
कफप्रकृति.	६६२
त्रिदोष प्रकृति.	६६३
प्रकारांतर.	६६४
(प्रकारांतर) से सात्विक, राजस, तामसप्रकृति	,,

अध्याय ५

विषय.	पृष्ठांक.
शरीरसंख्या व्याकरणशारीर	६६७
शरीरका वर्णन.	,,
प्रत्यंग	६६८
शरीरके अवयवोंका संक्षिप्त वर्णन.	,,
विस्तारसे वर्णन	६६९
आशय.	६७०
अंत्रप्रमाण.	,,
स्रोत (द्वार).	,,
कंडरा.	६७१
जाल	,,
कूर्च	,,
मांसरज्जु	६७२
सेवनी.	,,
अस्थिसंघात.	,,
सीमंत.	६७३
अस्थिसंख्या.	,,
पृथक् पृथक् गणना.	,,
संधि.	६७५
स्नायु.	६७६
परिशिष्ट.	६७८
पेशी.	६७९
पेशियोंकी पृथक् २ गणना.	,,
स्त्रियोंके आधिक पेशी.	६८०
पेशियोंके स्वरूप.	,,
गर्भशय्याका वर्णन.	६८१
मृतशरीर चीरकर देखनेकी विधि.	,,

अध्याय ६

विषय.	पृष्ठांक.
प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीर	६८३
मर्मसंख्या.	,,
मर्मोंके स्थानोंकी संख्या.	,,
मर्मस्थानोंके नाम	,,
मांसादि भेदसे मर्म.	६८४
पांच प्रकारके मर्म.	६८५
सद्यः प्राणहर मर्म.	,,
कालान्तर प्राणहर और विशल्यघ्न मर्म.	,,
वैकल्यकर मर्म.	६८६
रुजाकर मर्म.	,,
मर्मस्थानोंमें प्राणोंकी स्थिति.	,,
मर्मोंके निकट वेधनका प्रभाव.	६८९
पेट और छातीके मर्मका वर्णन.	६९१
पीठके मर्मस्थान.	६९२
कंठके जोतोंसे ऊपरके मर्मोंका वर्णन.	६९४
मर्म स्थानोंका प्रमाण.	६९६

अध्याय ७

विषय.	पृष्ठांक.
शिरावर्णनविभक्ति शारीर	६९९
संपूर्ण शिरावोंका सविस्तर वर्णन.	,,
शिराओंका सर्वदोष वहत्व.	७०२
शिराओंके रंग आदि.	७०३
वेधनके अयोग्य शिराओंका वर्णन.	,,

अध्याय ८

विषय.	पृष्ठांक.
शिरा वेधन विधि शारीर	७०६
शिराओंके वेधनका प्रकार.	,,
पांवकी शिरा वेधन विधि.	७०९
हाथकी शिरा वेधन.	,,
अंग विशेषकी शिरा वेधन.	,,
शिरावेधनमें शस्त्रका प्रमाण.	७१०
शिरावेधनका समय.	,,
ठीक शिरा विधिके लक्षण.	७११
दूषित रक्त पहले निकलता है.	,,
व्याधि विशेषपर शिरा वेधन.	७१२
अयोग्य शिरावेधके (२०) दूषण.	७१४
इनके लक्षण.	,,
शिरावेधनकी प्रधानता.	७१५

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ९	
धमनीव्याकरणशारीर	**७१७**
धमनियोंका वर्णन.	,,
ऊर्द्धगामिनी धमनियोंका कथन.	७१८
अधोगामिनी धमनियोंका वर्णन.	७१९
तिर्य्यग्गामिनी आदि धमनियोंका वर्णन.	७२०
स्रोतोंके मूल विद्धलक्षणोंका वर्णन.	७२२
अध्याय १०	
गर्भिणीव्याकरणशारीर	**७२४**
गर्भिणीके वर्त्ताओंका वर्णन.	,,
सूतिकागार विधि.	७२६
अकाल प्रवाहणके दोष.	७२८
प्रसवमें विलम्ब हो तो उपचार.	,,
जन्मोत्तर विधि.	७२९
प्रसूताके नियम.	७३०
अपरायातन.	७३२
मक्कल रोगके लक्षण.	,,
मक्कलका यत्न.	७३३
नामकरण.	७३४
योग्य धात्री (दाय) के लक्षण.	,,
प्रथम स्तनपान विधि.	७३५
दुष्ट दुग्धके लक्षण.	७३७
बालकके रोग जाननेकी रीति.	,,
बालकोंकी औषधोंकी मात्रा.	७३८
काल छुटकने कायत्न.	७३९
नाभिपाक और गुदापाक.	,,
बालकोंका वर्त्ताव.	७४०
अन्नप्राशन.	७४१
बालग्रह पीडितके सामान्य लक्षण.	,,
छोटी अवस्थामें गर्भाधानका निषेध.	७४२
गर्भस्राव आदिकी चिकित्सा.	७४३

इति श्री पं० मुरलीधरशर्म राजवैद्य विरचितसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणिकसपरिशिष्टभाषाटीकायां शारीरकस्थानं समाप्तम् ।

विषय.	पृष्ठांक.
दशमोऽध्यायः ।	
डाक्टरीमतसे शारीरक	**७५१**
परिशिष्ट भाग १	,,
डाक्टरी मतसे संक्षिप्त शारीरक.	,,
शिर–(ब्रेन)	,,
दिमागका अन्य शारीरक अवयवोंसे संबंध.	७५२
एलीमिंटरी कनाल (आहार नलका).	७५४
इसाफेगस.	,,
इस्टमक.	,,
इसमास इंटी स्टाइंस.	७५५
लार्ज इंटिस्टाइंस.	,,
श्वाससंबंधी अवयव.	७५६
लंग्स.	,,
लिवर.	७५७
गाल ब्लेडर.	७५८
स्पिलीन.	,,
पैंक्रे आस.	,,
यूरेनरी आरगेंस.	७५९
यूरेटर हालवां.	,,
यूरेनरी ब्लैडर.	,,
पैनिस.	७६०
टिसटी किल्स.	,,
यूटरस.	,,
अस्थियोंकी संख्या.	७६१
शरीरकी त्वचा.	,,
डाक्टरी मतसे संक्षिप्त रोग गणना.	७६२
यूनानी मतसे संक्षिप्त शारीरक.	७६४
परिशिष्ट भाग २.	,,
नेत्र (चश्म).	७६५
नेत्ररोग.	,,
पलकोंके रोग.	७६६
कान (गोश)	,,
कानके रोग.	,,
नाक (बीनी)	,,
नाकके रोग.	,,
मुंह जबान और दांत.	,,
इनके रोग.	७६७

विषय.	पृष्ठांक.
होठोंके रोग.	७६७
दंतरोग.	”
मसूढोंके रोग.	”
हलकका बयान.	”
सीना और फेफडे.	७६८
सीना फेफडे और पँसलियोंके रोग.	”
(कलब–दिल.)	७६९
दिलके रोग.	”
(जिगर–यकृत.)	”
जिगरसे होनेवाले रोग.	७७०
तिहाल.	७७१
तिल्लीके रोग.	”
मेदा आमाशय.	”
मेदेके रोग.	७७२
अमआ.	७७३
अँतडियोंके रोग.	७७४
मिकअद.	”
गुदाके रोग.	”
वृक्क.	”
गुरदोंके रोग.	”
मसाना.	७७५
मसानेके रोग.	”
कुजेवा.	”
खुसिये.	७७६
रहम.	”
रहमके रोग.	”
यूनानी प्रकीर्ण रोगोंका संक्षेप वर्णन.	७७७
यूनानीकी प्रकीर्ण बातें.	७७८
सबका सारांश और ऐक्य.	७८९
परिशिष्ट भाग.	”

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

इति

सुश्रुतसंहितायाः

निदान-शारीरस्थानानुक्रमणिका

समाप्ता ।

श्रीः ।

सुश्रुतसंहिता ।

निदानस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे (सूत्रस्थानके) अगाड़ी (निदान स्थानमें) (प्रथम) वात व्याधियोंके निदानका व्याख्यान करते हैं ॥

धन्वंतरिं धर्मभृतां वरिष्ठममृतोद्भवम् । चरणावुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति ॥ १ ॥ वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च कोपनैः । स्थानं कर्म च रोगांश्च वद मे वदतांवर ॥ २ ॥

धार्मिकोंमें श्रेष्ठ अमृतके साथ उत्पन्न हुवे ऐसे धन्वंतरि भगवान्‌के दोनों चरण पकड़कर महर्षि सुश्रुत पूँछते भये ॥ १ ॥ हे व्याख्याताओंमें श्रेष्ठ भगवन् प्रकृतिभूत (स्वाभाविक) वायुका तथा व्यापन्न (विकारको प्राप्त हुई) कोपन पदार्थोंकरके कोपको प्राप्त हुई वायुका स्थान कर्म और गुण (विस्तारपूर्वक) मेरे प्रति वर्णन करो ॥ २ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजांवरः । स्वयंभूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः ॥ ३ ॥ स्वातंत्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्तथैव च । सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ४ ॥ स्थित्युत्पत्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम् । अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च रूक्षः शीतो लघुः खरः ॥ ५ ॥ तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजोबहुल एव च । अचिंत्यवीर्यो

---

* हेतुलिंगौषधज्ञानबीजभूतेन सूत्रस्थानेन संक्षिप्तोद्दिष्टस्य हेतुलिंगौषधस्य विवरणे सर्वाण्येव स्थानानि प्रस्तुतानि तेषु च प्रस्तुतेषु स्वाधिकाराणां अत्यंतप्रत्याधीनां हेतुलक्षणप्रतिपादकतया निदानस्थानस्य प्रारंभः तत्रापि दोषाणां वातस्य प्रधानत्वात्तद्व्याधिहेतुलक्षणाभ्यां प्राक् प्रतिपादनं युज्यते ॥

(श्लो० १) अमृतोद्भवमिति अमृतेन सार्द्धं उद्भवो यस्य तम् ॥

(श्लो० २) वायोः " प्रकृतिभूतस्य " स्वभावस्थितस्य " व्यापन्नस्य " विकृतस्य कोपनैरित्यगुणकर्माणि ॥

(श्लो० ५) रूक्षलघुशीतदारुणखरविशदाः षडिमे वातगुणाः भवंतीति (चरकः) ॥

दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥ ६ ॥ आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधान गुदालयः । देहे विचरतस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ॥ ७ ॥

इस प्रकार सुश्रुतके वचन सुनकरके वैद्योंमे श्रेष्ठ श्री धन्वंतरीजी बोलते भये कि यह वायु स्वयंभूहै (परमाणु रूप है) और भगवान् (ऐश्वर्यवान्)है ऐसे कहा जाता है ॥ ३ वायुको स्वतंत्रता होनेसे और नित्यभाव (नित्यता) होनेसे और सर्वत्र गमनशक्ति होनेसे सब जगत्के जीवोंका सर्वात्मा है और सब लोकोंकरके नमस्कार किया हुवाहै ॥ ४ ॥ प्राणियों (जीवों) की उत्पत्ति और स्थिति तथा विनाशका यही वायुही कारणहै स्वयं वायु अव्यक्त (अप्रकट)है और प्रकट कर्मोंका करनेवालाहै रूक्षहै शीतलहै हलकाहै खरखराहै ॥ ५ ॥ तिर्यग्गामी (तिरछा चलनेवाला)है दो गुणवालाहै (शब्द और स्पर्श गुणवालाहै) और (गुणत्रयात्मक होकर) रजोगुण प्रधानहै और अचिंत्य पराक्रमवालाहै और सब दोषों कफ पित्त रक्तादिका प्रेरण करनेवालाहै और रोगोंके समूहका राजाहै ॥ ६ ॥ शीघ्र प्रभाव करनेवाला है और वारंवार विचरनेवालाहै विशेष करके पक्वाशय और गुदामें वास करता है (यह प्रकृतिस्थ वायुके गुणस्थानादि कहे हैं) संपूर्ण देहमें विचरनेवाले इस वायुके लक्षण (विस्तार पूर्वक) मेरेसे श्रवण करो ॥ ७ ॥

शुद्धवायुके कर्म ।

दोषधात्वग्निसमतां संप्राप्तिं विषयेषु च । क्रियाणामानुलोम्यं च करोत्यकुपितोऽनिलः ॥ ८ ॥

विना कुपित हुवा अर्थात् शुद्ध निर्विकार वायु सब दोषोंकी समता और सब धातुओंकी समानता और अग्नि जठराग्निकी समानता करताहै (अर्थात् क्षय वृद्धि किसीको नहीं होने देता जिससे शरीर स्वस्थ और प्रसन्न रहताहै) तथा सब विषयोंमें ठीक २ संप्राप्ति होतीहै और सम्पूर्ण क्रियाओंमें संप्राप्ति (करण शक्ति और उत्साह और प्रीति) होतीहै तथा अनुलोमता (मल मूत्र स्वेदादिकोंकी ठीक प्रवृत्ति) होतीहै ॥ ८ ॥

यथाग्निः पञ्चधा भिन्नो नामस्थानात्मकर्मभिः । भिन्नोऽनिलस्तथा ह्येको नामस्थानक्रियामयैः ॥ ९ ॥ प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च । स्थानस्था मारुताः पंच यापयन्ति शरीरिणम् ॥ १० ॥

जैसे नाम और स्थान तथा कर्मोंकरके अग्नि (पित्त) पाँच प्रकारसे विभक्त हुवाहै उसीभांत एक वायुभी नाम और स्थान तथा क्रिया और रोगोंकरके पांच प्रकारसे विभक्त है ॥ ९ ॥ प्राण उदान समान व्यान और अपान ऐसे पांच

(श्लो० ९) यथा पाचकरंजकालोचकभ्राजकसाधकभेदैः पंचधा पित्तं विभक्तं तथैव वायुरपि ॥

प्रकारका पांच स्थानोंमें स्थित हुवा वायु जीवोंके शरीरोंको धारण करताहै (धारण किये रहताहै) ॥ १० ॥

प्राणवायु ।

वायुर्यो वक्त्रसंचारी सप्राणो नाम देहधृक्।सोन्नं प्रवेशयत्यंतः प्राणांश्चाप्यवलंबते । प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान्गदान् ॥ ११ ॥

जो वायु मुखद्वारा बाहर और भीतर गमन करता है वह प्राणनामक वायु देहका धारण करनेवाला है और वही 'प्राणवायु अन्नको भींतर प्रवेश करता है और वही प्राणों (जीव) को अवलम्बन करता है अथवा प्राणों अग्न्यादिकको अथवा प्राणों बल ओजादिको अवलंबन करता है और यदि यह प्राणवायु दुष्ट हो जाय बिगड़जाय तब हिचकी श्वास आदि रोग उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

उदानवायु ।

उदानो नाम यस्तूर्द्ध्वमुपैति पवनोत्तमः।तेनभाषितगीतादिविशेषो भिप्रवर्त्तते । ऊर्द्ध्वजत्रुगतान्रोगान्करोति च विशेषतः ॥ १२ ॥

जो पवनोंमें श्रेष्ठ ऊपरको गमन करता है वह उदान नामक वायु है उस करके मनुष्य संभाषण गीतादिकके विषयमें प्रवर्त होता है और यही दुष्ट हो तो ऊर्द्ध्व-जत्रुगत रोग नयन घ्राण कर्ण और शिरके रोग विशेष करके करता है चकारसे कास स्वरभेदादिभी करता है ॥ १२ ॥

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः । सोन्नं पचति तज्जांश्च विशेषा न्विविनक्ति हि ॥ गुल्माग्निसंगातीसारप्रभृतीन्कुरुते गदान् ॥ १३ ॥

(श्लोक ११) यो वायुर्वक्त्रसंचारी इत्यत्र वक्त्रसंचारस्योपलक्षणं तेन मूर्द्धोरःकण्ठनासिका अपि प्राणस्य स्थानमिति डल्हनः। वाग्भटस्तु इत्याह प्राणो मूर्द्धन्यवस्थितः कंठोरश्चरो बुद्धीन्द्रियहृदयमनोधमनीधारणष्ठीवनक्षव-थूद्गारश्वासोच्छ्वासान्नप्रवेशादिक्रियः इति केचिदित्याहुः प्राणस्य स्थानं हृदयमेवेति केचित्प्राणस्य स्थानं नाभिरि-ति वदंति यथा नाभिस्थः प्राणपवनः इति शार्ङ्गधरः। प्राणांश्चाप्यवलंबते इति प्राणान् अग्न्यादीन् अवलंबतेस्वक्रिया-सु योजयति गयदासार्यस्तु एवं मन्यते प्राणानामग्निसोमादीनामधिष्ठानमवलंबनवचनेन चाधारभूतहृदयाद एवोच्य ते अतएव प्राणानाबलंबनेन मरणमूलत्वमुच्यते यदुक्तं श्रुतौ यथा सैंधवोश्वःशंकुमुत्पाट्य धावति तद्वत् प्राणो ह्यद्य: सर्वान्वायूनुत्पाट्य प्रयाणकाले धावति ॥

(श्लोक १२) ऊर्द्ध्वमुपैति ऊर्द्ध्वं गच्छति " उदानस्य स्थानम् " पुनरनुक्तमप्यस्य नाभ्युरःकंठानि इति डल्हनः वाग्भटस्त्वित्याह " उदान " उरस्यवस्थितः कण्ठनासिकानाभिचरः वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नौजोबलवर्णस्रोतः प्रीणनधृ-तिस्मृतिमनोविबोधनादिक्रियः इति । उदानस्य स्थानं कण्ठमेवेति केचित् । क्रुद्ध ऊर्द्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति

(श्लोक १३) आमपक्वाशयचर इति आमस्य पक्वं आमपक्वं तस्याशयं पच्यमानाहाराशय इत्यर्थः। तत्र चरतीति (डल्हनः) वह्निसंगतः अग्निसहायवानिति अग्नि संधुक्षण इत्यर्थः तज्जान् अन्नपाकजान् रसदोषमूत्रपुरीषाणि विविन क्ति पृथक् करोति । तस्य स्थानम् । नाभिरितिकेचित् वाग्भटस्तु इत्याह समानोन्तरग्निसमीपस्थितस्तत्संधुक्षणः पक्वामाशयदोषमलशुक्रार्तवाम्बुवहस्रोतोविचारी तदवलंबनात्धारणपाचनविवेचनकिट्टाधोनयनक्रियः ॥

विकृतिः शुक्रगेऽनिलो हस्तपादशिरोधातूंस्तथा सञ्चरति क्रमात् ॥ २५ ॥ व्याप्नुयाद्वाखिलं देहं वायुः सर्वगतो नृणाम् । स्तंभनाक्षेपणस्वापशोफ शूलानि सर्वगः ॥ २६ ॥

स्नायु (नसों) में प्राप्त हुवा वायु स्तंभ (नसका अकड़जाना) तथा कांपना और शूल और आक्षेप (चलायमान होना) इत्यादि रोग करताहै और संधियोंमें प्राप्त हुवा वायु संधियोंको मार देताहै तथा संधियोंमें शूल और सूजन पैदा करताहै ॥ २३ ॥ अस्थियोंमें प्राप्त हुवा वायु हाडोंको सुखा देताहै हडफूटनसी करताहै तथा हाडोंमें शूल (चीस) पैदा करताहै मज्जामें स्थित यदि कुपित वायु हो तब उसमें ऐसी पीडा हो जो कभी शांत नहो ॥ २४ ॥ वीर्यप्राप्त (कुपित) वायु हो तो वीर्यकी प्रवृत्ति नहींहो अथवा अति प्रवृत्तिहो अथवा वीर्यमें विकारहो और सारे शरीरमें वायु कुपित हो तब हाथों पावों शिर तथा रक्तादि सब धातुओंमें क्रमसे विचरताहै अथवा सारे शरीरमें व्याप्त होताहै और यह सब शरीरमें कुपित हुवा वायु मनुष्योंको स्तंभन (शरीर जकड़जाना) तथा आक्षेपण (उठ उठकर गिरजाना) शरीर सुन्न पड़जाना या शरीर सूजजाना या शरीरमें दरद होना ये रोग पैदा करताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

स्थानेषूक्तेषु मिश्रश्च संमिश्राः कुरुते रुजः । कुर्य्यादवयवप्राप्तो मारुत स्तत्तद्विभितान्गदान् ॥ २७ ॥

उपरोक्त स्थानोंमें यदि मिश्र (कफ पित्तादिसे मिला) वा[illegible] तो मिलीहुई व्याधियां उत्पन्न करताहै तथा अवयवों (अंग प्रत्यंग) में प्राप्त [illegible] वायु वहाँ वहाँ उसी उस प्रकारकी व्याधियोंको करताहै ॥ २७ ॥

दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते । शैत्यशोफगुरुत्वानितस्मिं न्नेवं कफावृते ॥ २८ ॥ सूचीभिरिव निस्तोदः स्पर्शद्वेषः प्रसुप्तता । शेषाः पित्तविकाराः स्युर्मारुते शोणितान्विते ॥ २९ ॥

यदि वायु पित्तसे मिला हो तो दाह संताप और मूर्च्छा आदि रोग होते हैं और जो वायु कफ करके संयुक्त हो तो शीतता शोथ तथा गुरुता (भारीपन) आदि रोग होते हैं ॥ २८ ॥ यदि वायु रक्तसे मिश्रित हो तो सूई चभोनेकिसी पीडा

(श्लो० २५) हस्तपादादिशिरः क्रमात् वायुस्तथा संचरति यथा अखिलं देहं व्याप्नुयात् तथा अधिकृतात् क्रमात् संचरति यथा च सर्वगतो वा भवति सर्वधातुग श्च भवतीत्यर्थः (इति डल्लनः) ॥

(श्लो० २७) मिश्रः पित्तदाहादि कार्यलिंगदर्शनाच्च पित्ताद्यावरणं ज्ञेयं केवलस्य वायोः शीतस्वभावत्वाद्दाहः [illegible] इति ॥

(श्लो० २८) [illegible] पित्तसमन्विते दाहसंतापादयो भवंति तथा च कफान्विते शैत्यगौरवादयश्च ॥

होती है और स्पर्श बुरा लगता है (अर्थात् हाथ नहीं लगाया जाता) अथवा प्रसुप्तता (शरीरका सुन्न पड़जाना या सो जाना) तथा और पित्तके विकार दाह आदिभी होते हैं ॥ २९ ॥

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते । दौर्बल्यं सदनं तंद्रा वैवर्ण्यं च कफावृते ॥ ३० ॥ उदाने पित्तसंयुक्ते मूर्च्छादाहभ्रमक्लमाः । अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतस्तंभौ कफावृते ॥ ३१ ॥

प्राणवायु पित्तसे आच्छादित हो जानेसे छर्दि तथा दाह आदि होता है और यदि प्राणवायु कफसे आच्छादित हो तो दुर्बलता तथा थकान तथा तंद्रा और विवर्णता (रूप बिगड़जाना) आदि होते हैं ॥ ३० ॥ उदान वायु पित्तसे युक्त हो तो मूर्च्छा दाह भ्रम तथा क्लम (घुमेरसी) होती हैं और जो उदान कफसे संयुक्त हो तो पसीने न आना और हर्ष न होना अथवा हर्ष (रोमहर्ष) तथा मंदाग्नि और शीत तथा स्तंभ (अकडाव) होता है ॥ ३१ ॥

समाने पित्तसंयुक्ते स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छनम्। कफाधिकं च विण्मूत्रं रोमहर्षः कफावृते ॥ ३२ ॥ अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं स्यादसृग्दरम् । अधःकाये गुरुत्वं च तस्मिन्नेवकफावृते ॥ ३३ ॥ व्यानेपित्तावृतेदाहो गात्र विक्षेपणं क्लमः। गुरूणि सर्वगात्राणि स्तंभनं चास्थिपर्वणाम्। लिङ्गं कफावृते व्याने चेष्टास्तंभस्त थैव च ॥ ३४ ॥

जो समान वायु पित्तकरके संयुक्त हो तो पसीने अधिक आवें दाह हो गरमी हो और मूर्च्छन (बेहोशी) हो और यदी समान वायु कफयुक्तहो तो कफकी अधिकता और मलमूत्र (तथा स्त्रियोंके आर्तव)की प्रवृत्तिहो और रोमहर्षहो॥ ३२॥ अपान वायु पित्तसे संयुक्त हो तो दाह गरमी और रक्तकी प्रवृत्तिहो (अधोमार्गसे रक्तागमहो) और जो अपान कफयुक्त हो तो नीचेके अंगोंमें भारीपना हो ॥ ३३ ॥ व्यानवायु पित्तसे युक्तहो तो दाह और अंगोंका देदे मारना और क्लम (बेचैनी) हो और यदि व्यानवायु कफयुक्तहो तो सब गात्र भारीहों और अस्थि और जोड़ोंमें अकड़ाव हो तथा चेष्टाओंमें रुकाव होना ये लक्षण होते है ॥ ३४ ॥

वातरक्त ।

प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम्। शोकाच्च प्रमदामद्यव्यायामैश्चातिपीडनात् ॥ ३५ ॥ ऋतुसात्म्यविपर्य्यासात्स्नेहादीनां च विभ्रमात् । अव्यवाये तथा स्थूले वातरक्तं प्रकुप्यति ॥ ३६ ॥

प्रायः विपरीत आहार विहार करनेवाले कोमल मनुष्योंके शोकसे अति स्त्रीसंगसे अति मदिरा पीनेसे अतिपरिश्रमसे तथा ऋतुविरुद्ध आहार विहार सेवनसे तथा स्नेह

पानादि (स्नेहपान वमन विरेचन बस्ति आदि) में अनुचित व्यवहार होनेसे तथा (गृहस्थी होकर) स्त्रीसंग न करनेवाले और स्थूल शरीरवाले मनुष्योंके वायु और रुधिर (मिलकर) कुपित होजातेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतोऽन्यैश्च वायुः कोपं यातः कारणैः सेवितैः स्वैः । तीक्ष्णोष्णाम्लैः क्षारशाकादिभोज्यैः संतापाद्यैर्भूयसा सेवितैश्च ॥ ३७ ॥ क्षिप्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु यातः क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ॥ ३८ ॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् । तद्वत्पित्तं दूषितेनासृजाक्तं श्लेष्मा दुष्टो दूषितेनासृजाक्तः ॥ ३९ ॥

हाथी घोड़े ऊंट आदिकी सवारीपर अधिक चलनेसे अथवा अन्य वातकारक कारणोंके सेवन करनेसे वायु कोपको प्राप्त होता है और तीक्ष्ण गरम खट्टे खारे शाकादि तथा भोजनोंके खानेसे और वारंवार संताप आदिके सेवन करनेसे शीघ्रही रुधिर दुष्टताको प्राप्त होता है और वह कुपित हुआ दुष्ट रक्त शीघ्रचारी वायुके मार्गको रोक लेता है और फिर मार्ग रुक जानेसे अत्यंत कुपित हुआ वायु अति बढे दुष्ट रक्तको औरभी दूषित कर देता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ दूषित वायु करके मिला हुआ दूषित जो रक्त उसमें यदि वायुकी प्रबलता है तो वह वाताधिक वातरक्त कहलाता है और यदि दूषित रक्तमें पित्त कुपित होकर मिलगया है तो पैत्तिक वातरक्त कहलाता है और यदि उस दूषित रक्तके संग दुष्ट हुआ कफ मिला है तो वह श्लैष्मिक वातरक्त कहलाता है ॥ ३९ ॥

वातरक्त लक्षण ।

स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोषस्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ । पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोफौ मृदू च ॥ ४० ॥ कंडूमंतौ श्वेतशीतौ सशोफौ पीनस्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते । सर्वैर्दुष्टे शोणिते चापि दोषाः स्वं स्वं रूपं पादयोर्दर्शयन्ति ॥ ४१ ॥

" वातिक वातरक्त हो तो " दोनों पावोंमें स्पर्शसे उद्विग्न हो दरद हो भेद (भेदनकीसी पीड़ा अर्थात् कटेसे जाँय) और शुष्कता हो तथा स्वापयुक्त हों (पैर सोंगमें होजायँ) और यदि "पैत्तिक तथा रक्ताधिक्य वातरक्त हो तो" पैरोंमें उग्र दाहहो और अत्यंत गरम हों रक्तता और सूजनहो ॥ ४० ॥ तथा कफ दुष्ट (कफाधिक वातरक्त हो तो दोनों पैरोंमें खाजहो श्वेत रंगहो शीतल और शोथयुक्तहों पुष्ट और कठिन हों और यदि सब दोषोंसे दूषित रक्तवाला वातरक्तहो तो अर्थात् सन्निपातज वातरक्तहो तो पैरोंमें सबही वातादि दोष अपना अपना रूप दिखावें ॥ ४१ ॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपे शिथिलौ स्विन्नौ शीतलौ सविपर्ययौ । वैवर्ण्यतोदसुप्तत्वगुरुत्वैरपि समन्वितौ ॥ ४२ ॥

यदि दोनों पाँव शिथिलहों पसीना बहुत आवे शीतलहों अथवा इसके विपरीत गरम रहें पसीना नहीं आवे और विवर्णता होजाय दरद रहे पैर सोंवे पैरोंमें बहुत भारीपनहो तथा दाहहो तो वातरक्तका पूर्वरूप जानना (अर्थात् जिसके ये लक्षण हों तो जानिये कि इसके वातरक्तका रोग होगा) ॥ ४२ ॥

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि । आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनु सर्पति ॥ ४३ ॥

यह वातरक्त पैरोंसे आरंभ होकर और कभी हाथोंसे आरंभ होकर विषैले मूषिकके विषके समान क्रुद्ध होकर सब देहमें गमन करताहै (अर्थात् सारे शरीरमें फैल जाताहै) ॥ ४३ ॥

साध्यासाध्यता ।

आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतञ्च यत् । उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः शोणितं तदसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ ४४ ॥

जानुपर्यंत जो फूट निकलाहो फटगयाहो झिरने लगाहो बलमांस क्षयादि उपद्रवों युक्तहो वह वातरक्त असाध्य हुवा जानो और एकवर्ष पहलेका याप्य होताहै ॥ ४४ ॥

आक्षेपक वायु ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः । मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ ४५ ॥

जब कुपित हुवा वायु सब नाडियोंमें प्राप्त होता है तब शीघ्र वारंवार शरीरको गिरा देता है और वारंवार संचार करता है और वारंवार आक्षेपण (गिराने) से इसे आक्षेपक कहते हैं ॥ ४५ ॥

अपतानक, दंडापतानक, वायु ।

सोपतानकसंज्ञो यः पातयत्यन्तरान्तरा ॥ ४६ ॥

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति। स दंडवत्स्तंभयति कृच्छ्रो दंडापतानकः ॥ ४७ ॥

(श्लोक ४३) " वातरक्तस्योपद्रवाः " अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः । मूर्च्छायां मदरुक्तृष्णाज्वर-मोहप्रवेपकाः । हिक्कायां गुल्मवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः । अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ (मा. नि.)

(श्लोक ४७-४८) यः आक्षेपकोऽन्तरान्तरापातयति सोपतानक इत्यर्थः (इतिडल्हनः) तास्वेव सर्वासु धमनीषु भृशं वायुस्तिष्ठतीति कृच्छ्रः कष्टसाध्यःसएवापतानकः। अपतानकश्चिधा दंडापतानकः, अंतरायामः, बहिरायाम-श्च तत्र दंडापतानकलक्षणमाह कफान्वितो भृशमित्यादि (इति डल्हनः)

जो आक्षेपक नजीक २ गिरावे वह अपतानक वायु है ॥४६ ॥ और यदि नाडियोंमें कफयुक्त वायु हो तो मनुष्यको दंडकी तुल्य स्तंभित कर गिराता है इसे दंडापतानक कहते हैं यह कष्टसाध्य है ॥ ४७ ॥

हनुग्रहस्तदात्यर्थं सोऽन्नं कृच्छ्रान्निषेवते ॥ ४८ ॥

उस अपतानकमें ठोडी अत्यंत स्तंभित हो जाती है जिससे मनुष्य बड़े कष्टसे अन्न आदि खा सकता है (और कभी तो मुख खुलाही रह जाता है और कभी भिंचा रह जाताहै और कभी अध भिंचा) कई इसका यह अर्थ करतेहैं कि जो बहुतही कष्टसे अन्नादि खा सके (अर्थात् मुख खुले मूँदे नहीं ऐसी ठोडीकी नसें अकड़ जायँ) तो उसे हनुग्रह (या हनुस्तंभ) रोग कहतेहैं ॥४८॥

सारांश यह कि कई तो अपतानकके अन्तर्गत इसे मानते हैं और कई पृथक् अपतानकके तीन भेद कई इस प्रकार मानते हैं १ दंडापतानक, २ अंतरायाम ३ बहिरायाम ॥

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तंभसंज्ञकः । अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ॥ ४९ ॥ स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् । विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥ ५० ॥ अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः। तदा सोऽभ्यंतरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ ५१ ॥

जब यह अपतानक वायु धनुषकी भांत शरीरको नवा दे (टेढा कर देवे) तब इसे धनुस्तंभ(धनुषवायु) कहते हैं इस धनुस्तंभके दो भेद हैं १ अंतरायाम २ बहिरायाम अंगुली टकने पेट हृदय छाती गल इन सब स्थानोंमें आश्रित हुवा वायु (भीतरकी) नसोंके विस्तारमें प्राप्त होकर जब वेगपूर्वक शरीरको कंपावे या गिरावे तब नेत्र स्तंभित (पथरायेसे) हो जाय ठोडी अकडजाय (अर्थात् मुह खुला या भिंचा रह जाय) पँसलियां टूटने लगें मुहसे झागले या कफ गिरे ॥ फिर यदि मनुष्य भीतरको (मुख नाभिकी ओड़) धनुषके आकार नवे (टेढा हो) और बलवान वायु भीतरको शरीर नवावे तो उसे अंतरायाम कहते हैं ॥ यह " अंतरायाम " शिरसे पैरतक भीतरली ओड (मुख छाती नाभि पांवके पंजेकी तरफ) की नसोंमें वायु व्याप्त होनेसे होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च। तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभंजनम् ॥ ५२ ॥

(श्लोक ४८) हनुग्रहस्तु दंडापतानके अन्यत्रापि वायोः स्यादिति (नि० सं०)

(श्लो० ५२) बाह्यप्रतान स्नायुविस्तारम् । बाह्यस्नायुप्रतानस्थ इति बाह्यस्नायवः पादमूलपिंडिकाकटी पृष्ठग्रीवापार्श्वगता ॥

यदि वही वायु (पिंडली टकने पृष्ठ वंश और ग्रीवा) की बाहरकी ओर नसोंके विस्तारमें प्राप्त हो तो मनुष्यको बाहरकी तरफ पीठकी तरफ धनुषाकार नवा देता है इसे बाह्यायाम या बहिरायाम कहते हैं इसे वैद्य असाध्य कहते हैं क्यों कि इसमें छाती कमर ऊरु आदि टूट जाते हैं (यदि ये भग्न नहीं हुवे हो तो कुछ यत्न योग्य होता भी है) और ऊपर लिखे नेत्र पथराना हनुस्तंभ पसलीटूटना आदि अंतरायामके चिन्ह तो प्रायः होतेही हैं ॥ ५२ ॥

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः । कुर्य्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ५३ ॥ अभिघातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः । गर्भपातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ ५४ ॥

यह आक्षेपक वायु चार प्रकारका है कफान्वित आक्षेपक तथा पित्तान्वित और केवल वायुसे चौथाअभिघातज (चोट आदिसे) होताहै (ये भेद कईतो यों कहतेहैं कि कफान्वित तो दंडापतानक और पित्तान्वित अंतरायाम तथा केवल वातिक बाह्यायाम) (और कई उन्हें पृथक् भेद बतलातेहैं और इन्हे पृथक्) ॥ ५३ ॥ अभिघातसे उपजा अपतानक वायु तथा अधिक रक्त निकलनेसे जोहो और स्त्रियो की गर्भपातसेहो ये अपतानक सिद्ध नहीं होते (वास्तवमें आक्षेपककाही भेद अपतानक वायुहै देखो श्लोक ४६ वां)॥५४॥ डाक्टरीमें इस अपतानक (धनुष्वा यु) भेदको " टिटनिस् " कहते हैं और यूनानीवाले " तमद्दुद " और कजाज कहते हैं ।

अधोगमाः सतिर्यग्गा धमनीरूर्द्धदेहगाः । यदा प्रकुपितोत्यर्थं मातरिश्वा प्रपद्यते ॥ ५५ ॥ तदान्यतरपक्षस्य संधिबन्धान्विमोक्षयन् हन्ति पक्षं तमाहुर्हि पक्षाघातं भिषग्वराः ॥ ५६ ॥ यस्य कृत्स्नं शरीरार्द्धमकर्मण्यमचेतनम् । ततः पतत्यसून् वापि जहात्यनिलपीडितः ॥ ५७ ॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः । साध्यमन्येनसंसृष्टं नसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ५८ ॥

अधोगामिनी (नीचेकी) तिर्यक् (तिरछी और ऊर्द्ध देहग) ऊपरकी (आधेशरीरकी) नसोंमें कुपितहुवा वायु प्राप्त होजावे तो दूसरीपक्ष (आधेशरीर) की संधि बंधोंको छोड़कर एकपक्ष (आधेशरीर) को मार (सुन्नकर) देताहै उसे वैद्य "पक्षाघात" कहते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जिसका पूरा आधा शरीर निकर्मा (हलचल न सके) और अचेतन (स्पर्शज्ञानसे रहित) हो जाय तो वह मनुष्य गिर जाता है (वह

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये । उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ ६३ ॥ हसतो जृंभतो भाराद्विषमाच्छयनादपि । शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसंधिगः ॥ ६४ ॥ अर्दयित्वानिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः । वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवाचाप्यपवर्त्तते॥६५॥ शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनां च वैकृतम्।ग्रीवाचिबुकदंतानां तस्मिन् पार्श्वे तु वेदना ॥६६॥ यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् । वायुरूर्द्ध्वं त्वचि स्वापः स्तोदो मन्या हनुग्रहः ॥ ६७ ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥६८॥ क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः । न सिध्यत्यर्दितं बाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६९ ॥

गर्भवती स्त्री,प्रसूता,बालक,वृद्ध तथा क्षीण मनुष्योंको रक्तक्षयमें उच्च स्वरसे बोलने वालोंको अति करड़ा पदार्थ खानेवालोंको ॥६३॥ हसने जमाही लेनेसे बोझ उठानेसे विषम शयन करनेसे शिर नाक होठ चिबुक (ठोडी) ललाट और नेत्र संधि इनमें प्राप्त हुवा वायु मुख आदि स्थानको पीडितकर " अर्दित " वायुरोग उत्पन्न करताहै इसमें ग्रीवा (गरदन) का आधाभाग टेढा होजाताहै (अर्थात् दाहनी या बायी किसी एक तरफका आधा चहरा बाँका होजाताहै) और ग्रीवा (गरदन) भी टेढी होजा-जातीहै ॥ ६४॥ ६५ ॥ शिर चलाथमान होताहै वाणी शिथिल होजाती है नेत्र आदि विकृत होजातेहैं (ओढापन होताहै) ग्रीवा (गरदन) ठोडी दांत येभी टेढे (बेडौल) होजातेहैं और जिस तरफ चेहरेमें टेढापन हो उसी तरफके पार्श्व (पसवाड़े हाथ कंधे ग्रीवाके जोते) आदिमें पीड़ा होतीहै ॥ ६६ ॥ " इसका पूर्वरूप " यहहै कि. रोम-हर्ष हो कंपहो (शरीर कांपने लगे) नेत्रोंमें समल जल आवे वायुका ऊर्द्ध गमनहो त्वचा शून्यसी हो कछु २ पीडाहो मन्यास्तंभ तथा हनुस्तंभहो ॥६७ ॥ इसे व्याधि-योंके जाननेवाले वैद्य अर्दित रोग कहतेहैं ॥ ६८ ॥ " इसकी असाध्यता " क्षीण मनुष्यके तथा जिसकी पलक झिपै नहीं तथा जो कष्टसे बोले और स्पष्ट शब्द न बोलसके तथा तीनवर्ष रोगको बीतजाय अथवा " त्रिवर्ष " जिसके मुख नासिका और नेत्र ये तीनों बहने लगें और जिसके शरीरमे कंप हो उसका अर्दित वायु अति-शय करके सिद्ध नहीं होताहै ॥ ६९ ॥

डाक्टर लोग इसे " फेशियल पेरालेसिस " कहतेहैं और यूनानीवाले " लकवा" कहतेहै- वक्तव्य हम जो रोगोंके प्रति हरेक रोगका डाक्टरी और यूनानीसे यथा संभव

(श्लो० ६९) त्रिवर्षं संवत्सरत्रयातीतम् । अन्येच नासिकाक्षिमुखस्राविणंत्रिवर्षमाहुः । इति निबंधः ।

नाम आदि लिखतेहैं यदि इनमेंसे किसीके कारणों अथवा लक्षणोंमें कुछ अंतरभी होतो वह देशांतरका भेदसे या देशांतरीय विद्वानोंके विचारका फरक जानना चाहिये

गृध्रसी ।

पार्ष्णीं प्रत्यंगुलीनां तु कंडरा यां निलार्दिता। सक्थ्नोः क्षेपं निगृह्णीयाद् गृध्रसीति हि सा स्मृता ॥ ७० ॥

टाकणे (टखने) और अंगुलीयोंकी कण्डरा (मोटीनसें) वायुसे व्याप्त हों और साथलोंके फरकनेको बंध कर दें तो उसे " गृध्रसी " वायु कहते हैं इसमें पाव बांके टेढे पड़ते हैं ठीक पद क्षेपणका अवरोध हो जाता है और साथलोंमें बांकापन होनेसे देहमें बांकापन हो जाता है ॥ ७० ॥

विश्वाची ।

तलं प्रत्यंगुलीनां तु कंडरा बाहुपृष्ठतः। बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाचीति हि सा स्मृता ॥ ७१ ॥

अंगुलियोंके नीचे बाहुके पृष्ठकी तरफ जो मोटीनसहैं उनमें प्राप्त हुई वायु जो बाहुओंके कार्य (वस्तु पकड़ना उठना मोड़ना आदि) को नष्ट कर दे वह " विश्वाची " नाम वातव्याधि कहलाती है ॥ ७१ ॥

क्रोष्टुशीर्ष ।

वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः। शिरःक्रोष्टुकपूर्वं तु स्थूलं क्रोष्टकमूर्द्धवत् ॥ ७२ ॥

वात और रुधिरसे उत्पन्न हुवा महाशूलवाला गोडेमें जो शोथ है और क्रोष्टु-(शृगालके) शिरके समान जिसमें स्थूलता हो उसे क्रोष्टु शिर (क्रोष्टुशीर्ष) रोग कहते हैं ॥ ७२ ॥

वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कंडरामाक्षिपेद्यदा। खंजस्तदा भवेज्जन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ७३ ॥ प्रक्रामन्वेपते यस्तु खंजन्निव च गच्छति। कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ॥ ७४ ॥

कटिमें स्थित हुवा वायु साथलकी नसोंको शिथिल करदे (मारदे) उससे मनुष्य खंज (विकलगति) हो जाता है (इसको " खंज " रोग) कहतेहैं और यदि दोनों साथलों (कूलेके जोड़ों) की नसें शिथिलकर देवे तो मनुष्य पंगु (पांगला)

(श्लो० ७०) गृध्रसीविवेचनं तंत्रांतरात्--स्फिक्पूर्वा कटीपृष्ठजानुजंघापदं क्रमात्। गृध्रसीस्तंभरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पंदते मुहुः। वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः। वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीव वक्रता। जानुजंघोरुसंधीनां स्फुरणं स्तंभता भृशम्। वातश्लेष्मोद्भवायां तु गौरवं वह्निमार्दवम्। तद्रा मुखप्रसेकं च भक्तद्वेषस्तथैव च इति ॥

हो जाता है (इसे "पंगु" कहते हैं) (इसमें खड़ा होकर मनुष्य नहीं चल सकता बैठा २ पावोंको घीसता चलता है) ॥ ७३ ॥ और जो पांव रखते हुवे कॉप झोंके खाता हुवा चले उसे "कलायखंज" व्याधि कहतेहैं इसमें संधियोंके बंध ढीले हो जाते हैं ॥ ७४ ॥

न्यस्ते तु विषमे पादे रुजः कुर्यात्समीरणः। वातकंटक इत्येष विज्ञेयः खुडकाश्रितः ॥ ७५ ॥

ऊँची नीची जगहमें (अचानक) पांव रखनेसे खुडक (पांवकी संधियां टखने) में व्याप्त होकर वायु जो पीडा करे उसे "वातकंटक" व्याधि कहते हैं ॥ ७५ ॥

यूनानी हकीम इसे नुकरसकी किसम कहते हैं ॥

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोनिलः । विशेषतश्चंक्रमतः पाददाहं तमादिशेत् ॥ ७६ ॥ हृष्यतश्चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तवत् । पादहर्षः सविज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ ७७ ॥

पित्त और रुधिरसे मिला हुवा वायु दोनों पावोंमें विशेष करके चलते समय दाह पैदा करे उसे "पाददाह" नामक व्याधिको कहतेहैं ॥ ७६ ॥ जिसके पांव रोम हर्ष युक्तहों और सोये हुवेसे (झनमनाट युक्तसे) हों वह कफ वायुके कोपसे उपजा "पाद हर्ष" नामक रोग होता है ॥ ७७ ॥

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयित्वा सबंधनम्। शिराः स्त्वा कुच्य तत्रस्थो जनयत्यपबाहुकम् ॥ ७८ ॥

अंस (काँधे) में स्थित हुवा वायु अंसके बंधनरूप कफको सुखाकर वहाँकी नसोंको सकोड़कर तहां स्थित हुवा वायु "अपबाहुक" नाम व्याधि उत्पन्न करताहै (इसमें हाथ मुड़ता या सीधा होता नहीं) ॥ ७८ ॥

यदा शब्दवहं स्रोतो वायुरावृत्य तिष्ठति । शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥७९॥ हनुशंखशिरोग्रीवं यस्य भिंदन्निवानिलः। कर्णयोः कुरुते शूलं कर्णशूलं तदुच्यते ॥ ८० ॥

शब्दके बहने (भींतर लेजाने) वाली कानकी नसोंको रोककर स्थित हुवा शुद्ध (अकेला) वायु अथवा कफसे मिलाहुवा वायुही उससे बाधिर्य (बहरापन) होताहै (इसे बाधिर्यनामक व्याधि कहतेहैं)॥ ७९ ॥ हनु (ठोडी) शंख (कनपटी) शिर

(श्लो० ७५) खुडकाश्रितः इति पादजंघासंधिसंश्रयः इत्यर्थः पार्ष्णीस्थितश्चेत्यन्ये ॥

(श्लो० ७७) हृष्यतः इति हर्षो रोमांचप्रायो वेदना विशेषोन्तःशीतकरः इति डल्हनः ॥

और ग्रीवा इन स्थानोंको भेदन करता हुवासा वायु जिसके कानमें दरद करे तो उसे कर्णशूलनामक वातव्याधि कहतेहैं ॥ ८० ॥

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः । नरान्करोत्यक्रियकान् मूकमिन्मिर्णगद्गदान् ॥ ८१ ॥

शब्दके बहनेवाली जिह्वाकी धमनियोंको रोककर कफयुक्त वायु ([illegible] वायु) मनुष्योंको जिह्वाके कार्यसे रहित गूँगा या मिनमिणा या गद्गदवाणीवाली (कावा) करदेतीहै ॥ ८१ ॥

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता। भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूणी-त्युपदिश्यते ॥ ८२ ॥ गुदोपस्थोत्थितासैवप्रतिलोमविसर्पिणी। वेगैःप क्वाशयं याति प्रतितूणी तु सा स्मृता ॥ ८३ ॥

(वक्तव्य) बाधिर्य और कर्णशूलके यूनानी डाक्डरी नामादि कर्णरोगके प्रकरणमें कहेजावेंगे और मूकादिकको जिह्वारोगके प्रकरणमें देख लेना इसीप्रकार और व्याधि-योंकेभी नाम आदि उनके मुख्य प्रकरणमें लिखे जावेंगे ॥

मलाशय और मूत्राशयसे उठी हुई वेदना (शूल) गुदा और लिंगको भेदन करती हुईसी जो नीचेको गमन करे वह " तूणी " नामक वात व्याधि कहलाती है ॥ ८२ ॥ और गुदा तथा उपस्थ (लिंग) से उठी हुई पीडा प्रतिलोम (उलटी ऊपरको) गमन करनेवाली अपने वेगोंसे (उलटी) पक्वाशयमें पहुँचे तो उसे " प्रतितूणी " कहते हैं ॥ ८३ ॥

आटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् । आध्मानमिति जानीयाद्धोरं वातनिरोधजम् ॥ ८४ ॥ विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् । प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥ ८५ ॥

आटोप करके सहित बहुत उग्र पीडा करनेवाला जिसमें उदर (पक्वाशय) मशककी भांत (फूल जाय उसे " आध्मान " रोग जानना चाहिये यह घोर व्याधि (प्रायः) (अधो) वायुके रोकनेसे होती है ॥ ८४ ॥ और इसी प्र[illegible]की (व्याधि आमाशयमें हो) नाभिसे ऊपर पेट फूले और पँसवाड़े और [illegible] फट जाय तो उसे " प्रत्याध्मान " नामक व्याधि कहते हैं इससे कफमें मिल[illegible] वायु होती है ॥ ८५ ॥

(वक्तव्य) आध्मानका अफारा पक्वाशय (नाभिके नीचे) के स्थानमें होता है जो केवल, वायुकृत होता है और प्रत्याध्मानका आमाशयमें (नाभिसे ऊपर)

और इसमें कफ युक्त वायुकृत होता है (इनके यूनानी डाक्टरी नामादि इनके मुख्य प्रकरणमें कहेंगे)

अष्ठीलावर्द्धनं ग्रन्थिमूर्द्ध्वमायतमुन्नतम् । वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनाम् ॥ ८६ ॥ एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् । प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्य्यगुत्थिताम् ॥ ८७ ॥

इति निदानेप्रथमोध्यायः ।

पाषाणके तुल्य करड़ी ग्रंथी ऊपरको फैली हुई ऊंची हो और बाहरके मार्गों (मलके मार्ग और मूत्रके मार्ग इन)को रोकनेवाली हो उसे (वाताष्ठीला) जानना चाहिये ॥ ८५ ॥ और यही जो पीडायुक्त हो और अधोवायु विष्ठामूत्रको रोकने वाली हो और पेटमें तिरछी और उठी हुई हो उसे प्रत्यष्ठीला कहते हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सटिप्पणीकसान्वयभाषाटीकायां निदानस्थानेप्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी अर्श (बवासीर) के निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

षडर्शांसि भवंति वातपित्तकफशोणितसन्निपातैः सहजानि चेति ॥ १ ॥ तत्रानात्मवतां यथोक्तैः प्रकोपणैर्विरुद्धाध्यशनस्त्रीप्रसंगोत्कटकासन पृष्ठयानवेगविधारणादिभिर्विशेषैःप्रकुपिता दोषाः एकशो द्विशः समस्ताः शोणितसहिता वा यथोक्तप्रसृताः प्रधानधमनीरनुप्रपद्याऽधोगत्वा गुदमागम्य प्रदुष्य वलीमांसप्ररोहान् जनयंति ॥ २ ॥

अर्श (बवासीर) छः (६) प्रकारकी होतीहै वातसे पित्तसे कफसे सन्निपातसे रक्तसे और सहज (जन्मसे) ॥ १ ॥ तहां जो मनुष्य जितेंद्रिय नहींहै इनके यथोक्त (हिताहितीय अध्यायोक्त अपथ्य भोजन जो दोषोंको प्रकुपितकरे उससे (अर्थात् दोषोंके कोप करनेवाले आहार विहारसे) विरुद्ध भोजनसे भोजनपर भोजन करनेसे) और अति स्त्री सेवनसे उत्कटकासन (बहुत जोरसे खांसनेसे) अथवा उत्कटक आसन (बहुत कठोर आसनसे बैठे रहनेसे) पृष्ठयान (अश्व वृषादिकी पीठपर अयुक्तसवारी करने)से वेगोंके रोकनेसे इत्यादि विशेष कुपथ्योंसे कुपित हुये दोष

(गद्य १) षडर्शांसीत्यत्र तानिद्विविधानि शुष्काण्यार्द्राणि तत्रवातश्लेष्मोत्तरणि शुष्काणि रक्तपित्तोत्तराण्यार्द्राणि "तथाचोक्तं चरके" वातश्लेष्मोल्बणान्याहुः शुष्काण्यर्शांसितद्विदुः प्रस्रावीणितथार्द्राणि रक्तपित्तोल्बणानिच ॥

(गद्य २) यथोक्तप्रसृताः पूर्वोक्त पंचदशधा प्रसृताः ॥

एक २ अकेले तथा दोदो मिलकर तथा सब तीनों दोष तथा रक्तसहित यथोक्त प्रसरित हुवे प्रधान धमनी (पुरीष वाहिनी धमनी) में अनुसरण कर नीचे गमन करके गुदास्थानमें प्राप्त होकर और गुदाकी त्रिवलीको दूषित करके मांसप्ररोह अर्थात् मस्से उत्पन्न कर देतेहैं ॥ २ ॥

विशेषतो मंदाग्नेस्तथा तृणकाष्ठोपललोष्टवस्त्रादिभिः शीतोदकसंस्पर्शनाद्वा कंदाः परिवृद्धिमासादयन्ति तान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥ ३ ॥

वे मस्से विशेषकर मंदाग्नि मनुष्योंके तथा तृण काठ पत्थर लोहादि धातु और वस्त्र आदिके रगडाव आदिसे अथवा अति ठंढे (और अति गरम) जलके स्पर्शसे वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं उन्हे (गुदाके मस्सोंको) अर्श अर्थात् बवासीर कहते हैं॥ ३॥

तत्र स्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्द्धपंचांगुलं गुदमाहुस्तस्मिन् वलयस्तिस्रोऽध्यर्द्धांगुलांतरभूताप्रवाहिणी विसर्जनी संवरणी चेति ॥ ४ ॥ चतुरंगुलायेताः सर्वास्तिर्यगेकांगुलोछ्रिताः शंखावर्तनिभाश्चापि उपर्युपरि संस्थिताः ॥ ५ ॥ ६ ॥ गजतालुनिभाश्चापि वर्णतः संप्रकीर्त्तिताः । रोमांतेभ्यो यवाध्यर्द्धो गुदौष्ठः परिकीर्त्तितः ॥ ७ ॥

तहां मोटी अंतडी (जिसमेंसे विष्ठा आती है उस)से प्रतिबद्ध (मिला हुवा) साढेपाँच अंगुल प्रमाणका गुदास्थान है उसमें डेढ डेढ अंगुलकी तीन वली (छल्ले) हैं (वे छल्ले डेढ डेढ अंगुलके अंतरसे एकके परे दूसरा इस प्रकारसे है उन तीनोंको त्रिवली कहते हैं) उनमेंसे पहिली वली प्रवाहिणी दूसरी विसर्जनी तीसरी संवरणी है॥ ४॥ये सब वली चार अंगुल चौड़ी (मोटी) और तिरछी हुई एक अंगुल उभरी हुई शंखकी आवृत्ति (आंटी) की तरह एकके ऊपर एक (एकसे परे दूसरी) ऐसी है ॥ ५॥ ६॥ और आकारमें हाथीके तालुके समान हैं तथा डेढ जो (आधे अंगुल) प्रमाणको गुदाका ओष्ठ (किनारा) रोमांतसे (अर्थात् जहां रोमका अंत है वहांसे) सारांश यह कि बाहर जहाँतक रोम हैं वहाँसे अगाड़ी भीतरको आध अंगुल तो गुदाका किनारा है फिर तीन वली भीतरको हैं) ॥ ७ ॥

प्रथमा तु गुदौष्ठादंगुलमात्रे ॥ ८ ॥ तेषां तु भविष्यतां पूर्वरूपाण्यन्नेन श्रद्धा कृच्छ्रात्पक्तिरम्लीका सक्थिसदनमाटोपः कार्श्यमुद्गारबाहुल्यमक्ष्णोश्च श्वयथुरन्त्रकूजनं गुदपरिकर्तनमाशंका पांडुरोगग्रहणीदोषाणां कासश्वासौ भ्रमस्तंद्रानिद्रेन्द्रियदौर्बल्यं च जातेष्वेतानि रूपाणि प्रव्यक्ततराणि भवंति ॥ ९ ॥

प्रथम वली तो गुदाके किनारेसे अनुमान एक अंगुल मात्र अंदरहै (इसमें विशेष करके अर्श होताहै) ॥ ८ ॥ अर्शके मस्सोंके पैदा होनेका पूर्वरूप यह है कि अन्नमें श्रद्धा न होना कष्टसे पचना खट्टी डकारें आना साथलोंका थकना पेट अफरासा होना कृशता होना डकारें बहुत आना नेत्रोंके किनारोंपर शोथ होना पेटमें आंतोंका (गुडगुड) शब्द होना गुदामें कतरनीसी रहना पांडुरोग तथा ग्रहणीदोषकीशंका होना खासी और श्वास भ्रम तंद्रा निद्रा अधिक और इंद्रियोंमें दुर्बलता होजाना ये लक्षण बवासीरके होनेसे प्रथम प्रगट होजातेहैं (ये सब लक्षण या इनमेंसे थोडेसे लक्षण होतेहैं) अथवा मस्से होजानेपर ये रूप सब प्रगट होजातेहैं ॥ ९ ॥

वातार्श।

तत्र मारुतात्परिशुष्कारुणवर्णानि विषममयानि कदंबपुष्पतुण्डिकेरीनाडीमुकुलसूचीमुखाकृतीनि च भवंति तैरुपहतः सशूलं संहतमुपवेश्यते कटीपृष्ठपार्श्वमेढ्रगुदनाभिप्रदेशेषु चास्य वेदना । गुल्माष्ठीलाप्लीहोदराणिचास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति । कृष्णात्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १० ॥

तिसमें वायुसे उपजी अर्शमें सूखे लाल वर्णके बीचसे टेढे कदंबके पुष्प और तुंडकेरी (निरमावणके पुष्प) के समान तथा नाडी (नाली) के पुष्पके समान तथा सूईके समान पैने मुखकी आकृतिवाले मस्से होतेहैं । इन करके पीडित मनुष्य शूल (दरद मरोडे) सहित करडा (और देरसे) दस्त जाता है और मनुष्यके कमर पीठ पसली लिंग गुदा और नाभि इन प्रदेशोंमें पीडा रहती है और गुल्म वाताष्ठीला प्लीहावृद्धि उदररोग ये इसके तन्निमित्त अर्थात् उपद्रव हो जाते हैं । और इस वातार्शके रोगी मनुष्यके त्वचा नख नेत्र दांत मुख तथा मूत्र और पुरीष ये सब काले पड़ जातेहैं ॥ १० ॥

पित्तान्नीलाग्राणि तनूनि विसर्पीणि पीतावभासानि यकृत्प्रकाशानि शुकजिह्वासंस्थानानि यवमध्यानि जलौकोवक्त्रसदृशानि प्रक्लिन्नानि च भवंति। तै रुपहतः सदाहं सरुधिरमतिसार्यते । ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चोपद्रवा भवंति । पीतत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ ११ ॥

(गद्य १०) उदावर्तकर्णशब्दशंखशूलादयोऽन्येऽप्युपद्रवाः वातार्शसश्चरकादिभिर्लिखिताः ॥

(गद्य ११) तथाच पित्तार्शसउपद्रवाः अरत्यादयोज्ञेयाः ॥

पित्तसे उपजी बवासीरके मस्से अग्रभागमेंसे नीले होतेहैं यकृत्के तुल्य प्रकाश-वाले (चमकीले) और पीलायन लिये होतेहैं छोटे छोटे होतेहैं शीघ्र फैलनेवाले होतेहैं तोतेकी जिह्वाके आकार होतेहैं और बीचसे जौकीतरह मोटे होतेहैं तथा जलौक (जोंख) के मुखके समान होतेहैं और गीले और झिरनेवाले होतेहैं इनसे पीडित मनुष्य दाहयुक्त और रुधिरसे मिला दस्त जातेहैं और इस पित्तार्शके उपद्रव येहैं कि ज्वर दाह तृषा और मूर्च्छा तथा इस पित्तकी बवासीरके रोगीके त्वचा नख नेत्र दांत मुख एवं मूत्र और विष्ठा पीले (पिलोहे) होते हैं ॥ ११ ॥

श्लेष्मजानि श्वेतानि महामूलानि स्थिराणि वृत्तानि स्निग्धानि पांडूनि करीरपनसास्थिगोस्तनाकाराणि न भिद्यन्ते न स्रवन्ति कंडूबहुलानि च भवंति । तै रुपहतः सश्लेष्माणमनल्पं मांसधावनप्रकाशमतिसार्यते । शोफशीतज्वरारोचकाविपाकशिरोगौरवाणि चास्य तन्निमितान्येव भवंति । शुक्लत्वङ्नखनयनरदनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १२ ॥

कफसे उपजी बवासीरके मस्से सुपेद जड़मेंसे मोटे स्थिर गोल चिकने धूंधले होतेहैं तथा टेंट और वढलके बीज तथा द्राक्षाके आकारके होतेहैं नवे फटे होतेहैं न झिरतेहैं उनमें विशेषकर खाज होतीहै इससे पीडित मनुष्य कफयुक्त बहुतसा तथा मांस धोवनसा दस्त जातेहैं और शोथ शीतज्वर अरुचि पचाव न होना शिर भारी रहना ये इसके उपद्रवहैं तथा कफार्शवाले रोगीके त्वचा नख नेत्र दांत मुख एवं मूत्र और मल सुपेद प्रायः होतेहैं ॥ १२ ॥

रक्तजानि न्यग्रोधप्ररोहविद्रुमकाकणंतिकाफलसदृशानिपित्तलक्षणानि च । यदावगाढपुरीषप्रपीडितानि भवंति तदात्यर्थं दुष्टमनल्पमसृक् सहसा विसृजंति । तस्यैवातिप्रवृत्तौ शोणितातियोगोपद्रवाणि भवंति॥ १३ ॥

रक्तकी बवासीरके मस्से वड़की कोंपलकेरंग या मूँगे तथा चिरभटीके सदृश होतेहैं उनमें प्रायः पित्तकेसे लक्षण होतेहैं और जब गाढा मल हो उससे रगड़खावें (या और आंत जोर पड़े या अति गरम भोजनादि हो) तब प्रायः बहुतसा दुष्ट रक्त दस्तके राहसे आताहै (मस्सोंसे निकलताहै) और जब इसकी (रुधिरकी) अधिक प्रवृत्ति होतीहै (अर्थात् अधिक खून निकलता है) तब अति रक्त निकलनेसे (बेहोशी गिरपड़ना आंखों आगे अंधेरा आना आदि) उपद्रव होतेहैं ॥ १३ ॥

(गद्य १२) कफार्शेषु [illegible] कार्द-प्रतिश्याय-मूत्रकृच्छ्र-शर्कराश्मरीगौरवादयो [illegible] ॥

(गद्य १३) काकणंतिका गुंजा काकादनीत्यपरे । पित्तलक्षणानि च इत्यत्र पित्तलक्षणयुक्तानि चकारोऽनु [illegible] मुचिनोति । (इति डल्हनः) ॥

सन्निपातजानि सर्वदोषलक्षणयुक्तानि भवंति ॥ १४ ॥ सहजानि दुष्ट शोणितशुक्रनिमित्तानि तेषां दोषतः एव प्रसाधनं कर्तव्यम् ॥ १५॥ विशेषतश्चात्र दुर्दर्शनानि परुषाणि पांडूनि दारुणान्यंतर्मुखानि तैरुपहतः कृशोल्पभुक् शिरासंततगात्रोल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधनोल्पाग्निर्घ्राणशिरोऽक्षिश्रवणरोगवान् सततमंत्रकूजनाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते ॥ १६ ॥

सन्निपातकी बवासीरके मस्सोंमें सब दोषों (वायु पित्त कफ रक्त) के लक्षण मिले हुवे (और सबके उपद्रव) होतेहैं ॥ १४ ॥ और जन्मसे हुई बवासीर माता पिताके रज और वीर्यकी दुष्टताके कारणसे होती है उनका दोषकी प्रधानताकी अनुसारही साधन करना चाहिये ॥ १५ ॥ विशेष करके इसमें मस्से दुर्दर्शन (बुरे रूपवाले) कठोर धूँधले और दारुण भींतरको मुखवाले होते हैं तिनसे पीडित मनुष्य कृश होता है थोड़ा भोजन करता है उसका शरीर नस्सोंसे (स्फुट) व्याप्त रहता है संतानभी कम होते हैं क्षीणवीर्य होता है फूटी कांसी जैसा स्वर होता है क्रोधयुक्त और अल्प अग्नि होती है तथा नासिका शिर नेत्र और कर्णके रोगोंसे व्याप्त होता है सदा पेटमें आँत गुडगुड शब्द करती हैं अफरासाभी रहा करता है तथा हृदयमें लिपावसा रहता है तथा अरुचि आदि रोगोंसे पीडित रहता है ॥ १६ ॥

यूनानी हकीम इसे बवासीरही कहते हैं इसके दो भेद लिखते हैं एक वह जिसमें मस्से स्पष्ट जाहिर हों दूसरा वह जिसमें मस्से जाहिर न हों इसीको "रियाह बवासीर" कहते हैं मस्सेवाली बवासीरमें दरद होना खाज या खून आना आदि सब लक्षण होतेही हैं परंतु रियाह बवासीरमें कबजीयत गुदा बस्ती आदिमें दरद मलका जलदी न उतरना कभी मूत्र बंध होना कभी बंधा पड़ना आदि उपद्रव होते हैं इसका कारण गली जरिह बताते हैं जो गुरदेमें पैदा हो या और जगहसे वहां आवे डाक्टरीमें इसे हिमोरइडस् (Hemorrhaids) कहते हैं ॥

(वक्तव्य) जिसे यूनानीवाले रियाह बवासीर कहते हैं वैद्यकसे अंतर्बली गत वातार्श है और शेष उसके उपद्रव ॥

साध्य असाध्य अर्श ।

भवन्ति चात्र ॥ बाह्यमध्यवलिस्थानां प्रतिकुर्य्याद्भिषग्वरः । अंतर्वलिसमुत्थानां प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम् ॥ १७ ॥

(गद्य १६) अर्शसां विशेषोपद्रवः मुद्गकोद्रवजूर्णाह्वकरीरचणकादिभिः रूक्षैःसंग्राहिभिर्वायुः स्वस्थाने कुपितो बली अधोवहानिस्रोतांसिसंरुध्याधः प्रशोषयन् पुरीषं वातविण्मूत्रसंगं कुर्वीतदारुणम् दुर्नामामित्युदावर्तः परमोपद्रवः (इति वाग्भटः) ॥

(श्लो० १७) प्रत्याख्याय असाध्यान्येतान्यर्शांसीतिनिराकृत्यक्रियां आचरेदित्यर्थः ॥

यहां श्लोक है कि ॥ बाहर बाहरली त्रिवली तथा मध्यकी त्रिवलीमें होनेवाली बवासीरकी वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये और जो तीसरी भीतरकी त्रिवलीमें बवासीरके मस्से हों तो यह असाध्य है ऐसा कहकर यादि (क्रिया) चिकित्साका आचरण करे तो करे (नहीं तो चिकित्साही नहीं करे) ॥ १७ ॥

मेढ्रगतअर्श ।

प्रकुपितास्तु दोषा मेढ्रमभिप्रपन्ना मांसशोणिते प्रदूष्य कंडूं जनयंति ततः कंडूयनात्क्षतं समुपजायते तस्मिंश्चक्षते दुष्टमांसेजाः प्ररोहाः पिच्छिलरुधिरस्राविणो जायंते कूर्चकिनोऽभ्यंतरमुपरिष्टाद्वा ते तु शेफो विनाशयंत्युपघ्नंति च पुंस्त्वम् ॥ १८ ॥

कुपित हुवा वातादि दोष मेढ्र (लिंग इंद्रिय) में प्राप्त हों तब मांस और रुधिर को दूषित करके वहां खाज पैदा कर देतेहैं तब खुजानेसे क्षत घाव पड़ जाता है उस घावमें दुष्ट मांसके अंकुर (मस्से) हो जातेहैं उनमेंसे गाढी पीपसी तथा रुधिर झिरने लगता है ये खरधरे अंकुर भींतर तथा बाहर होतेहैं ये लिंग इंद्रियको गिरा देते हैं तथा पुरुषत्वका नाश कर देते हैं ॥ १८ ॥

योनिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान् दुर्गंधान् पिच्छलरुधिरस्राविणछत्राकारान् करीरान् जनयंति ॥ १९ ॥

स्त्रियोंकी योनिमें प्राप्त हुवे वातादि दोष (मांस शोणितको दूषित करके) कोमल दुर्गंधित छत्रके आकार करीर अर्थात् मस्से पैदा करते हैं उन मस्सोंमेंसे गाढा रुधिर झिरता रहताहै ॥ १९ ॥

कान नेत्र नाक मुख इनकी अर्श ।

त एवोर्द्ध्वमागताःश्रोत्राक्षिघ्राणवदनेष्वर्शांस्युपनिर्वर्तयन्ति ॥ २० ॥ तत्र कर्णजेषु बाधिर्यं शूलं पूतिकर्णता च ॥ २१ ॥ नेत्रजेषु वर्त्मावरोधो वेदनास्रावो दर्शननाशश्च ॥ २२ ॥ घ्राणजेषु प्रतिश्यायोतिमात्रं क्षवथुः कृच्छ्रोच्छ्वासता पूतिनस्यं सानुनासिकवाक्यत्वं शिरोदुःखं च ॥ २३ ॥ वक्त्रजेषु कंठोष्ठतालूनामन्यतमस्मिंस्तैर्गद्गदवाक्यता रसाज्ञानं मुखरोगाश्च भवंति ॥ २४ ॥

(गद्य १८) कूर्चकिनः सूक्ष्मदीर्घांकुरसंतानवंतः उपरिष्टात् बाह्यचर्माणि (इति निबंधसं०) ॥
(गद्य २४) वक्त्रजेषु कंठोष्ठादीनां अन्यतमस्मिन् मांसांकुरा भवंतीत्यर्थः तैर्गद्गदवाक्यतादयोभवंति ॥

वेही वात आदि दोष ऊपरके द्वारोंमें प्राप्त हों तो कर्ण नेत्र नासिका मुख इन स्थानोंमें (मांस रुधिरको दूषित करके) बवासीर अर्थात् मस्से पैदा करतेहैं॥ २०॥ उनमेंसे कानमें मस्से होंतो बधिरता शूल और कानमें दुर्गंध होजाती है ॥ २१ ॥ नेत्रमें मस्सा हो जानेसे पलक झिरना बंध होजाताहै दरद होताहै पानीसा बह ताहै और दृष्टिका नाश होजाताहै ॥ २२ ॥ नासिकामें मस्सा हो तो बहुत जुखाम हो और छींकें आवें कष्टसे सांस लिया जाय नाकसे दुर्गंध आवे गुणगुणी आवाज होजाय और शिरमें दरद रहै ॥ २३ ॥ मुखमें मस्से हों तो कंठमें तालुमें या और जगह हों उनके होनेसे गद्गद वाणी हो या रसका ज्ञान नहीं रहे तथा मुखके अनेक रोग होजावें ॥ २४ ॥

व्यानस्तु प्रकुपितः श्लेष्माणं परिगृह्य बहिः स्थिराणि कीलवदर्शांसि निर्वर्तयंति तानि चर्मकीलान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥ २५ ॥ भवंति चात्र॥ तेषु कीलेषु निस्तोदो मारुतेनोपजायते। श्लेष्मणा तु सवर्णत्वं ग्रंथित्वं च विनिर्दिशेत् ॥ २६ ॥ पित्तशोणितजं रौक्ष्यं कृष्णत्वं रक्तता तथा।समु दीर्णखरत्वं च चर्मकीलस्य लक्षणम् ॥ २७ ॥

सारे शरीर व्यापी व्यान वायु कुपित हो और कफको ग्रहण करके बाहर शरीरकी त्वचामें स्थिररूप कीलके तुल्य मस्से उत्पन्न कर देती है उन चर्मकीलोंके भी अर्श (त्वग्गतार्श) ऐसा कहते हैं ॥ २५ ॥ इसमें श्लोक हैं कि वायुके दोषसे उन चर्मकीलोंमें निस्तोद (दरद) होता है और कफसे शरीरके तुल्य वर्ण और गाठेंसी होती हैं ॥ २६ ॥ पित्त और रुधिरसे रूखापन कालापन तथा लाली होती है और कठिनता खरधरापन भी यदि इनमें हो तो सन्निपातज हैं (चकारसे सन्निपातका ग्रहण होता है) ये चर्मकीलके लक्षण है ॥ २७ ॥

द्वंद्वजआदि अर्श ।

अर्शसां लक्षणं व्यासादुक्तं सामान्यतस्तु यत् । तत्सर्वं प्राग् विनिर्दिष्टात् साधयेद्भिषजांवरः ॥ २८ ॥ अर्शःसु दृश्यते रूपं यदा दोषद्व यस्य तु। संसर्गं तं विजानीयात् संसर्गः स च षड्विधः ॥ २९ ॥

अर्श बवासीरके लक्षण सामान्यतासे विस्तारपूर्वक जैसे वर्णन किये उन सबको पूर्व निर्देशके अनुसार वैद्य साधना करे ॥ २८ ॥ और जो अर्शमें दो दोषोंका

(श्लो० २७) चकारादत्र सान्निपातिकस्यलक्षणंबोधव्यम् ॥

(श्लो० २८) प्राग्विनिर्दिष्टात् पूर्वोक्तवातादेर्लक्षणनिर्देशात् (इतिगयदासाचार्य) अन्येतुसामान्यतस्तु योह्यान्यासात्तुप्राग्विनिर्दिष्टात् पंचदशधामसरात् इति दल्हनः ॥

रूप दिखाई देवे तो उसे संसर्गज (द्वंद्वज) जानो यह संसर्ग छः प्रकारका होता है जैसे १ वातपित्त २ वातकफ ३ कफपित्त ४ वातशोणित ५ पित्तशोणित ६ श्लेष्मशोणित ॥ २९ ॥

त्रिदोषाण्यल्पलिंगानि याप्यानि तु विनिर्दिशेत् । द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥ ३० ॥ कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च । सन्निपातसमुत्थानि सहजानि तु वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ सर्वाः स्यु र्वलयो येषांदुर्नामभिरुपद्रुताः । तैस्तु प्रतिहतो वायु रपानः सन्निवर्तते । ततो व्यानेन संगम्य ज्योति र्मृद्नाति देहिनाम् ॥ ३२ ॥

इति निदानेद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीन दोषोंके जिसमें थोड़े लक्षण हों वह बवासीर याप्य है तथा द्वंद्वज (दो दोषोंकी) और दूसरी वलीमें हो वहभी याप्यही जानो ॥ ३० ॥ और यदि येही एक वर्षसे ऊपरकी होजाय तो कष्टसाध्य होजातीहै और सान्निपात (सब दोषों) की हो तथा जन्मसे पैदाहुई हो वह (असाध्यहै) त्यागने योग्यहै ॥ ३१ ॥ जिस मनुष्यके सारी तीनों गुदाकी वली बवासीरके मस्सोंसे व्याप्त होजाय तब उन मस्सों करके अवरोधित हुई अपानवायु ठीक नहीं सरती फिर वह रुकी हुई अपानवायु व्यानमें मिलजाती है और ज्योतिःशारीरक अग्निको नाश करदेतीहै ॥ ३२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोऽश्मरीणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अश्मरी (पथरी) (और शर्करा)के निदानका व्याख्यान करतेहैं ।

चतस्रोऽश्मर्यो भवंति श्लेष्माधिष्ठानास्तद्यथा । श्लेष्मणा वातेन पित्तेन शुक्रेण चेति ॥ १ ॥ तथा संशोधनशीलस्यापथ्यकारिणः प्रकुपितः श्लेष्मा मूत्रसंपृक्तोऽनुप्रविश्य बस्तिमश्मरीं जनयति ॥ २ ॥

कफके मुख्य कारणसे अश्मरी (पथरी) चार प्रकारकी होतीहै यथा कफसे वायुसे पित्तसे और शुक्रसे ॥ १ ॥ " अश्मरीकी संप्राप्ति " तहां शोधन नहीं करने वालोंके (जो वमन रेचनादि करके कफका शोधन नहीं करते उनके) तथा कुपथ्य करने वालोंके कुपित हुवा कफ मूत्रमें मिलकर बस्ति (मूत्राशयमें) अर्थात् मसानेमें प्रविष्ट होकर पथरी पैदा करताहै ॥ २ ॥

(मत्र १) अत्राश्मरीग्रहणं हेतुका शर्करापि बोधव्या । श्लेष्माधिष्ठाना श्लेष्मोपादानकारणा ।

तासां पूर्वरूपाणि बस्तिपीडाऽरोचकौ मूत्रकृच्छ्रं बस्तिशिरो मुष्कशेफसां वेदना कृच्छ्राज्ज्वरावसादौ बस्तगंधित्वं मूत्रस्येति ॥ ३ ॥ यथास्वं वेदनावर्णं दुष्टं सांद्रमथाविलम् । पूर्वरूपेऽश्मनः कृच्छ्रान्मूत्रं सृजति मानवः ॥ ४ ॥

अश्मरीके पूर्वरूप येहैं कि बस्तिस्थानमें पीडा हो अरुचि मूत्र कष्टसे हो बस्ति मुख लिंग वृषण इनमें वेदनाहो और कृच्छ्रके कारणसे ज्वर और ग्लानिहो और मूत्रमें छगलकेसी गंध हो ॥ ३ ॥ तथा जिस दोषोल्बणकी अश्मरी होनेवाली हो उसके अनुसार वेदना हो और वैसाही मूत्रका रंगहो तथा मूत्र दूषित गाढा आविल (तारछुटे मैला) हो और मनुष्य कष्टसे मूत्रोत्सर्ग करे ॥ ४ ॥

अश्मरीके सामान्य लक्षण ।

अथ जातासु नाभिबस्तिसेवनीमेहनेष्वन्यतमस्मिन् महतो वेदना मूत्रधारासंगः सरुधिरमूत्रता मूत्रविकिरणं च गोमेदप्रकाशमनाविलं ससिकतं विसृजति धावनलंघनप्लवनपृष्ठयानाध्वगमनैश्चास्य वेदना भवति ॥५॥

जब अश्मरी (पथरी) पैदा हो जाय तब नाभि बस्ति सीवन लिंग इनमें कहीं मूत्र करते समय पीडा हो मूत्रकी धारा रुके (कभी २) रुधिरयुक्त मूत्र हो मूत्र टपके टपके आवे और गोमेदके रंगका (शरबती) और तार छुटनेसे रहित बल्कि रेतसेकी फुटकसे मिला मूत्र (पेशाब) करे और भागने उलाँघने कूदनेसे तथा पीठपर सवारी करनेसे मार्ग चलनेसे मनुष्यको पीडा हो ॥ ५ ॥

कफाश्मरी ।

"तत्र श्लेष्माश्मरी" श्लेष्मलमन्नमभ्यवहरतोऽत्यर्थमुपलिप्याधः परिवृद्धिंप्राप्य बस्तिमुख मधिष्ठाय स्रोतो विरुणद्धि, तस्य मूत्रप्रतिघाताद्दाल्पते भिद्यते निस्तुद्यत इव च बस्तिर्गुरुः शीतश्च भवति । अश्मरी चात्र श्वेता स्निग्धा महती कुक्कुटांडप्रतीकाशा मधूकपुष्पवर्णा वा भवति तां श्लैष्मिकीमिति विद्यात् ॥ ६ ॥

"कफकी पथरी" कफकारक भोजन अधिक करनेसे शरीर कफसे लिपाय मान हो नीचे बस्ति स्थानमें पहुँच वृद्धिको प्राप्त होकर बस्तिके मुखको आच्छादन करके

(गद्य ३) बस्तगन्धित्वं बृहत्तमछगलगंधित्वम् ॥

(श्लो० ४) यथास्वं दोषानतिक्रमेण वेदनावर्णे च यस्मिन्मूत्रे तद्यथादुष्टम् ॥

मूत्र मार्गको रोक देता है तब मनुष्यके मूत्र रुक जानेसे उसका बास्तिस्थान फूटासा जाय भेदनसा हो सुईसी चुभें और बस्तिस्थान भारी हो और शीतल हो और इसमें पथरी सुपेद हो चिकनी हो बडी मुरगेके अंडेके वर्णकी अथवा महुवेके फूल जैसी हो तो इसे कफकी पथरी जाने ॥ ६ ॥

पित्ताश्मरीका रूप ।

पित्तयुक्तस्तु श्लेष्मा संघातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य बस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतिघातादुष्यते चूष्यते दह्यते पच्यत इव बस्तिरुष्णवातश्च भवति अश्मरी चात्र सरक्ता पीताव भासा कृष्णा भल्लातकास्थिप्रतिमा मधुवर्णा वा भवति तां पैत्तिकी-मिति विद्यात् ॥ ७ ॥

वाताश्मरीकारूप ।

पित्तसे युक्तहुवा कफ कठिनताको प्राप्त होकर यथोक्त वृद्धिका प्राप्तहो बास्तिके मुखको आच्छादन करके मूत्रके मार्गको रोक देताहै तब उसके मूत्र रुक जानेसे बस्ति (मूत्राशय) तपायमानसा हो चूँसासा जाताहो आगसी लगे पकतासाहो तथा उष्ण-वात (जो उत्तर तंत्रमें मूत्ररोगोंमें कहाहै) हो (और बस्तिस्थान गरमहो) और इसमें पथरी रक्तता लिये हो पीलापनभी हो काली हो भिलावेंकी गुठली जैसी हो अथवा शहतके रंगकी हो तो उसे पित्तकी पथरी जाने ॥ ७ ॥

वातयुक्तस्तु श्लेष्मा संघातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य बस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि तस्य मूत्रप्रतीघातात्तीव्रा वेदना भवति, तथा-त्यर्थं पीड्यमानो दंतान् खादति नाभिं पीडयति मेढ्रं मृद्नाति वायुं स्पृशति विशर्द्धते विदहति वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण चास्य मेहतो निःसरंति ॥ अश्मरी चात्र श्यामा परुषा विषमा खरा कदंबपुष्पवत्कंटका-चिता भवति तां वातिकीमिति विद्यात् ॥ ८ ॥

वायुसे युक्तहुवा कफ कठिन होकर यथोक्त वृद्धिको प्राप्तहो बस्तिके मुखपर स्थित होके मूत्रके मार्गको रोक देताहै मनुष्यके मूत्र रुकनेसे इसमें तीक्ष्ण पीडा होतीहै और तीक्ष्ण पीडासे पीडित हुवा मनुष्य दातोंको पीसताहै नाभिको दबाताहै लिंगको मसलताहै वायु (पवन) का स्पर्श करताहै अर्थात् पवन कराताहै या हवाको चाह-ताहै विशर्द्धते अर्थात् गुदासे पादका शब्द करताहै तपायमान होताहै कभी कभी

(गद्य ८) विशर्द्धते अपानं विमुञ्चति ॥

बहुत किनछनेसे थोड़ा मूत्र या विष्ठा आताहै और वाव सरताहै इसमें पथरी सांवली करड़ी बाँकी टेढी और खरधरी होतीहै तथा कदंबके पुष्पके तुल्य कांटेवाली होतीहै तो इसे वायुकी पथरी जाने ॥ ८ ॥

प्रायेणैतास्तिस्रोऽश्मर्य्यो दिवास्वप्नसमशनाध्यशनशीतस्निग्धगुरुमधुराहारप्रियत्वाद्विशेषेण बालानां भवंति, तेषामेवाल्पबस्तिकायत्वादनुपचितमांसत्वाच्च बस्तेः सुखग्रहणाहरणा भवंति ॥ ९ ॥

प्रायः ये तीनों प्रकारकी पथरी दिनके सोनेसे अधिक भोजन करनेसे भोजनपर भोजन करनेसे शीतल स्निग्ध गरिष्ठ और मधुर आहार प्यारा लगनेसे विशेष करके ये बालकोंके होती हैं क्योंकि बालकोंका बस्तिस्थान छोटा होता है और दृढ मांस नहीं होता है इससे बालकोंका बास्तिस्थान पथरीको ग्रहण भी सुखसे (सहजहीमें) कर लेता है और उसका आहरण (निकल जाना क्षय हो जाना) भी सहजहीमें सुखसे हो सक्ता है ॥ ९ ॥

शुक्राश्मरीका रूप ।

महतां तु शुक्राश्मरी शुक्रनिमित्ता भवंति ॥ १० ॥ मैथुनाभिघाता दतिमैथुनाद्वा शुक्रश्चलितमनिर्गच्छद्विमार्गगमनादनिलोऽभितः संगृह्य मेढ्रवृषणयोरन्तरे संहरति संहृत्य चोपशोषयति सा मूत्रमार्गमावृणोति, मूत्रकृच्छ्रं बस्तिवेदनां वृषणयोश्च श्वयथुमापादयति पीडितमात्रे च तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रविलयमापद्यते तां शुक्राश्मरीमिति विद्यात् ॥ ११ ॥

बडे मनुष्योंके प्रायः शुक्रजन्य शुक्राश्मरी होती है ॥१०॥ यह शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी) मैथुनके रोकनेसे और अत्यंत मैथुनसे शुक्र अपने स्थानसे छुट जाय और बाहर नहीं निकले और विपरीत मार्ग (उलटा) गमन करे तब उसे वायु इकट्ठा करके लिंग और वृषण (पोतरों) के मध्य (बस्तिके द्वारपर) स्थित कर देती है और वहां स्थित करके सुखाकर करडा कर देती है (जिससे अश्मरी बन जाती) है, फिर वह पथरी बनकर मूत्रके मार्गको रोक देती है और मूत्रकृच्छ्र बस्तिमें दरद पोतरोंपर शोथ ये उपद्रव पैदा करती है और जब उस स्थानको दबावे मले तब बिलाय जाती है उसे शुक्रकी पथरी जाने ११ ॥

भवति चात्र ॥

शर्करा सिकतामेहो भस्माख्योश्मरिवैकृतम्।अश्मर्याः शर्करा ज्ञेया तुल्यव्यंजनवेदना ॥ १२ ॥

शर्करा (रेता) और सिकता प्रमेह तथा भस्माख्य रोग (मूत्र शुक्र रोग उत्तर तंत्रोक्त) ये सब पथरीहीके विकारहैं और पथरीही घुलकर शर्करा होती है क्योंकि इनके लक्षण और वेदना समान हैं ॥ १२ ॥

(यूनानी हकीम भी पथरी और शर्कराको एकही किस्मसे बताते हैं देखो तिब्बते अकबर ।

पवनेऽनुगुणे सा तु निरेत्यल्पा विशेषतः । सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ॥ १३ ॥ हृत्पीडा सक्थिसदनं कुक्षिशूलः सवेपथुः। तृष्णो र्ध्वगोऽनिलः कार्ष्ण्यं दौबल्यं पांडुगात्रता ॥ १४ ॥ अरोचकाविपाकौ तु शर्करार्ते भवंति हि। मूत्रमार्गप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् १५ दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमरोचकम् । पांडुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १६ ॥

और यदि पथरी छोटी हो और वायुके अनुकूल हो जाय तब तो प्रायः निकल पड़ती है। और जो वायु करके टुकड़े २ से (नन्हे २ दानेसे) हो जांय तो उन्हें शर्करा कहते हैं ॥ १३ ॥ जिस मनुष्यको शर्करा हो उसके हृदयमें पीडा साथलोंका थकना कूखमें शूल और शोथ तृषा और वायुका ऊर्द्धगमन कृशता (कालापन) और दुबलापन तथा देहका पीला पड़ना ॥ १४ ॥ अरुचि भोजन ठीक नहीं पचना ये लक्षण होते हैं और जब मूत्रके मार्गमें प्रवर्त हो और वहाँ स्थित हो जाय तब ये उपद्रव होते हैं ॥ १५ ॥ दुबलापन थकान कृशता कोषमें शूल अरुचि शरीर नेत्रादि पीले पड़ना तथा उष्णवात और तृषा हृदयमें पीडा और वमन (या जी मिचलाना) ॥ १६ ॥

नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवंक्षणशेफसाम् । एकद्वारस्तनुत्वक्को मध्ये बस्तिरधोमुखः अलाब्वा इव रूपेण शिरास्नायुपरिग्रहः ॥ १७ ॥

नाभि पीठ कमर पोतरे गुद नले और लिंग इनके बीचमें एक मुखवाला कोमल झिल्लीवाला नीचे इंद्रियकी जड़में मुखवाला ऐसा बस्तिस्थान (मूत्राशय अर्थात् प्रमाग्न) है इसका आकार तूंबीके तुल्य है रगों और नसोंसे बँधा हुवाहै और लिपटा हुवाहै ॥ १७ ॥

बस्तिर्बस्तिशिरश्चैव पौरुषं वृषणौ गुदम्। एकसंबंधिनो ह्येते गुदास्थिविवराश्रिताः ॥ १८ ॥ मूत्राशयो मलाधारः प्राणायतनमुत्तमं पक्वाशयगता-

(श्लो० १५) मूत्रमार्गप्रवृत्ता सा सक्ता वक्ष्यमाणानुपद्रवान् दौर्बल्यादीन् कुरुते ॥

स्तत्र नाड्यो मूत्रवहा स्तु याः ॥ १९ ॥ तर्पयंति सदा मूत्रं सरितः सागरं यथा सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते मुखान्यासां सहस्रशः ॥ २० ॥ नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयांतरात्। जाग्रतः स्वपतश्चैव स निस्पंदेन पूर्यते ॥ २१ ॥ आमुखात्सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः। घटो यथा तथा विद्धि बस्तिर्मूत्रेण पूर्यते ॥ २२ ॥

बस्ति और बस्तिका शिरा पौरुष (मेढ्र) पोतरे और गुदा ये सब परस्पर संबंध रखतेहैं और गुदाकाजो अस्थिहै उसके विवर (फटाव) पर स्थितहैं ॥ १८॥ मूत्राशय (मसाना) मलका आधारहै और प्राण (अग्निसोम) का उत्तम स्थानहै पक्वाशयमें प्राप्त हुई जो मूत्रके बहनेवाली नाडीहैं वे सदा सब कालमें मूत्रकी तृप्ति और वृद्धि करती रहतीहैं जैसे नदियाँ समुद्रमें सदा जल भरती रहतीहैं और उन नाडियोंके हजारों मुखहैं (जिनसे मूत्र टपकताहै) वे सूक्ष्म होके विदित नहीं हो सक्ते ॥ १९ ॥ २० ॥ नाडियों करके आमाशयादिकसे सब कालमें (दिन-रात (जागते सोते टपका टपका करके मूत्र बस्तिस्थान (मूत्राशय, मसाने) में आकर इकट्ठा होताहै ॥ २१ ॥ कैसे इकट्ठा होताहै इसको दृष्टांतसे सिद्ध करते हैं जैसे जलमें (या कीचमें) मुँहतलक नवीन घडेको गाड दे तो वह पेटकी तर फसे झिर झिर कर भर जाताहै इसी भांत बस्ति मूत्रसे भर जातीहै ऐसा समझना चाहिये ॥ २२ ॥

एवमेव प्रवेशेन वातः पित्तं कफोपि वा मूत्रयुक्तः उपस्नेहात् प्रविश्य कुरुतेश्मरीम् ॥ २३ ॥ अप्सु स्वच्छास्वपि यथा निषिक्तासु नवे घटे। कालांतरेण पंकः स्यादश्मरीसंभवस्तथा ॥ २४ ॥

इसी प्रकार जिसमेंसे मूत्र टपकताहै यदि वहां (उस क्लेदित पदार्थमें) वायु पित्त कफ होतो वेभी मूत्रमें मिलकर मूत्राशयमें जातेहैं और पथरी पैदा कर देतेहैं २३॥ जैसे गदला पानी नये घडेमें रख देनेसे थोडे कालमें नीचे कीचे जमजाताहै ऐसेही पथरीकी उत्पत्ति समझो (कई ऐसा भी कहतेहैं कि साफ पानी भी नये घडेमें रक्खो तो कालांतरमें कुछ गँदलापन नीचे जमही जाताहै ऐसे पथरीहै यह अप्सु स्वच्छासु पाठ मानतेहैं)और पहला अर्थ करने वाले " अस्वच्छासु " ऐसाही पाठ मानतेहैं और यही ठीक भी है ॥ २४ ॥

(श्लो० २३) उपस्नेहात् समीपोदकात् नतुद्रवरूपत्वात् । इतिडल्हनः ॥
(श्लो० २४) अप्सु स्वच्छासु इत्यत्र अप्स्वस्वच्छासु इति वा पाठांतरम् ॥

संहत्यर्ययो यथा दिव्या मारुतोऽग्निश्च वैद्युतः । तद्वद्बलासं बस्तिस्थं मुष्मा संहन्ति सानिलः ॥ २५ ॥ मारुते प्रगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तते। विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ २६ ॥ मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च । मूत्रदोषाश्च ये केचित् बस्तावेव भवंति हि ॥ २७ ॥

इति नि० तृतीयोध्यायः ।

जैसे आकाशके जलको वायु और बिजलीकी अग्नि बाधकर ओले बना देती है वैसेही बस्तिस्थानमें प्राप्त हुये कफकोभी वायुसे मिली हुई उष्मा (गरमी) जमाकर पथरी बना देती है ॥ २५ ॥ यदि बस्तिस्थानमें वायु अनुलोम (सीधी सानुकूल) रहे तब ठीक २ मूत्रकी प्रवृत्ति होकर कोई विकार नहीं होता और जो वहां वायु प्रतिलोम (उलटी सविकार) हो तब अनेक प्रकारके विकार होते हैं ॥ २६ ॥ मूत्राघात (मूत्र बंध होना) प्रमेह वीर्य दोषके रोग (क्लैब्यादि) तथा मूत्र दोषके जो रोग हैं (मूत्रकृच्छ्रादि) वे बस्ति स्थानमें (के विकारसे) ही होते हैं ॥ २७ ॥ डाक्टरीमें पथरीको "स्टोन" (Stone) कहते हैं और यूनानी हकीम हिसात कहते हैं इनके मतसे पथरी मूत्राशय (मसाने) के सिवाय गुरदे तथा जिगरमेंभी हो सक्ती है परंतु वास्तवमें गुरदे और जिगरमें पथरीकी गुंजायश कहां है परन्तु शर्करा इन स्थानोंमें भी होना संभव है ॥

इति सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो भगंदराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी भगंदरके निदानकी व्याख्या करतेहैं ॥

भगन्दरके जातिभेद

वातपित्तश्लेष्मसन्निपातागंतुनिमित्ताः शतपोनकोष्ट्रग्रीवपरिस्रावि शंबूकावर्तोन्मार्गिणो यथासंख्यं पंच भगंदरा भवंति ॥ १ ॥

वायु पित्त कफ सन्निपात और आगंतुक इन हेतुओंसे शतपोनक उष्ट्रग्रीव परिस्रावी शंबूकावर्त्त तथा उन्मार्गी ये पांच भगंदर यथासंख्य होते हैं अर्थात वायुसे शतपोनक (जिसमें छालनीकी भांत सैंकडों छिद्र हों) पित्तसे उष्ट्रग्रीव और कफसे परिस्रावी सन्निपातसे शंबूकावर्त तथा आगंतुक शस्त्रादिके लगनेके क्षतसे उन्मार्गी नामक भगंदर होता है ॥ १ ॥

भगंदरकी निरुक्ति और पूर्वरूप।

ते तु भगगुदबस्तिप्रदेशदारणाच्च भगंदरा इत्युच्यंते ॥ २ ॥ अपक्काः पिडिकाः पक्कास्तु भगंदराः तेषां तु पूर्वरूपाणि कटीकपालवेदना गुदकंडूर्दाहः शोफश्च गुदस्य भवति ॥ ३ ॥

ये भग गुदा और बस्ति प्रदेशके विदारण करनेसे भगंदर कहलातेहैं ॥ २ ॥ ये जब तक विनापके फूटे होते हैं तब तक पिडिका (गुमड़ी) कहलातेहैं और पके फूटे पीछे भगंदर कहेजाते हैं इनके पूर्व रूप ये हैं कि कमरके हाड़में दरद हो गुदामें खाज हो और दाह तथा शोथभी गुदामें हो ॥ ३ ॥

शतपोनक।

तत्रापथ्यसेविनां वायुः प्रकुपितः सन्निवृत्तः स्थिरी भूतो गुदमभितोऽगुले द्व्यंगुले वा मांस शोणिते प्रदूष्यारुणवर्णां पिडिकां जनयति॥ ४ ॥ सास्य तोदादीन् वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥ ५ ॥ मूत्राशयाभ्यासगतत्वाच्च व्रणः प्रक्लिन्नः शतपोनकवदणुमुखैश्छिद्रैरापूर्यते तानि छिद्राण्यजस्रं फेनानुविद्धमधिक मास्रावं स्रवंति ॥ ६ ॥

(इनमेंसे) अपथ्य सेवन करनेवालोंके वायु कुपित होकर रुककरके गुदाके आसपास प्राप्त होकर गुदासे एक अंगुल या दो अंगुलपर मांस और रुधिरको दूषित करके लाल वर्णकी फुनसी उत्पन्न करतीहै ॥ ४ ॥ वह फुनसी शूल और विशेष वेदना उत्पन्न करतीहैं और जो उसका प्रतीकार ठीक २ नहीं हो तो पकजातीहै ॥ ॥ ५ ॥ और मूत्राशयके समीप प्राप्त होनेसे (सदा) गीलाहुवा व्रण छलनीकी भांत छोटे २ मुखवाले छिद्रोंसे भरजाताहै उन छिद्रोंमेंसे रुदव झागोंसे मिला हुवा राधपीब आदि स्राव अधिक निकलताहै ॥ ६ ॥

व्रणश्च ताड्यते भिद्यते छिद्यते सूचीभिरिव निस्तुद्यते गुदं च विदीर्यते वातमूत्रपुरीषरेतसामप्यागमश्चैते रेवं छिद्रैर्भवंति तं भगंदरं शतपोनकमित्याचक्षते ॥ ७ ॥

(गद्य ३) कटीकपालः कटीफलकः ॥

(गद्य ४) सन्निवृत्तः व्यावृटितः ॥

(गद्य ६) अभ्यासः समीपं (नि०सं०) ॥

(गद्य ७) शतपोनकंचालनिकेति जैज्जटः शतपोनकवत् शतपोनकोभगंदरः ॥

व्रणमें ताडनेकीसी भेदन करने कीसी छेदन करने कीसी पीडाहो सूईचभोने कीसी पीडाहो और गुदा विदीर्णसी होती हो तथा उन छिद्रोंमेंसे वायु मूत्र विष्ठा वीर्य निकलने लगे तो इस प्रकारके भगंदरको "शतपोनक" कहतेहैं ॥ ७ ॥

उष्ट्रग्रीव।

पित्तं तु प्रकुपितमनिलेनाधः प्रेरितं पूर्ववदवस्थितं रक्तां तन्वीमूर्च्छ्रितामुष्ट्रग्रीवाकारां पिडिकां जनयति ॥ ८॥ सास्य चोषादीन् वेदना विशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति ॥ ९ ॥ व्रणश्चाग्निक्षाराभ्यामिव दह्यते दुर्गंधमुष्णमास्रावं स्रवयत्युपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति तं भगंदरमुष्ट्रग्रीवमित्याचक्षते ॥ १० ॥

कुपित हुवा पित्त जब अपान वायु करके नीचेको प्रेरण कियाहो वह पहलेकी तरह (गुदाके आसपास) स्थित होकर लाल वर्णकी छोटी ऊपरको उठी हुई ऊंटकीग्रीवाके आकार फुनसी पैदा करता है ॥८॥ वह फुनसी मनुष्यके (गुदा स्थानमें) चूसने कीसी जालाने कीसी अनेक वेदना उत्पन्न करती है और उसका उपाय ठीक नहीं किया जाय तो पक जाती है ॥९॥ और उसका घाव सदा अग्निसे जलतासा या क्षारसे जलतासा रहता है (अर्थात् सदा घावमें आगसी लगी रहती है) और दुर्गंध युक्त गरम पीव निकलता है और उपेक्षित (विना ठीक चिकित्सा किये) उस घावमेंसे वायु मूत्र विष्ठा और शुक्रभी निकलने लगजातेहैं और इस भगंदरको उष्ट्रग्रीव कहतेहैं ॥ १० ॥

परिस्रावी।

श्लेष्मा तु प्रकुपितः समीरणेनाधः प्रेरितः पूर्ववदवस्थितः शुक्लावभासां स्थिरां कंडूमतीं पिडिकां जनयति ॥ ११ ॥ सास्य कंड्वादीन् वेदना विशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणाच पाकमुपैति ॥ १२ ॥ व्रणश्च कठिनः संरम्भी कंडूप्रायः पिच्छलमजस्रमास्रावं स्रवत्युपेक्षितश्च वात मूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति तं भगंदरं परिस्राविणमित्याचक्षते ॥ १३ ॥

कोपको प्राप्त हुवा कफ अपान वायु करके प्रेरण किया हुवा नीचे प्राप्त होकर गुदाके आसपास सुपेद वर्णकी स्थिर (करडी) खाजयुक्त फुनसी पैदा करता है ॥ ११ ॥ वह फुनसी मनुष्यके गुदास्थानमें खाज आदि अनेक पीडा उत्पन्न करती है और जो उसका ठीक उपाय नहीं किया जाय तो पाकको प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥ और इसका घाव करडा दीलसे बहनेवाला और अधिक खाजवाला

होता है और घावमेंसे गाढी राध निरंतर निकलती रहती है और ठीक चिकित्सा न हो तो उसमेंसे वायु मूत्र विष्ठा और वीर्य निकलने लगते हैं इस भगंदरको परिस्रावी कहते हैं ॥ १३ ॥

शंबूकावर्त ।

वायुः प्रकुपितः प्रकुपितौ पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्याधोगत्वा पूर्ववदव स्थितः पादांगुष्ठप्रमाणां सर्वलिंगां पिडिकां जनयति ॥ १४ ॥ सास्य तोददाहकंड्वादीन् वेदनाविशेषान् जनयत्यप्रतिक्रियमाणा पाकमुपैति ॥ १५ ॥ व्रणश्च नानाविधवर्णमास्रावं स्रवति पूर्णनदीशम्बूकावर्तव च्चात्र समुत्तिष्ठंति वेदनाविशेषास्तं भगंदरं शंबूकावर्तमित्याचक्षते ॥ १६ ॥

कुपित हुवा (अपान) वायु कोप हुवे पित्त और कफको ग्रहण करके नीचे (गुदाके पास) गमन करके पहलेकी भांत (गुदाके अंगुल दो अंगुल दूर) स्थित होकर पैरके अंगूठेके तुल्य सब दोषोंके लक्षणवाली फुनसी उत्पन्न करतीहै ॥ १४ ॥ वह फुनसी चीस दाह और खाज आदिक अनेक वेदना पैदा करती और जो उसका ठीक प्रतीकार नहो तो पकजातीहै ॥ १५ ॥ और इसका घाव अनेक प्रकारके राध पीब आदि झिराताहै और भरीहुई नदी तथा शंखके आवर्त्त (भँवर अथवा आँटी) के तुल्य जिसमें वेदना उठै उस भगंदरको "शंबूकावर्त्त" कहतेहैं यह सन्निपातिकहै १६

मूढेनं मांसलुब्धेन यदस्थिशल्यमन्नेनं सहाभ्यवहृतं यदावगाढपुरीषो न्मिश्रमपानेनाधःप्रेरितमसम्यगागतं गुदं क्षिणोति तत्र क्षतनिमित्तःकोथ उपजायते तस्मिंश्चक्षते पूयरुधिरावकीर्णमांसकोथे भूमाविव जलप्रक्लिन्नायां क्रिमयः संजायंते ॥ १७ ॥ ते भक्षयंतो गुदमनेकधा पार्श्वतो दारयंति तस्य तैर्मार्गैः क्रमिकृतैर्वातमूत्रपुरीष रेतांसि निःसरन्ति तं भगंदरमुन्मार्गिणमित्याचक्षते ॥ १८ ॥

मांस खाने वाले मूढ लोग जो हड्डीको भोजनके संग खाजातेहैं वह गाढे पुरीषमें मिलकर अपान वायुकरके नीचे (दस्तमें) प्रेरणकरी हुई (आडी टेढी या) बडी होनेसे गुदामें घाव करदेतीहै फिर घावमें पकाव होजाताहै और उस जख्ममें राध रुधिर पीब युक्त मांस होजानेसे जैसे जलसे गीली पृथ्वीमें कृमि पड़

(गद्य १८) पार्श्वतो दारयंति अस्यामे अग्रों भगंदरं केचित् पठंति (मि० सं०) ॥

जातेहैं वैसेही उसमें भी क्रिमि उत्पन्न होजातेहैं ॥ १७ ॥ वे क्रिमि गुदाके मांसको खाकर अनेक भान्तिसे बराबरकी तरफ विदारण कर देतेहैं तब मनुष्यके उन कृमि कृत मार्गोंसे वायु मूत्र विष्ठा तथा वीर्य निकलने लग जाताहै उस भगंदरको उन्मार्गी कहतेहैं (तथा बवासीरके मसे काटनेके जखमसे अथवा और भांति चोट लगजानेसे छिल जाने कटजाने रगड लग जाने आदिसे घाव होकर जो भगंदर हो वह भी उन्मार्गी ही समझो) ॥ १८ ॥

भवन्तिचात्र ॥ उत्पद्यतेऽल्परुक्शोफा क्षिप्रं चाप्युपशाम्यति । पाय्वं तद्देशे पिडिका सा ज्ञेयान्या भगंदरात् ॥ १९ ॥

यहां पर श्लोक हैं कि ॥ जो थोड़े दरद और थोड़े शोथ वाली फुनसी गुदाके पास हो और शीघ्र शांत होजाय वह भगंदरसे पृथक् (सादी फुनसी) होतीहै॥१९॥

भगंदरी तु विज्ञेया पिडिकातो विपर्ययात्।पायोःस्याद्व्यङ्गुले देशे गूढम ला सरुग्ज्वरा ॥ २० ॥ यानयानान्मलोत्सर्गात् कंडूरुग्दाहशोफवा न् । पायुर्भवेद्रुजः कट्यां पूर्वरूपं भगंदरे ॥ २१ ॥

तथा इसके विपरीत गुदासे दो अंगुल दूर गूढ मलवाली और चीस और ज्वर-युक्त जो फुनसी होती है वह भगंदरी कहलाती है ॥ २० ॥ सवारीपर चलनेसे मलोत्सर्ग करनेसे जो गुदामें खाज दरद जलन और शोथ हो तथा कमरमें पीडा हो तो "भगंदरका पूर्वरूप" जानना चाहिये ॥ २१ ॥

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगंदराः । तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षत जश्च भगंदरः ॥ २२ ॥

इति निदानेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सबही भगंदर घोर और दुःखसे साधनयोग्य होते हैं तिनमेंभी त्रिदोषका (शंबूकावर्त नामक) भगंदर तथा क्षतसे उपजा (उन्मार्गी भगंदर) ये दोनों असाध्य होते हैं ॥ २२ ॥

यूनानीमें इसे नासूरमिकअद कहते हैं और डाक्टरीमें इसी प्रकार गुदाके पासका जखम (Fistula) कहते हैं इनके यहां इसकी कुछ विशेषता नहीं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां निदानस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

अथातः कुष्ठनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी कुष्ठके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

मिथ्याहाराचारस्य विशेषाद्गुरुविरुद्धासात्म्याजीर्णाहिताशिनः स्नेहपीतस्य वान्तस्य वा व्यायामग्राम्यधर्मसेविनो ग्राम्यानूपौदकमांसानि वा पयसाभीक्ष्णमश्नतो, यो वा मज्जत्यप्सूष्माभितप्तः सहसा छर्दिं वा प्रतिहंति तस्य पित्तश्लेष्माणौ प्रकुपितौ परिगृह्यानिलः प्रवृद्धस्तिर्यग्गाः शिराः संप्रतिपद्य समुद्धूय बाह्यं मार्गं प्रतिसमन्ताद्विक्षिपति ॥ १ ॥

अनुचित आहार तथा अनुचित आचार (अगम्यागमनादि) करनेसे विशेष कर गरिष्ठ भोजन करनेसे विरुद्ध भोजन करनेसे अर्थात् रसविरुद्ध संयोगविरुद्धादि खाने पीनेसे तथा देश काल प्रकृति आदिके प्रतिकूल भोजन करनेसे अजीर्णमें भोजन करनेसे और अहित वस्तु खानेसे और (अयुक्त) स्नेहपान करने तथा वमन करने के पीछे व्यायाम तथा मैथुन करनेसे और ग्राम्यपशु तथा जलके किनारेके जीव और जलजंतुवोंके मांसको दूधकेसाथ खानेसे अथवा जो मनुष्य गरमी (धूप अग्नि आदि) से संतप्त हुवा तात्काल जलमें स्नानकरे तथा जो आवतीहुई वमन को रोके उसके कुपित हुवे कफ पित्तको बढाहुवा वायु ग्रहणकरके तिर्यग् गामिनी शिराओंमें गमन करके और बाह्यमार्गकी ओर प्राप्तहोकर समस्त शरीरमें फैला देता है ॥ १ ॥

यत्र यत्र च दोषो विक्षिप्तो निःसरति तत्र तत्र मंडलानि प्रादुर्भवन्त्येवमुत्पन्नस्त्वचि दोषस्तत्र च परिवृद्धिं प्राप्याप्रतिक्रियमाणोऽभ्यंतरं प्रतिपद्यते धातून् दूषयन् ॥ २ ॥

फिर जहां जहां प्राप्तहुवा दोष बाहरनिकल प्रकट होताहै वहां ही वहां मंडल (चकद्दे) पैदा होजातेहैं और फिर त्वचामें उत्पन्न हुवा दोष ठीक २ प्रतिकार न हो तो वृद्धिको प्राप्तहोकर धातुवोंको दूषितकरता हुवा भीतरको प्रवेश करजाताहै ॥ २ ॥

(गद्य १) स्नेहपीतस्यवांतस्य इति स्नेहपानानंतरं वमनानंतरं वा व्यायामग्राम्यधर्मसेविनः समुद्धूय आक्षिप्य समंतात् सर्वत्र सर्वशरीरे * मिथ्याहाराचारस्य मांसानिवापयसाऽभीक्ष्णं अश्नतः इत्याद्युपयुक्तस्य प्रवृद्धोऽनिलः प्रकुपितौ पित्तकफौ परिगृह्य एवमेवान्वयः ॥

कुष्ठका पूर्वरूप ।

तस्य पूर्वरूपाणि त्वक्पारुष्यमकस्माद्रोमहर्षः कंडूः स्वेदबाहुल्यमस्वेदनं वाङ्गप्रदेशानां स्वापः क्षतविसर्पणमसृजः कृष्णता चेति ॥ ३ ॥

इस कुष्ठरोगके पूर्वरूप येहैं त्वचामें कठोरता हो अकस्मात् रोमखडे होजायँ खाज चलने लगे अधिक पसीने आवें अथवा बिलकुल पसीने नहीं आवें और अंग प्रत्यंग सोजाया करें (अर्थात् झनझनाट करनेलगें स्पर्शज्ञान नरहे) और घाव यदि किसी कारणसे होजाय तो वह फैलने लगे (शीघ्र अच्छा न हो) और रुधिरमें कालापन होजाय (तो जाने) कि इस मनुष्यके कुष्ठरोग होगा ॥ ३ ॥

तत्र सप्त महाकुष्ठान्येकादश क्षुद्रकुष्ठान्येवमष्टादशकुष्ठानि भवन्ति ४

जिसमेंसे सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठहैं ऐसे सबमिलकर अठारह प्रकारके कुष्ठहैं ॥ ४ ॥

तत्र महाकुष्ठान्यरुणौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकपुंडरीकदद्रुकुष्ठानीति ॥ ५ ॥ क्षुद्रकुष्ठान्यपि स्थूलारुष्कं महाकुष्ठमेककुष्ठं चर्मदलं विसर्पः परिसर्पः सिध्म विचर्चिका किटिभं पामा रकसा चेति ॥ ६ ॥

इनमेंसे महाकुष्ठ येहैं (१) अरुण (२) औदुंबर (३) ऋष्यजिह्व (४) कपाल (५) काकणक (६) पुंडरीक (७) दद्रुः ॥ ५ ॥ और क्षुद्रकुष्ठ येहैं (१) स्थूलारुष्क (२) महाकुष्ठ (३) एककुष्ठ (४) चर्मदल (५) विसर्प (६) परिसर्प (७) सिध्म (८) विचर्चिका ९ किटिभ १० पामा ११ रकसा इसप्रकार सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ सबमिलकर १८ हुवे ॥ ६ ॥

बहुतसे आचार्य दद्रुको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानतेहैं और महा कुष्ठको महाकुष्ठोंमें और कई ग्रंथोंमें कुष्ठोंमें नामभेद और क्षुद्रत्व और महत्वमेंभी अंतरहै जैसे देखो (वाग्भट) में औरतरह लिखाहै और भावप्रकाशमें औरहीतरह देखो टिप्पणी ॥

सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रिमीणि च भवंत्युत्सन्नतरन्तु दोषग्रहणमभिभवात् ॥ ७ ॥

(गद्य ५-६) वाग्भटे महाकुष्ठानि यथा " सर्वेस्यात्काकणं पूर्वत्रिकंदद्रु! सकाकणः पुंडरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु " इति पूर्वत्रिकं कपालौदुंबरमंडलाख्यं शेषाणिक्षुद्रकुष्ठानि (भावप्रकाशे भावमिश्र इत्याह) महाकुष्ठानि यथा पूर्वत्रिकं तथा सिध्मं ततः काकणकं तथा पुंडरीकर्षजिह्वे तु महाकुष्ठानिसप्तचेति " तथैव क्षुद्रकुष्ठानि " एककुष्ठं स्मृतम्।पूर्वं गजचर्म ततः स्मृतम्। ततश्चर्मदलं प्रोक्तं तथा चापि विचर्चिका विपादिकाभिधा सैव [illegible]ततः परं ततो दद्रुश्च विस्फोटः किटिभंचततः परं ततश्चालसकं प्रोक्तं शताारुश्च ततः परम्।" क्षुद्रकुष्ठानि [illegible] इति ॥ तथा च कुष्ठानां सप्तविधत्वमष्टादशविधत्वमपरिसंख्यविधत्वमेव * अष्टादश कुष्ठानि भवंती[illegible] [illegible] दर्शितम् (इति डल्हन.) ॥

सभी कुष्ठ वायु युक्त होते हैं और सभी पित्तयुक्त तथा कफयुक्तभी होते हैं और सभी सूक्ष्म क्रिमियोंसे व्याप्त होते हैं परंतु जहां जिस दोषकी उत्कर्षता होती है वहां प्रधानतासे उसी दोषका ग्रहण किया जाता है ॥ ७ ॥

तत्र वातेनारुणं पित्तेनौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपाल काकणकानि श्लेष्मणा पौंडरीकं दद्रुकुष्ठं चेति ॥ ८ ॥ तेषां तु महत्वं क्रियागुरुत्वमुत्तरोत्तरं धात्वनुप्रवेशादसाध्यत्वं चेति ॥ ९ ॥

उनमेंसे वायुसे (वायुकी प्रधानतासे) अरुण कुष्ठ होता है और पित्तसे औदुंबर ऋष्यजिह्व कपाल और काकणक ये ४ कुष्ठ होते हैं और कफसे पौंडरीक तथा दद्रु होते हैं ॥ ८ ॥ इनमें महत्व (महाकुष्ठपन) यही है कि इनकी क्रियामें भारीपन है और उत्तरोत्तर धातुओंमें प्रवेश हो जानेसे असाध्यता है ॥ ९ ॥

महाकुष्ठोंके स्वरूप और लक्षण ।

तत्र वातेनारुणभानि तनूनि विसर्पीणि तोदभेदस्वापयुक्तान्यरुणानि ॥ ॥ १० ॥ पित्तेन पक्वोदुंबरफलाकृतिवर्णान्यौदुम्बराणि ॥ ११ ॥ ऋष्यजिह्वाप्रकाशखरत्वानि ऋष्यजिह्वानि ॥ १२ ॥ कृष्णकपालिका प्रकाशानि कपालकुष्ठानि ॥ १३ ॥ काकणंतिकाफलसदृशान्यतीव रक्तकृष्णानि काकणकानि ॥ १४ ॥ तेषां चतुर्णामप्योषचोषपरिदाह धूमायमानानि क्षिप्रोत्थानप्रपाकभेदित्वानि कृमिजन्म च सामान्यानि लिंगानि ॥ १५ ॥

" वायुसे " लाल वर्णकी छोटी २ फैलनेवाली फुन्सियां होतीहैं उनमें चीस भेद (भेदन कीसी पीड़ा) और स्वाप (स्पर्शका अज्ञान) होताहै उसे अरुण कुष्ठ कहतेहैं ॥ १० ॥ " पित्तसे " पके गूलर फलके समान जो हो उसे औदुंबर कुष्ठ कहतेहैं ॥ ११ ॥ और ऋष्य (रुरु मृग) की जिव्हाके समान खरधरापन युक्त हो उसे ऋष्यजिह्व कुष्ठ कहतेहैं ॥ १२ ॥ कृष्णकपाल (काली सिकता) के तुल्य अथवा काले ठिकरेके समान कपाल कुष्ठ कहलाताहै ॥ १३ ॥ काकणंतिका (चिरमठी) फलके सदृश अत्यंत रक्त और काले घाव जिसमें हों वह काकणक कुष्ठहै ॥ १४ ॥ इनचारों (पैत्तिक कुष्ठों) में दाह चोस (चूसने जैसी पीडा) और आसपासमें जलन होना तथा जैसे धूवोंसे व्याप्त हो वैसा और शीघ्र उत्पन्न होना और शीघ्रही पकना और फूट जाना तथा कृमि उत्पन्न होजाना इनके (सामान्य) लक्षण हैं ॥ १५ ॥

(गद्य १५) चतुर्णां पित्तोल्बणानामौदुंबरादीनाम् ॥

पुंडरीकपत्रप्रकाशानि पौंडरीकानि ॥ १६ ॥ अतसीपुष्पवर्णानि ताम्राणि वा विसर्पीणि पिडिकावन्ति च दद्रुकुष्ठानि ॥ १७ ॥ तयोर्द्वयोरप्युत्सन्नता परिमंडलता कंडूश्चिरोत्थानत्वं चेति सामान्य रूपाणि ॥ १८ ॥

(कफसे) कमल पत्रके समान हो वह पौंडरीक कुष्ठ है ॥ १६ ॥ अतसीके पुष्पके समान (ऊदे) वा तांबेके वर्ण फैलने वाले और छोटी फुनसी वाले चकद्दे हों वह दद्रुकुष्ठ (दाद) कहलातेहैं इन दोनोंमें कुछ २ उभार (ऊंचापन) परिमंडलता (चकद्दे होना) खाज होना और बहुत समयतक होना ये सामान्य लक्षण होतेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

क्षुद्रकुष्ठान्यतऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः ॥ १९ ॥

इससे अगाड़ी क्षुद्र कुष्ठोंके (लक्षणों) को वर्णन करते हैं ॥

स्थूलानि संधिष्वतिदारुणानि गुरूणि च स्युः कठिनान्यरूंषित्वक्संकोचभेदस्वापनांगसादाः कुष्ठे महत्पूर्वयुते भवंति ॥ २० ॥ कृष्णारुणं येन भवेच्छरीरं तदेककुष्ठं प्रवदंत्यसाध्यम् स्युर्येन कंडूव्यथनौषचोषास्तलेषु तच्चर्मदलं वदंति ॥ २१ ॥

जिसमें संधियोंमें मोटापन युक्त अतिदारुण बड़े और कठोर व्रणहों उसे " स्थूलारुष्क " कुष्ठ कहते हैं ॥ और जिसमें त्वचामें संकोच और भेद और स्वाप (स्पर्शज्ञान) हो तथा अंगमें ग्लानि हो तो वह " महा कुष्ठ " नामक (क्षुद्र) कुष्ठ है२०॥ जिसमें काला और लाल शरीर पड़जाय उसे " एककुष्ठ " कहतेहैं और यह एककुष्ठ असाध्य है । जिसमें हाथ पावोंकी चर्ममें (मोटापनहो) और खाज व्यथन (दर्द) और दाह तथा चोष हो वह चर्मदल कुष्ठ कहलाता है ॥ २१ ॥

विसर्पवत्सर्पति सर्वतो यस्त्वग्रक्तमांसान्यभिभूय शीघ्रम्।मूर्च्छाविदाहारतितोदपाकान् कृत्वा विसर्पः स भवेद्विकारः ॥ २२ ॥

जो विसर्पकी भांति त्वचा रक्त और मांसमें प्राप्त होकर शीघ्र सारे शरीरमें फैल जाय और मूर्च्छा दाह अरति तथा तोद (दर्द) और पाक (पक जाना) इन उपद्रवोंको करके फैले तो उसे विसर्प नामक कुष्ठ कहतेहैं ॥ २२ ॥

(श्लोक २०) गुरूणिच इत्यत्र स्थूलारुषि इति वा पाठः अरूंषि व्रणाःस्थूलानि स्थूलमूलानि । त्वक्संकोचभेदस्वापनाङ्गसादैः सह प्रत्येकं संबध्यते यथा त्वक्संकोचः त्वग्भेदः त्वक्स्वापः इति॥ महत्पूर्वयुते महाकुष्ठाख्ये ॥

(श्लो० २१) तलेषु हस्तपादतलेषु ॥

(श्लो० २२) विसर्पवदिति अत्रोक्तविसर्पाख्यकुष्ठस्य वक्ष्यमाणविसर्परोगस्य विस्तरविसर्पणं शीघ्रविसर्पणं ततोभेदः (इति डल्हनः) ॥

शनैः शरीरे पिडकाः स्रवंत्यः सर्पंति यास्तं परिसर्पमाहुः । कंडून्वितं श्वेतमपायि सिध्मं विद्यात्तनु प्रायश ऊर्द्धकाये ॥ २३ ॥ राज्यो तिकंडूर्तिरुजः सुरूक्षा भवंति गात्रेषु विचर्चिकायाम् । कंडूमती दाहरुजोपजन्मा विपादिका पादगतेयमेव ॥ २४ ॥

जो स्रावयुक्त फुन्सी धीरे धीरे करके शरीरमें फैलने लगे उसे "परिसर्प" नामक कुष्ठ कहते हैं । जिसमें खाजयुक्त सुपेद और कष्ट रहित चकदे प्रायः ऊपरके शरीर (छाती ग्रीवा मुखादि) पर हों उसे "सिध्म" नामक कुष्ठ कहते हैं ॥ २३ ॥ जो गात्र हाथपावोंमें खाज और दर्द युक्त रूखी रेखासी (तरेडसी) हो जाय उसे "विचर्चिका" नामक कुष्ठ कहते हैं और यदि ये रेखा दाह और पीडायुक्त केवल पावों (पैरों) हीमें हों तो उसेही विपादिका (बिंवाई) कहतेहैं (वास्तवमें विचर्चिका और विपादिका एकही हैं) ॥ २४ ॥

यत्स्रावि वृत्तं घनमुग्रकंडू तत्स्निग्धकृष्णं किटिभं वदंति स्रावावकंडूपारदाहवद्भिः पामाणुकाभिः पिडकाभिरुह्या ॥ २५ ॥ स्फोटैः सदाहैरति सैव कच्छूः स्फिक्पाणिपादप्रभवैर्निरूप्या । कंडून्विता या पिडका शरीरे संस्रावहीना रकसोच्यते सा ॥ २६ ॥

जो स्रावयुक्त चकदा हो गाढा और जिसमें उग्र खाज चले तथा चिकना और काला हो उसे "किटिभ" कुष्ठ कहते हैं । तथा जिसमें स्राव और खाज तथा दाहयुक्त छोटी २ फुन्सियां उठें उसे "पामा" (पाँवँ) (खारिश या खुजली) कहते हैं ॥ २५ ॥ और जिसमें अतिदाह युक्त फालक (फोडे) कूले और हाथ पैरोंमें हों उसे "कच्छू" कहते हैं (यहभी पामाका भेद है इसमें खाज कम होती है और दाह अधिक) तथा जो शरीरपर नन्ही २ अलाईसी खाजयुक्त और स्रावरहित हों उसे "रकसा" (सूखी खाज) नामक कुष्ठ कहते हैं ॥ २६ ॥

अरुः ससिध्मं रकसा महच्च यच्चैककुष्ठं कफजान्यमूनि । वायोः प्रकोपात्परिसर्पमेकं शेषाणि पित्तप्रभवाणि विद्यात् ॥ २७ ॥

(श्लो० २३) अपायि अकष्टकारि । सिध्मकुष्ठं द्विविधं श्विध्म पुष्पिकाख्यसिध्मस्य सुखसाध्यत्वात् सुश्रुते क्षुद्रकुष्ठे पठितः पुष्पिकासिध्मस्य दुःसाध्यत्वाच्चरके महाकुष्ठे पठितः इत्यदोषः (इति डल्हणः) ॥

(श्लो० २४) राज्योरेखाः इयमेवपादगता विपादिका ॥

(श्लो० २६) स्फिक् नितंबः कच्छूपामाभेदः ॥

(श्लो० २७) श्लोकोयं कल्पितः इतिगयदासाचार्यः यस्मादेककुष्ठं महाकुष्ठं च वातादिभिर्भवति नकफात् इत्यादि ॥

स्थूलारुष्क सिध्म रकसा महत्कुष्ठ तथा एककुष्ठ ये कफकी उत्कृष्टतासे होतेहैं और वायुकी उत्कृष्टतासे एक परीसर्प होताहै और शेष सब पित्तकी उत्कृष्टतासे होतेहैं २७

किलासमपि कुष्ठविकल्प एव तत्रिविधं वातेन पित्तेन श्लेष्मणा चेति कुष्ठकिलासयोरंतरं त्वग्गतमेवं किलासमपरिस्रावि च ॥ २८ ॥ तद्वातेन मंडलमरुणं परुषं परिध्वंसि च पित्तेन पद्मपत्रप्रतीकाशं सपरिदाहं च श्लेष्मणापि श्वेतं स्निग्धं बहलं कंडुमच्च ॥ २९ ॥ तेषु संबद्धमंडलमंतर्जातं रक्तरोम चासाध्यमग्निदग्धं च ॥ ३० ॥

किलासभी कुष्ठहीका (विकल्प करके) भेदहै वह किलास तीन प्रकारका होताहै वायुसे पित्तसे कफसे । कुष्ठ और किलासमें अंतर यही है कि त्वचाहीमें प्राप्त हो और नहीं स्रवता हो वह किलास और जो अन्य धातुओंमें व्याप्त हो स्रावयुक्त हो तो किलास कुष्ठहीहै ॥ २८ ॥ वायुसे हो तो चकदे लाल और खरधरे और दुष्ट होतेहैं पित्तसे हो तो कमलपत्रके तुल्य और दाहयुक्त होतेहैं तथा कफसे हो तो श्वेत चिकने मोटे और खाजयुक्त चकदे होतेहैं ॥ २९ ॥ इनमेंसे जो बहुतसे चकदे आपसमें मिलेहु वे हों और चकद्दोंके भींतर लाल रोम (रूँगटे) हों वह किलास (चित्रकुष्ठ) असाध्य होताहै तथा जो अग्निसे जलकर सुपेद चकद्दा स्थिर होजाय वहभी असाध्यही होजाताहै ॥ ३० ॥

कुष्ठेषु रुक्त्वक्संकोचस्वापस्वेदशोफभेदकौण्यस्वरोपघाताः वातेन । पाकावदरणांगुलिपतनकर्णनासाभंगाक्षिरागसत्वोत्पत्तयः पित्तेन । कंडूवर्णभेदशोफास्रावगौरवाणि श्लेष्मणा ॥ ३१ ॥

कुष्ठोंमें चीस त्वचाका सुकड जाना स्पर्शज्ञान न रहना पसीना होना शोथ भेदन हो जाना कौण्य (नष्टकारिता) तथा स्वर बिगडजाना ये उपद्रव वायुसे होते हैं और पक जाना फट जाना अंगुली गलकर गिर जाना कान और नाक गल जाना नेत्र अति लाल होना ये पित्तसे होतेहैं । तथा खाज वर्णमें भेद सूजन और स्राव बंध होना और भारीपन ये कफसे होते हैं ॥ ३१ ॥

(गद्य २८) किलासंश्वित्रसंज्ञः कुष्ठविकल्पः विकल्पात् कुष्ठः ॥

(ग० २९) परिध्वंसि दुष्टं बहलं स्थूलम् ॥

(गद्य० ३०) संबद्धमंडलमित्यत्र संभिन्नमंडलमितिवापाठांतरम् । अंतर्जातं रक्तरोमचेति अंतः मध्ये [illegible] रक्तानि लोमानि [illegible] तदसाध्यमिति ॥

(गद्य ३१) कौण्यं नष्टकारिता । वातेस्वेदस्तुअस्वेदनिषेधार्थः [illegible] स्वेदःस्यादित्यपरे । सत्वोत्पत्तयः कृमीणां जन्मानीति (डल्हनः) ॥

तत्रादिबलप्रवृत्तं पौंडरीकं काकणं चासाध्यम् ॥ ३२ ॥ भवंति चात्र ॥ यथा वनस्पतिर्जातः प्राप्य कालप्रकर्षणम्। अंतर्भूमिं विगाहेत मूलैर्वृद्धि विवर्द्धितैः ॥ ३३ ॥ एवं कुष्ठं समुत्पन्नं त्वचि कालप्रकर्षतः । क्रमेण धातून् व्याप्नोति नरस्याप्रतिकारिणः ॥ ३४ ॥

इनमेंसे आदि बलप्रवृत्त कुष्ठ (शुक्र शोणित दोषज अर्थात जो माता पिताके शोणित शुक्रके दोषसे हों) तथा पौंडरीक और काकण ये असाध्यहैं ॥ ३२ ॥ यहां श्लोकहैं कि॥ जैसे उत्पन्न हुवा वृक्ष समयकी अधिकता पाकर वर्षासे उसकी जड़ बढ २ कर भींतरही भींतर पृथ्वीमें फैल (कर बलवान हो) जाता है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकारसे त्वचामें उत्पन्न हुवा कुष्ठभी प्रतीकार न करनेवाले मनुष्योंके कालकी अधिकताके कारण क्रमसे धातुओंमें व्याप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

धातुगत कुष्टलक्षण ।

स्पर्शहानिः स्वेदनत्वमीषत्कंडूश्च जायते।वैवर्ण्यं रूक्षभावश्च कुष्ठे त्वचि समाश्रिते ॥ ३५ ॥ त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्याऽतिप्रवर्तनम् । कंडूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ ३६ ॥ बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः। तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते॥ ३७

त्वचा (चर्म) में प्राप्त हुवे कुष्ठमें ये लक्षण होवेहैं कि स्पर्शन सुहावे तथा पसीने हों कुछ २ खाज चले त्वचाका वर्ण पलट जाय तथा रूखापन होजावे ॥ ३५ ॥ रुधिरमें प्राप्त हुवा कुष्ठ हो तब त्वचामें स्वाप हो रोम खड़े होजाय पसीना बहुत आवे खाज चले और दुर्गंधता होजाय ॥ ३६॥ कुष्ठ मांसमें प्राप्त हो तब मोटे २ चकदे होजाय मुँह सूखासा रहे (त्वचामें) करड़ापन होजाय फुन्सी पैदा होने लगें दरदहो त्वचा फटने लगे और चकदे स्थिर (कठोर) पड़ जाय ये मांसगत कुष्ठके लक्षणहैं ३७

दौर्गंध्यमुपदेहश्च पूयोथ क्रिमयस्तथा । गात्राणां भेदनं चापि कुष्ठे मेदः समाश्रिते ॥ ३८॥ नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतजे क्रमिसंभवः । भवेत्स्व

(गद्य ३२) आदिबलप्रवृत्तमिति पूर्वोक्तसूत्रस्थानस्य चतुर्विंशाध्याये वर्णितम् । यथा तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शःप्रभृतयस्तेपिद्विधा मातृजाः पितृजाश्चेति ॥

(श्लो० ३३) कालप्रकर्षणं कालाधिक्यम् ॥

(श्लो० ३६) विपूयको दुर्गंधता ॥

(श्लो० ३७) बाहुल्यं स्थूलमंडलता । स्फोटः त्वचः स्फुटनम् स्थिरत्वं कठिनमंडलता ॥

(श्लो० ३८) उपदेहः उष्णगात्रता ॥

रोपघातं श्वं अस्थिमज्जसमाश्रिते ॥ ३९ ॥ कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् । शुक्रस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ४० ॥

मेदमें प्राप्त हुवा कुष्ठ हो तब दुर्गंधता हो देह गरम रहे पीब निकलने लगे और क्रमि होजाय तथा अंगोंका भेदन हो (शरीर फटने लगे) ॥ ३८ ॥ अस्थि और मज्जामें प्राप्त हुवा कुष्ठ हो तब नासिका गल कर भंग होजाय नेत्र अति लाल रहें जहां छोटाभी घावहो वहां क्रिमि पैदा हों और स्वर बिगड़ जाय ॥ ३९ ॥ वीर्यमें प्राप्त हुवा कुष्ठ हो तब कौण्य (नष्टकारिता) हो चलने फिरनेकी समर्थ नरहे अंग फटने लगें और जो घावहो वही फैलने लगे तथा पहले जो त्वचासे लेकर मज्जपर्यंत धातुओंमें प्राप्त कुष्ठके लक्षण कहे वेभी हों ॥ ४० ॥

मातृज पितृज कुष्ठ ।

स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषाद्दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥

जिन स्त्री तथा पुरुषोंके कुष्ठ होता है उनका शोणित और वीर्य कुष्ठके दोषसे दूषित होता है इससे उनसे उत्पन्न हुई संतानकोभी कुष्ठयुक्तही समझना चाहिये (प्रायः कुष्ठियोंकी संतानकोभी काल पाकर कुष्ठ होही जाता है) ॥ ४१ ॥

कुष्ठकी साध्यासाध्यता ।

कुष्ठमात्मवतः साध्यं त्वग्रक्तपिशिताश्रितम् । मेदोगतं भवेद्याप्यमसाध्यमत उत्तरम् ॥ ४२ ॥

जितेंद्रिय और क्रिया पथ्य करनेवाले मनुष्यका त्वचा रक्त और मांसगत कुष्ठभी साध्य होता है और मेदगत कुष्ठ याप्य होता है और इससे ऊपर अर्थात् अस्थि मज्जा और शुक्रगत कुष्ठ सर्वथा असाध्यही होता है ॥ ४२ ॥

ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधःपरस्वहरणादिभिः । कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य संभवम् ॥ ४३ ॥ म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति । नातः कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण स्त्री सज्जन (महात्मा) ऐसे मनुष्योंके मारने तथा पराया द्रव्य हरलेना इत्यादि पापोंसे तथा अन्य पाप रोगोंके कर्मों करके शरीरमें कुष्ठरोग उत्पन्न होता है ऐसे ऋषि वर्णन करते हैं ॥ ४३ ॥ यदि कोई मनुष्य कुष्ठ रोगसे मर जाता है

(श्लो० ४४) कुष्ठिनः पापकर्मणोऽक्षीणत्वात् जन्मान्तरेपिगच्छतीतिनिश्चीयते अतोयंदीर्घरोगाणां कष्टतमो रोगः ।

तो दूसरे जन्म लेनेपरभी उसके संग जाता है और उसके शरीरमें हो जाता है इस कारण जैसा कठिन (दुःसाध्य अतिकष्टदायक बुरा) कुष्ठका रोग है उससे अधिक कोई रोगभी कष्टतर (अति कष्टदायक बुरा) नहीं है (अर्थात् कुष्ठ रोगके परमाणु ऐसे स्थिर हो जाते हैं कि जीवात्मासे संबद्धित हो दूसरे जन्ममेंभी पाप-पुण्यकी भांति संग जाते हैं क्यों कि यह व्याधि प्रायः उग्र पापोंसे होती है इससे जन्मान्तर तक संग रहती है) ॥ ४४ ॥

आहाराचारयोः प्रोक्तामास्थाय महतीं क्रियाम्।औषधानां विशिष्टानां तपसश्च निषेवणात्।यस्तेन मुच्यते जन्तुः स पुण्यां गतिमाप्नुयात् ४५.

आहार विहार और आचार तथा विशेष औषधोंकी यथोक्त महती क्रियाओंको धारण करके (अर्थात् यथोक्त बड़ी २ चिकित्साकी क्रिया और पथ्यादि करके) तथा तप (दानपुण्य ईश्वराराधन आदि) के सेवन करनेसे जो इस कुष्ठ रोगसे छूट जाय वह पुण्य गतिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

कुष्ठादिकी संक्रामणता ।

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् । सहशय्यासनाच्चापिवस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४६ ॥ कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामंति नरान्नरम् ॥ ४७ ॥

इति निदाने पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्रसंग करनेसे शरीरका स्पर्श करनेसे रोगीके श्वासकी वायु लग जानेसे साथ भोजन करनेसे एक खाट तथा बिछोनेपर सोनेसे एक आसनपर बैठनेसे तथा रोगीका पहना हुवा वस्त्र माला आदि पहरनेसे तथा रोगीका उच्छिष्ट चंदनादि लगानेसे कुष्ठ का रोग तथा एक प्रकारका ज्वर तथा शोष (शरीर सूखनेका रोग) तथा नेत्रका अभिष्यंद रोग और औपसर्गिक रोग (शीतला रोग मसूरिका आदि) ये एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें प्रवेश कर जातेहैं (अर्थात् दूसरों) के भी हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कुष्ठको सामान्यतासे डाक्टरीमें लेपरा (Leprosy) और यूनानीमें जुजाम कहतेहैं उनके यहां और २ प्रकारसे उनके भेद हैं विसर्पको डाक्टरीमें एरीसिफल और यूनानीमें सुर्खबाद कहते हैं दाद को डा० हरपीज (और यूनानीमें कोबा तथा पामा को डा०) इसको बेज और यू० हसफ कहतेहैं तथा किलास श्वित्र (श्वेत) कुष्ठको कहतेहैं और यू० बरस कहतेहैं इत्यादि ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहां से प्रमेहके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

दिवास्वप्नाव्यायामालस्यप्रसक्तं शीतस्निग्धमधुरमद्यद्रवान्नपानसेविनं पुरुषं जानीयात्प्रमेही भविष्यतीति ॥ १ ॥ तस्य चैवं प्रवृत्तस्यापरिपक्का एव वातपित्तश्लेष्माणो यदा मेदसा सहैकत्वमुपेत्य मूत्रवाहिस्रोतांस्यनुसृत्याधो गत्वा बस्तेर्मुखमाश्रित्य निर्भिद्यंते तदा प्रमेहान् जनयंति ॥ २ ॥

दिनको सोनेवाले परिश्रम (शारीरक मेहनत) न करनेवाले अत्यंत आलस्यमें आसक्त होनेवाले तथा शीतल चिकना मधुर पदार्थ अत्यंत खानेवाले अधिक मद्य (तथा नशेकी वस्तु खाने) पीने वाले और अधिक पतले पदार्थही विशेष भोजन करने वाले तथा पतले शरबत दुग्ध तक्रादि अधिक नित्य पान करने वाले पुरुषको जान लेना चाहिये कि यह प्रमेहरोगसे रोगी होगा ॥ १ ॥ ऊपर लिखे जैसे आहार विहारमें प्रवृत्त मनुष्यके विना परिपाक हुवेही वायु पित्त कफ जब मेद धातुके संग मिल जातेहैं तब मूत्रवाहिनी स्रोतों (मूत्र उतारने वाली शिराओं) में अनुसरण करके नीचे जाकर बस्तिके मुखमें समाश्रित होकर बाहर निकलने लगतेहैं तब प्रमेहरोग उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

तेषां तु पूर्वरूपाणि हस्तपादतलदाहः स्निग्धपिच्छलगुरुता गात्राणां मधुरशुक्लमूत्रता तन्द्रा सादः पिपासा दुर्गन्धश्च श्वासस्तालुगलजिह्वादन्तेषु मलोत्पत्तिर्जटिलीभावः केशानां वृद्धिश्च नखानाम् ॥ ३ ॥ तत्राविलप्रभूतमूत्रलक्षणाः सर्व एव प्रमेहाः सर्वे एव सर्वदोषसमुत्थाः सह पिडकाभिः ॥ ४ ॥

प्रमेहोंके पूर्वरूप ये होतेहैं हथेली और तलवे गरम रहें और शरीरमें चिकनापन भारीपन [illegible] हों मूत्र मधुर और सुपेदहो तंद्रा (आंखे झपीसी रहें) और साद (थकानसी रहे) तथा तृषा विशेष हो और श्वास दुर्गंधयुक्त हो तथा तालु, गला जीभ दांत इनमें मैल अधिक पैदा हो और बाल (मैले और उलझेसे हों) तथा नाखून बढ़ुत बढ़ें ॥ ३ ॥ और मलीन (गधला) तथा अतिमूत्र होना सब प्रमेहोंका मुख्य लक्षण है ही और प्रमेह पिडिकायुक्त सारेही प्रमेह सब दोषोंसे

([illegible] ३) [illegible] अपरेतु अतिद्रवान्नपानसेविनमित्याहुरिति (डल्हनः) ॥

उत्पन्न हुवे होतेहैं (जैसे कुष्ठ) (और जैसे कुष्ठ सभी सर्व दोषज होकर जिसकी उत्कर्षता होती है वह उसीके नामसे प्रसिद्ध होता है वैसेही इसेभी समझो) ॥ ४ ॥

तत्र कफादुदकेक्षुसुरासिकताशनैःलवणपिष्टसांद्रशुक्रफेनमेहाः दशसाध्या लवणदोषदूष्याणां समक्रियत्वात् ॥ ५ ॥ पित्तान्नीलहरिद्राम्लक्षार मंजिष्ठा शोणितमेहाः षट् याप्या दोषदूष्याणां विषमक्रियत्वात् ॥ ६ ॥ वातात्सर्पिर्वसाक्षौद्रहस्तिमेहाश्चत्वारोसाध्यतमा महात्ययिकत्वात् ॥ ७ ॥

तहां कफसे उदकप्रमेह इक्षुप्रमेह सुराप्रमेह सिकताप्रमेह शनैःप्रमेह लवण प्रमेह पिष्टप्रमेह सांद्रप्रमेह शुक्रप्रमेह और फेनप्रमेह ये दश कफप्रमेह साध्य हैं क्यों कि इनमें दोष कफ और दूष्य वसादि उनकी क्रिया (चिकित्सा) सम अर्थात् सीधी है (कि कफ प्रमेहमें कफनाशक रूक्षक्रिया ठीक वसा आदिकी नाशक होती है) ॥ ५ ॥ पित्तसे नीलप्रमेह हारिद्रप्रमेह अम्लप्रमेह क्षारप्रमेह मंजिष्ठा प्रमेह और शोणितप्रमेह ये छः पित्तप्रमेह याप्य हैं क्यों कि दोष पित्त और दूष्य वसा आदि इनकी क्रियामें विषमता है अर्थात् जो क्रिया (शीतक्रिया) पित्तको शांत करनेवाली हो वह वसा आदिको बढानेवाली होती है ॥ ६ ॥ वायुसे सर्पि प्रमेह वसाप्रमेह क्षौद्रप्रमेह और हस्तिप्रमेह ये चार वातप्रमेह अत्यंत असाध्य हैं क्यों कि इनकी क्रियामें अत्यंत कठिनता है अर्थात् प्रधान दोष वायुके नाशकी स्निग्ध क्रिया प्रमेहवर्द्धिनी स्वभावहीसे होती है तथा प्रमेह नाशक रूक्ष क्रिया वायुको बढानेवाली होती हैं इसीसे ये असाध्य है ॥ ७ ॥

तत्र वातपित्तमेदोभिरन्वितः श्लेष्मा श्लेष्मप्रमेहाञ्जनयति वातकफशोणितमेदोभिरन्वितं पित्तं पित्तप्रमेहान् कफपित्तवसामज्जामेदोभिरन्वितो वायुर्वातप्रमेहान् ॥ ८ ॥

इनमेंसे वायु पित्त और मेदसे मिलाहुआ कफ (प्रधान होकर) कफके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है। और वायु कफ रुधिर और मेदसे मिला हुआ पित्त (प्रधान होकर) पित्तके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है तथा कफ पित्त वसा मज्जा और मेदसे मिला हुवा वायु प्रधान होकर वायुके प्रमेहोंको उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

(गद्य ५ । ६ । ७) प्रमेहेष्वपिकुष्ठवत् ग्रंथांतरे कुत्रचिन्नामांतरम् तथाहचरकः उदकमेहश्चेक्षुवालिकारसमे हश्च सांद्रमेहश्च सांद्रप्रसादमेहश्च शुक्रमेहश्च शुक्रमेहश्च शीतमेहश्च सिकतामेहश्च शनैर्मेहश्च लालामेहश्चेतिदश कफजाः पित्तजास्तु क्षारमेहः कालमेहः नीलमेहः लोहितमेहः मांजिष्ठामेहः हारिद्रमेहश्चेतिषट् । वातजास्तु वसामेहो मज्जमेहो हस्तिमेहो मधुमेहश्चेति चत्वारः ॥

दोषदूष्याणामिति प्रमेहे कफपित्तवायवो दोषाः रक्तमांसमेदो मज्जशुक्रौजः प्रमूत्रयोदूष्याः ॥

तत्र श्वेतमवेदनमुदकसदृशमुदकमेही मेहति।इक्षुरसतुल्यमिक्षुमेही सुरामेही सुरातुल्यम्।सरुजं सिकतानुविद्धं सिकतामेही । शनैः सकफं मृत्स्नं शनैर्मेही । विशदं लवणतुल्यं लवणमेही । हृष्टरोमा पिष्टरसतुल्यं पिष्टमेही । आविलं सांद्रं सांद्रमेही । शुक्रतुल्यं शुक्रमेही । स्तोकं स्तोकं सफेनं फेनमेही मेहति ॥ ९ ॥

(कफके जो १० प्रमेहहैं) उनमेंसे सुपेद विना पीडाके जलतुल्य मूत्र होनेसे उदक (१) प्रमेह होता है । तथा इक्षु (२) प्रमेहवालेका मूत्र इक्षु (ऊख) के रसके तुल्य होता है । और सुरा (३) प्रमेहके रोगीका मूत्र सुरा (मदिरा) के समान होता है । तथा सिकता (४) प्रमेहवालेका मूत्र पीडा सहित और छोटी २ सिकतासे मिला हुवा उतरता है शनैः (५) प्रमेहवालेका मूत्र थोडा २ कई वार और गधला उतरता है । और लवण (६) प्रमेहवालेका मूत्र लवणके जलके तुल्य और उज्वल होता है । तथा पिष्ट (७) प्रमेह वालेके शरीरपर रोमांच होते हैं और उसका मूत्र पिट्ठीके जलके समान होता है । और सांद्र (८) प्रमेह वालेका गधला और गाढा मूत्र होता है । तथा शुक्र प्रमेह (९) वालेके मूत्रमें शुक्रके तुल्य पदार्थ होताहै । और फेन (१०) प्रमेह वालेका मूत्र फेन (झागयुक्त) होताहै और थोड़ा २ करके उतरता है ॥ ९ ॥

अतऊर्द्ध्वं पित्तनिमित्तान् वक्ष्यामः ॥ १० ॥

यहांसे अगाड़ी पित्तजनित प्रमेहोंके लक्षण कहतेहैं ॥ १० ॥

सफेनमच्छं नीलं नीलमेही मेहति । सदाहं हरिद्राभं हरिद्रामेही । अम्लरसगन्धमम्लमेही। स्रुतक्षारप्रतिमं क्षारमेही । मञ्जिष्ठोदकप्रकाशं मांजिष्ठमेही । शोणितप्रकाशं शोणितमेही मेहति ॥ ११ ॥

नीलप्रमेह वालेका मूत्र झागयुक्त स्वच्छ नील वर्ण होताहै और हरिद्रा प्रमेह वालेका मूत्र हलदीके तुल्य (पीला) होता है और उसमें दाह भी होताहै अर्थात् मूत्र जलन युक्त होताहै । अम्ल प्रमेह वालेके मूत्रमें अम्लरस (खट्टापन) होताहै और खटाईकेसी गंध होती है । क्षार प्रमेहवालेका मूत्र धुले हुवे क्षारके तुल्य होताहै और मांजिष्ठ प्रमेह वालेका मूत्र मजीठके क्राथके तुल्य लाल होता है । और शोणित प्रमेह वालेका मूत्र रुधिरके तुल्य अति लाल होता है (अथवा शोणितही मूत्रमें आता है) ॥ ११ ॥

. अत ऊर्द्धं वातनिमितान् वक्ष्यामः ॥ १२ ॥

यहांसे अगाड़ी वातजनित प्रमेहोंके लक्षण कहतेहैं ॥ १२ ॥

सर्पिःप्रकाशं सर्पिर्मेही मेहति, वसाप्रकाशं वसामेही, क्षौद्ररसवर्णं क्षौद्र मेही, मत्तमातंगवदनुप्रवृद्धं हस्तिमेही, मेहति ॥ १३ ॥

घृतके तुल्य सर्पिप्रमेह वालेका मूत्र होताहै। और वसाप्रमेह वालेका वसा (चरबीका स्नेह) जैसा मूत्र होता है। और क्षौद्रप्रमेह वालेका मूत्र शहतके वर्णका होता है और उसमें शहत तुल्यही रस (माधुर्य) होताहै । हस्तिप्रमेह वालेका मूत्र ऐसा होताहै जैसे मदोन्मत्त हाथीका मद होताहै ॥ १३ ॥

कफप्रमेहके उपद्रव ।

मक्षिकोपसर्पणमालस्यं मांसोपचयः प्रतिश्यायः शैथिल्यारोचकाविपाकाः कफप्रसेकश्छर्दिनिद्राकासश्वासाश्चेति श्लेष्मजानामुपद्रवाः॥ १४ ॥

मूत्रपर मक्षिका (मक्खियां) आकर बैठना आलस्य मांसकी वृद्धि प्रतिश्याय शिथिलता अरुचि भोजनका परिपाक न होना मुँहसे रालबहना वमन होना निद्रा अधिक आना खाँसी होना श्वास होना ये कफप्रमेहके उपद्रवहैं ॥ १४ ॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव ।

वृषणयोरवदरणं बस्तिभेदो मेढ्रतोदो हृदिशूलमम्लीकाज्वरातीसारारोचकाः वमथुः परिधूमायनं दाहो मूर्च्छा पिपासा निद्रानाशः पांडुरोगः पीतविण्मूत्रत्वं चेति पैत्तिकानाम् ॥ १५ ॥

वृषणोंमें फूटन बस्तिस्थानमें भेदनकेसी पीडा मेढ् इंद्रियमें दरद हृदयमें शूल खट्टीडकारें आना तप अतिसार अरुचि वमन भीतर धूवाँसा उठना दाह मूर्च्छा तृषा निद्रा नहीं आना पांडुरोग तथा मलमूत्रका पीला होना ये पित्त प्रमेहके उपद्रवहैं॥ १५॥

वातप्रमेहके उपद्रव ।

हृद्ग्रहो लौल्यमनिद्रा स्तंभः कंपः शूलं बद्धपुरीषत्वं चेति वातजानाम् १६

हृदय जकड़ासा रहना चपलता निद्रा न आना शरीर अकड़जाना शरीर कांपना शूल होना और मल बद्ध हो जाना ये वातप्रमेहके उपद्रव हैं ॥ १६ ॥

एव मेते विंशतिः प्रमेहाः सोपद्रवा व्याख्याताः ॥ १७ ॥

इस प्रकारसे बीस प्रमेह उपद्रवोंसहित वर्णन किये गये है ॥ १७ ॥

प्रमेह पिडका।

तत्र वसामेदोभ्यामभिपन्नशरीरस्य त्रिभिर्दोषैरनुगतधातोः प्रमेहिणो दश पिडकाः जायंते तद्यथा सराविका सर्षपिका कच्छपिका जालिनी विनता पुत्रिणी मसूरिका अलजी विदारिका विद्रधिका चेति ॥ १८ ॥

इन प्रमेहवालोंमेंसे जिनका शरीर वसा और चरबीसे व्याप्त (व्यापन्न) है और जिनकी धातु तीनों दोषोंके अनुगत हो रही हो उनके दश प्रकार पिडका (प्रमेह-पिडका) उत्पन्न हो जाती हैं जैसे १ सराविका २ सर्षपिका ३ कच्छपिका ४ जालिनी ५ विनता ६ पुत्रिणी ७ मसूरिका ८ अलजी ९ विदारिका १० विद्रधिका॥ १८॥

प्रमेह पिडकाओंके लक्षण।

शरावमात्रा तद्रूपा निम्नमध्या शराविका गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ १९ ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः। जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ २० ॥ महती पिडका नीला पिडका विनता स्मृता। महत्यल्पान्विता ज्ञेया पिडका सातु पुत्रिणी ॥ २१ ॥ मसूरसमसंस्थाना ज्ञेया सा तु मसूरिका रक्तासिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी भवेत् ॥ २२ ॥ विदारीकंदव द्वृत्ता कठिना च विदारिका। विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका बुधैः २३

शराइके समान और सराईके आकार बीचमेंसे नीची ऐसी पिडकाको शराविका कहते हैं, सुपेद सरसोंके आकार और उसीके प्रमाण सर्षपिका होती है ॥ १९ ॥ जो दाह युक्त हो और कछवेके समान उसे कच्छपिका कहते हैं, और जिसमें तीक्ष्ण दाह हो और मासके जालसे आच्छादित हो उसे जालिनी कहते हैं ॥ २० ॥ जो पिडका बडी हो नीलवर्ण हो वह विनता नाम पिडका होती है। तथा जो एक बडी पिडका हो और उसके आसपास छोटी छोटी अनेक हों तो वह पुत्रिणी कहलाती है ॥ २१ ॥ जो मसूरके समान हो वह मसूरिका कहलाती है। तथा जो लाल सुपेद फालकेवाली दारुण पिडका हो उसे अलजी कहते हैं ॥ २२ ॥ जो विदारी कंदके समान फैली हुई गोल हो करडी हो वह विदारिका है। तथा जिसमें विद्रधिके लक्षण हों वह वैद्योंने विद्रधिका नाम पिडका कही है ॥ २३ ॥

ये यन्मया स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयां ॥ २४ ॥

(श्लो० २४) विनापमेहमप्येता जायंते दुष्टमेदसः तावच्चैताः नलक्ष्यंते यावद्वस्तुपरिग्रहः (इति माधवः) ॥

जिनको जिस २ प्रधान दोषका प्रमेह होता है उनको उसही दोषकी ये प्रमेह पिडका होती हैं जैसे कफ प्रमेहमें कफ पिडका और पित्त प्रमेहमें पित्त पिडका ऐसेही वात प्रमेहमें वात पिडका होती हैं ॥ २४ ॥

पिडकाकी असाध्यता ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मणि चोत्थिताः॥सोपद्रवा दुर्बलस्य पिडकाः परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

गुदा हृदय शिर बाहुमूल पीठ तथा अन्य मर्मस्थानोंमें उठी हुई प्रमेह पिडका और उपद्रवोंसहित दुर्बल मनुष्यकी पिडका त्यागने योग्य (असाध्य) हैं ॥ २५॥

वातप्रमेहकी असाध्यता ।

कृत्स्नं शरीरं निष्पीड्य मेदोमज्जवसायुतः॥अधःप्रक्रमते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २६ ॥

समस्त शरीरको निचोड़कर मेद मज्जा और वसासहित वायु नीचे (मूत्र मार्गकी ओर) संक्रमण करताहै इस कारण वातजनित प्रमेह असाध्य होतेहैं ॥ २६ ॥

प्रमेहका परिज्ञान ।

प्रमेहपूर्वरूपाणामाकृतिर्यत्र दृश्यते ॥ किंचिच्चाप्यधिकं मूत्रं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २७ ॥ कृत्स्नान्यर्द्धानि वा यस्मिन् पूर्वरूपाणि मानवे ॥ प्रवृत्तमूत्रमत्यर्थं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २८ ॥

जिस मनुष्यके प्रमेहके पूर्वरूपोंकी आकृति (दंतादिपर मल हथेली तलवे जलना आदि) दीखें और कुछभी अधिक मूत्र उतरने लगे तो उस मनुष्यको प्रमेहका रोगी जानलेना चाहिये ॥२७॥ जिस मनुष्यमें समस्त पूर्वरूपके लक्षण हों अथवा आधेही लक्षण हों परंतु अधिक मूत्र आवे तो उस मनुष्यको प्रमेहका रोगी जानना चाहिये॥२८॥

पिडकापीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवैः ॥ मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्यः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ स चापि गमनात्स्थानं स्थानादासनमिच्छति॥आसनाद्वृणुते शय्यां शयनात् स्वप्नमिच्छति ॥ ३० ॥

जो पुरुष पिडकासे अति पीडित हो और प्रमेहके उपद्रवोंसे व्याप्तही उसे मधुप्रमेही होगा ऐसा जानना और यह मधुप्रमेह असाध्य होताहै ॥ २९ ॥ प्रमेहका

(श्लो० २५) सोपद्रवाइति विदृकाशमांससंकोचमोहहिक्कामदादयः विसर्पमर्मसंरोधाः पिडकानामुपद्रवाः (इति डल्हनः) ॥

रोगी चलनेकी अपेक्षा ठैरनेकी इच्छा किया करताहै और ठैरने (खडे होने) से बैठ जानेकी वांछा किया करताहै और बैठे रहनेसे लेटना चाहताहै और लेटनेसे फिर सोजानेकी इच्छा रखताहै ॥ ३० ॥

यथा हि वर्णानां पंचानामुत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण शबलबभ्रुकपिलकपोतमेचकादीनां वर्णानामनेकेषामुत्पत्तिर्भवति एवमेव दोषधातुमलाहारविशेषेणोत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण प्रमेहाणां नानाकारणं भवति ॥ ३१ ॥

जैसे पांच मुख्य रंगों (सुपेद हरे काले पीले और लाल) के बहुत और थोड़े मिलानेसे शबल (चितकबरा) बभ्रु (नकुलई) कपिल (सुनहरा) कपोत (फाकतई) और मेचक (सुरमई) इत्यादि अनेक प्रकारके रंगोकी उत्पत्ति होजातीहै इसी भांति दोष (वायु पित्त कफ) धातु (रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा शुक्र) और मल तथा आहार विशेषके अधिक न्यूनादिके संयोग होनेसे प्रमेहोंके भी अनेक प्रकारके कारण (रूप और भेद आदि) होजातेहैं ॥ ३१ ॥

भवति चात्र ॥ सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥ मधुमेहत्वमायांति तदासाध्या भवंतिहि ॥ ३२ ॥

इति निदाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

यहां एक श्लोकहै कि ॥ सबही प्रमेह प्रति क्रिया (उपाय) नहीं करनेवाले पुरुषोंके बहुत समयतक रहनेसे मधुप्रमेह होजातेहैं और उस अवस्थामें वे असाध्य होजातेहैं ॥ ३२ ॥

यूनानी हकीम इसे जिरयान कहतेहैं और डाक्टर इस्प्रमीटोरिया कहतेहैं ।

इतिश्री सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथात उदराणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी उदर रोगोंके निदानकी व्याख्या करतेहैं ।

धन्वंतरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो राजर्षिरिन्द्रप्रतिमो बभूव ॥ ब्रह्मर्षिपुत्रं विनयोपपन्नं शिष्यं शुभं सुश्रुतमन्वशासत् ॥ १ ॥

राजर्षि धार्मिकोंमें श्रेष्ठ ऐसे श्रीभगवान् धन्वंतरिजी जो इंद्रके समान प्रतापी हुवे वे विनयसे प्राप्त हुवे ब्रह्मर्षि (विश्वामित्र) के पुत्र अपने शिष्य सुश्रुतको (इसप्रकारसे उदर रोगोंके विषयमें) शिक्षा देते भये ॥ १ ॥

उदररोगोंकी संख्या-और हेतु।

पृथक्समस्तैरपि चेह दोषैः प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव ॥ आगंतुकं सप्तम-मष्टमं च दकोदरं चेति वदंति तानि ॥ २ ॥ सुदुर्बलाग्नेरहिताशनस्य संशुष्कपूत्यन्ननिषेवणाद्वा ॥ स्नेहादिमिथ्याचरणाद्धि जंतोर्वृद्धिं गताः कोष्ठमभिप्रपन्नाः ॥ गुल्माकृतिव्यंजितलक्षणानि कुर्वंति घोराण्युदराणि दोषाः ॥ ३ ॥

उदर रोग ८ प्रकारका होता है जैसे पृथक् २ दोषोंसे (यथा १ वातोदर २ पित्तोदर ३ कफोदर ४)समस्त दोषों (सन्निपात) से सन्निपातोदर ५ प्लीहोदर ६ बद्धगुदोदर ७ आगंतुक परिस्राव्युदर (क्षतोदर) और ८ आठवां दकोदर (अर्थात् जलोदर) इसप्रकार इनको उदर रोग (अथवा जठर रोग)कहतेहैं ॥ २ ॥

उदर रोगोंका हेतु ।

अत्यंत दुर्बल जठराग्निवाला मनुष्य जो अहित भोजन करे अथवा सूखा बासी सड़ा अन्न भोजन करे अथवा अयोग्य रीतिसे स्नेहपान वमन रेचनादिका आचरण करे उससे मनुष्यके कोष्ठ (उदर) में वात आदि दोष बढकर गुल्मके आकार और प्रगट लक्षण वाले ऐसे घोर उदर रोगों (वातोदर प्लीहोदर जलोदरादि) को उत्पन्न करतेहैं ॥ ३ ॥

कोष्ठादुपस्नेहवदन्नसारो निःसृत्य दुष्टोऽनिलवेगनुन्नः ॥ त्वचः समुन्नम्य शनैः समंताद्विवर्द्धमानो जठरं करोति ॥ ४ ॥

उप स्नेहकी भांति (जैसे नये घड़ेमेंसे चिकनाई बाहरकी तरफ झिर आतीहै तैसे) कोष्ठ (आमाशय) से निकला हुवा दुष्ट अन्नका सार वायुकरके प्रेरित हुवा बाहरकी त्वचाको नम्र करके धीरे धीरे सब ओरसे वर्द्धमान हो बढकर उदर रोग उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥

उदररोगोंका पूर्वरूप।

तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे हि राज्यः । जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥ ५ ॥

उदर रोगोंका पूर्वरूप यह है कि बल और वर्णकी कांक्षा (अर्थात् नाश) हो और उदर परसे त्रिवली (सलवटें) जाती रहें अर्थात् पेट तन जाय और रोमोंकी

(श्लो० ४) उपस्नेहवदिति नवघटाद्युपस्नेहो यथा नूतनस्रोतोभिर्बहिः स्रावो दृश्यते तद्वत् कोष्ठादन्नसारो दुष्टः सन् त्वचः समुन्नम्य आनम्रीकृत्वा समंताद्विवर्द्धमानः शनैर्जठररोगं करोति इति (डल्हनः) ॥

पंक्ति उभर आवे और भोजन पचा या नहीं पचा इसका ज्ञान जाता रहे और विदाह हो तथा बस्तिस्थानमें पीडा हो और पावोंपर शोथ होजाय ॥ ५ ॥

वातोदर ।

संगृह्य पार्श्वोदरपृष्ठनाभीर्विवर्द्धते कृष्णशिरावनद्धम् । सशूलमानाहवदुग्रशब्दं सतोदभेदं पवनात्मकं तत् ॥ ६ ॥

जिसमें पँसवाडे पेट पीठ और नाभि जकडेसे रहें और पेट फूले हुवेपर काली नसें चमकें और शूल अफरा हो पेटमें शब्द (गुड २) बहुत हो और दरद और भेदन कीसी पीडाके साथ बढे उसे " वातोदर " कहतेहैं ॥ ६ ॥

पित्तोदर ।

यच्चोषतृष्णाज्वरदाहयुक्तं पीतं शिरा यत्र भवंति पीताः । पीताक्षिविण्मूत्रनखाननस्य पित्तोदरं तत्त्वचिराभिवृद्धि ॥ ७ ॥

जो चोष तृषा ज्वर और दाहसे युक्त हो पेटकी फुलावटमें पीलापन हो और उसमें नसेंभी पीली पीलीही चमकें तथा नेत्र विष्ठा मूत्र नाखून और मुख पीले हों और शीघ्रही बढ जाय उसे " पित्तोदर " कहतेहैं ॥ ७ ॥

कफोदर ।

यच्छीतलं शुक्लशिरावनद्धं स्थिरं सितं शुक्लनखाननस्य । स्निग्धं महच्छोकयुतं ससादं कफोदरं तं च चिराभिवृद्धि ॥ ८ ॥

जिसका उदर शीतल हो और उसके फुलावपर सुपेद नसें चमकें करडा हो सुपेद रंग हो और उसके नख और मुखभी सुपेदही हों तथा स्निग्ध हों और (बहुत भारी शोथ करके युक्त हो) अथवा अति शोकयुक्त हो और बहुत दिनमें वृद्धिको प्राप्त हो उसे कफोदर कहते हैं ॥ ८ ॥

सन्निपातोदर ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥ यस्मै प्रयच्छंत्यरयो गरांश्च दुष्टांबुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ ९ ॥ तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्वंति घोरं जठरं त्रिलिंगम् । तच्छीतवाताभ्रसमुद्भवेषु विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १० ॥ स चातुरो मूर्च्छति संप्रसक्तं पांडुः कृशः शुष्यति

(श्लो० ८) महच्छोकयुतमित्यत्र महच्छोफयुतमिति वा पाठः । ससादं अंगग्लानियुतम् ॥

(श्लो० ९ । १० । ११) स्त्रीपुरुषमथोपलक्षणं तेनान्योपि सन्निहिता अविवेकिनो ग्राह्याः । गरान् कृत्रिमविषाणि । दूष्युदरं इति सान्निपातिकोदरं नदेवदूष्युदरं एतेन सङ्ख्यातिरेकः (इति निबंध संग्रहः) ॥

तृष्णया च। प्रकीर्तितं दूष्युदरं तु घोरं प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ११ ॥

मूर्ख स्त्री अथवा खोटे पुरुष या शत्रु किसीको भोजनादिमें मिलाकर नाखून या किसी जीवका रोम या मूत्र या विष्ठा या आर्तवरक्त आदि खिलादें उससे अथवा शत्रु गर (कृत्रिमविष) खिलादें उससे अथवा निकम्मा जल पीनेसे तथा दूषीविष सेवन करनेसे ॥ ९ ॥ शीघ्रही रक्तकोप हो जाता है तथा वातादि दोषभी कुपित हो जाते हैं वे तीनों दोषोंके लक्षणवाला घोर जठररोग उत्पन्न करते हैं वह शीत वायु अबरके समय विशेष कोप करता है और विदाहको प्राप्त होता है ॥ ॥ १० ॥ यह रोगी निरंतर मूर्च्छाको प्राप्त होताहै शरीर पीला पड़जाता है और दुबला हो जाता है तथा तृषाके मारे (कंठ) सूखने लग जाता है इसे घोर दूष्युदर तथा सन्निपातोदर कहते हैं और इसके अगाड़ी प्लीहोदरका कीर्तन किया जाता है उसे सुनो और समझो ॥ ११ ॥

प्लीहोदर ।

विदाह्यभिष्यंदिरतस्य जंतोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च । प्लीहाभिवृद्धिं सततं करोति प्लीहोदरं तत्प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ १२ ॥ वामे च पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोत्र।मंदज्वराग्निः कफपित्तलिंगरुपद्रुतः क्षीणबलोतिपांडुः ॥ १३ ॥ सव्येतरस्मिन् यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १४ ॥

जो मनुष्य विदाही (दाहजनक) तथा अभिष्यंदि (रस वहा शिराओंको रोककर गुरुता करनेवाले) भोजन अधिक करतेहैं उनका रुधिर तथा कफ अत्यंत दूषित होकर प्लीहा (तिल्ली) को अत्यंत बढा देतेहैं उसे विद्वान् वैद्य प्लीहोदर कहतेहैं ॥ ॥ १२ ॥ यह (तिल्ली) बाँये पसवाड़ेमें बढतीहै और इस रोगमें रोगी विशेष कर कुमलायासा रहताहै तथा मंदज्वरभी रहताहै और जठराग्निभी मंद पड़जातीहै और इसमें विशेष कफपित्तके उपद्रव रहतेहैं बलक्षीण होजाताहै और शरीर अत्यंत पीला पड़जाताहै ॥ १३ ॥ जैसे बाँई ओर प्लीहा बढजातीहै उसी तरह दाहनी तरफ यकृत् (जिगर) दूषित होकर बढजाताहै तो उसे यकृत् (दाली) उदर अर्थात् यकृत् वृद्धि कहतेहैं ॥ १४ ॥

बद्धगुदोदर ।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा वालाश्मभिर्वा सहितैः पृथक् वा । संचीयते

(श्लो० १३ । १४) सव्येतरस्मिन् दक्षिणे ॥

यत्र मलः सदोषः क्रमेण नाड्यामिव संकरोहि ॥ १५ ॥ निरुध्यते चास्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम्। हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति यच्चोदरं विट्समगंधिकं च। प्रच्छर्दयन् बद्धगुदी विभाव्य स्ततः परिस्राव्युदरं निबोध ॥ १६ ॥

जिस मनुष्यकी अंत्र (आंत) पिच्छल अन्नादिसे लिपायमान होजाय अथवा बाल मिट्टी राख आदिसे मिले अन्नका मल अथवा पृथक् दोष (वातादि) युक्त मलही संचय होकर नालीमें इकट्ठा हो ॥ १५ ॥ और पुरीष (मल) गुदाको रोकदे और बहुत कष्ट करनेसेभी थोड़ा थोड़ासा मल उतरे और हृदय नाभिके बीचमें वृद्धिको प्राप्त हो और उदरमें मलकीसी दुर्गंध आवे तथा कभी वमनभी हो तो उसे बद्धगुदोदर रोग कहतेहैं अब इससे अगाड़ी परिस्राव्युदर अर्थात् आगंतुक क्षतोदरके लक्षण सुनो ॥ १६ ॥

क्षतोदर।

शल्यं यदन्नोपहितं तदंत्रं भिनत्ति यस्यागतमन्यथा वा॥ तस्मात् स्रुतान्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ १७ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेऽतीव विदह्यते च ॥ एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १८ ॥

अन्नमें मिलाहुवा शल्य (सूई आदि) अथवा और तरहसे पेटमें घुसजाय और आंतको चीरदे या छेद करदे जिससे उस आंतमेंसे पानीके तुल्य स्राव होकर बार बार गुदाद्वारा निकले ॥ १७ ॥ और नाभिके नीचे पेट बढजाय (फूलजाय) और पीडा हो तथा दाहहो उसे परिस्रावी उदर रोग अर्थात् आगंतुक क्षतोदर कहतेहैं इससे अगाड़ी जलोदरका वर्णन किया जाताहै सुनो ॥ १८ ॥

जलोदर।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ॥ पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यंति हि तद्वहानि॥ १९॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ॥ स्निग्धं महत्संपरिवृत्त-

(श्लो० १५ । १६ अत्रैः उपलेपिभिः पिच्छलैः । नाड्यां नालिकायाम् ॥

नाभिर्भृशोन्नतं पूर्णमिवांबुना च ॥ यथा दृति क्षुभ्यति कंपते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ २० ॥

जो मनुष्य स्नेहपान करनेके पीछे तथा अनुवासन बस्तिकर्मके पीछे वमन करनेके पीछे विरेचनके पीछे और निरूहण बस्तिके पीछे तात्कालही ठंढा जलपीले (अथवा क्षुधित जलपीले) तो उदक वाहिनी नाडियां दूषित होजातीहैं ॥ १९ ॥ अथवा वे उदक वाहिनी नाडी चिकनाईसे लिपायमान हों तब शीतल जलपीनेसेभी (दूषित होजातीहैं) और पहलेकी भांति जलोदर उत्पन्न होजाताहै (जलोदरके लक्षण ये हैं कि) नाभिके चारोंतरफ पेट फूलजाय और चिकनापन मालूम हो और पेट पानीसे भरासा मालूम हो जैसे पानीसे भरी मशक थलथलातीहै और हिलतीहै और पानीका शब्द होताहै (वैसे जलोदरीके पेटमें होताहै) इसे दकोदर अर्थात जलोदर कहतेहैं ॥ २० ॥

सब उदर रोगोंके सामान्य चिह्न ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ॥ शोफः सदनमंगानां संगो वातपुरीषयोः ॥ दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठरेषु भवंति हि ॥ २१ ॥

पेट फूलना चलनेकी शक्ति न रहना दुर्बलता तथा जठराग्नि मंद पड़जाना शोथ होना और अंग शिथल होजाना अधो वायु और दस्त खुलकर न होना दाह होना तृषा अधिक लगना ये लक्षण प्रायः सभी उदर रोगोंमें हुवा करतेहैं ॥ २१ ॥

अंते सलिलभावं तु भजंते जठराणि च ॥ सर्वाण्येव परीपाकात्तदा तानि विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

इति निदाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सब उदर रोग अंत परिपाक दशामें जल भावको प्राप्त होजातेहैं और उस अवस्थामें त्यागने योग्य अर्थात् असाध्य होजातेहैं चिकित्साके योग्य नहीं रहते२२॥

इनमेंसे प्लीहोदरको डाक्तरीमें "इन्लारजिमेंट औफदी इस्पीलीन" कहतेहैं और यूनानीमें तिहाल कहतेहैं और यकृत्‌को डा० इनलारजिमेंट ऑफदीलिवर तथा हैपटिकाडिजीज और यूनानी अमरात जिगर कहतेहैं इनके यहां इसके बहुत भेदहैं ॥

जलोदरको डाक्तरीमें " एसाइटिस " कहतेहैं और किसी एक अंतड़ीमें पानी भराहो तो उसे ड्रापसीकहतेहैं तथा यूनानीमें इसातिसका कहतेहैं इत्यादि ॥

(वक्तव्य) हमने वैद्यक और यूनानी तथा डाक्तरीके अनुसार रोगोंके (नाम

(श्लो० २०) स्नेहोपलिप्तेषु इति स्नेहादियानादिना लिप्तेषु शीतलं जलं पिबेतदापीत्यर्थः। पूर्ववदिति जलोदरवत सलिलस्याधोगामित्वादधोनाभेः उदरोत्पत्तिः । (इति डल्हनः) ॥

लक्षणादिमें एकता करनेका बहुत कुछ परिश्रम किया तोभी अनेक विद्वानोंकी रीति और क्रममे बडाही अन्तरहै इससे हरेक रोगका निदान और उत्पत्तिका कारण प्रायः एक दूसरेसे नहीं मिलताहै हां जोजो मोटी मोटी बातें और जिस रोगमें जितना उचित प्रतीत हुवा वह थोडा २ लिखा जाता है विशेष देखना होतो उन २ विद्याओंकी पुस्तकें देखो जैसे यूनानियोंने जिगरके बहुत रोग लिखेहैं जैसे जिगरमें गरमी सरदी आदि तथा जिगरकी निर्बलता जिगरका सुद्दा जिगरका शोथ जिगरकी शर्करा इत्यादि ये वैद्यकमें इसभांति नहीं मिलते और वातोदर पित्तोदर क्षतोदरादि जैसे वैद्यकमें कहेहैं वैसे यूनानी आदिमें नहीं मिलते ॥

इति सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो मूढगर्भनिदानं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी मूढ गर्भके निदानकी व्याख्याकरतेहैं ।

ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमनप्रस्खलनप्रपतनप्रपीडनधावनाभिघातविषमशयनासनोपवासवेगाभिघातातिरूक्षकटुतिक्तभोजनशाकातिक्षारसेवनातिसारवमनविरेचनप्रेंखोलनाजीर्णगर्भशातनप्रभृतिभि र्विशेषैर्बंधनान्मुच्यते गर्भः फलमिववृंतबंधनादभिघातविशेषैः ॥ १ ॥

ग्राम्यधर्म (मैथुन) करनेसे घोडे आदिपर चढने और गाडी आदिमें बैठकर चलनेसे पैरोंसेसफर करने प्रस्खलन (औंधा होकर चलने नीचा झुककर चलने) ऊपरसे गिरने भिचजाने भागने चोट लगने विषम सोने तथा विषम आसन बैठने (या विषम भोजन करने) लंघन करने वेग (दस्त मूत्रादिकी शंका) रोकने अति रूखा भोजन करने कटु (चरपरा) तिक्त (कडवा) भोजन करने अति शाक खाने खारी वस्तु अति खानेसे तथा दस्त लगजानेसे वमन होनेसे विरेचन लेनेसे प्रेंखोलन (हिंडोले आदि झूलनेसे) अजीर्णसे गर्भशातन (गर्भ पातकी क्रिया करने) इत्यादिसे गर्भ अपने बंधनसे छूट जाताहै जैसे चोट आदिके प्रहारकरसे नकके बंधनसे फल छूट जाताहै ॥ १ ॥

स विमुक्तबंधनो गर्भाशयमतिक्रम्य यकृत्प्लीहान्त्रविवरैरवस्त्रंसमानः

(गर्भा० १) मूढगर्भइति मूढोनिरुद्धगतिर्गर्भः मूढगर्भः तदुक्तम् सर्वावयवसंपूर्णो मनोबुद्ध्यादिसंयुतःविगुणापान [illegible] मूढगर्भोऽभिधीयते इति (डल्हनः) प्रस्खलनं रिंगणादि प्रेंखोलनं हिंडोलनं गर्भशातनं भेषजेन गर्भपातनं [illegible] ।

कोष्ठसंक्षोभमापादयति तस्या जठरसंक्षोभाद्वायुरपानो मूढपार्श्वबस्ति-शीर्षोदरयोनिशूलानाहमूत्रसंगानामन्यतममापाद्य गर्भं व्यापादयति ॥ २ ॥

वह गर्भाशयके बंधसे छुटा हुवा गर्भ गर्भाशयसे निकलकर यकृत प्लीहा और आंतोंके द्वारोंसे झिरता हुवासा हो जाता है और समान वायु उसके उदरको क्षुभित करदेती है फिर उसके उदरके संक्षोभसे अपान वायु विरुद्ध गति होकर पँसवाडे और बस्तिका शिर उदर और योनिमें शूल तथा अफरा मूत्रा वरोध इत्यादि व्याधियोंमेंसे किसी एक या अधिकको उत्पन्न करके गर्भको व्यापादित अर्थात् पीडित करता है ॥ २ ॥

तरुणं शोणितस्रावणे तमेव कदाचिद्विवृद्धमसम्यगागतमपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमानमपानवैगुण्य संमोहितं गर्भं मूढगर्भमित्याचक्षते ॥ ३ ॥

अति रक्त स्रावहीसे कभी अधिक बढकर अयोग्य रीतिसे आकर संतानके मार्ग (भगद्वार) पर प्राप्त हो और बाहर नहीं निकले अपान वायुकी विगुणतासे निरुद्ध गति हो जाय ऐसे गर्भको मूढ गर्भ कहते हैं ॥ ३ ॥

ततः स कीलः प्रतिखुरो बीजकः परिघ इति । तत्र ऊर्ध्वबाहुशिरःपादो यो योनिमुखं निरुणद्धि कील इव स कीलः । निःसृतहस्तपादशिराः कायसंगी प्रतिखुरः । यस्तु निर्गच्छत्येकशिरोभुजः स बीजकः । परिघ इव योनिमुखमावृत्य तिष्ठेत् स परिघः इति चतुर्विधो भवतीत्येके भाषंते ॥ ४ ॥

वह मूढगर्भ कील प्रतिखुर बीजक और परिघ ऐसे (चार प्रकारका) होताहै । जिसमें हाथ ऊपरको और शिर और पैरभी ऊपरको होकर योनिके मार्गको कीलकी भांति रोक दे वह “ कील” संज्ञक है । जिसमें हाथ या पांव या शिर निकलकर और शरीर रुक जाय वह “ प्रति खुर” है । जिसका एक शिर और हाथही निकले वह “ बीजक” है जो वज्रके समान योनिके मुखको रोककर स्थित होजाय वह “परिघ” है ऐसे चार प्रकारका मूढगर्भ होता है यह कई आचार्य कहते हैं ॥ ४ ॥

तत्तु न सम्यक् कस्मात् स यदा विगुणानिलप्रपीडितो पत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा संख्या हीयते ॥ ५ ॥

ऊपर कहा हुवा चारही प्रकारका मूढगर्भ होता है ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि जब वह विगुण अपान वायु करके पीडित हुवा गर्भ अनेक प्रकारसे अपत्यमार्ग (योनि) को प्राप्त हो जाता है इसमें संख्याका नियम नहीं रह सकता ॥५॥

तत्र कश्चित् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते । कश्चिदाभुग्नैक-सक्थिरेकेन । कश्चिदाभुग्नसक्थिशिरःस्फिक्देशेन तीर्यगागतः । कश्चि-दुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते । अंतःपार्श्वापवृ-त्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना । कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन । कश्चिदाभुग्न मध्यो हस्तपादशिरोभिः कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखमभि प्रतिपद्यते परेण पायुमित्यष्टविधा मूढगर्भगतिरुद्दिष्टा समासेन ॥ ६ ॥

(१) तिनमें कोई मूढ गर्भ तो दोनों साथलोंसे योनिके मुखमें प्राप्त होता है (२) कोई एक साथल संकुचितकर एकही साथलसे प्राप्त होताहै । (३) कोई साथल और शिरको सकुंचित करके कूलोंसे योनिद्वारमें प्राप्त होताहै और टेढा होताहै (४) कोई पेट पसँली पीठ इनमेंसे किसीके बल योनि द्वारको रोककर स्थित होताहै । (५) कोई शिरको पँसवाडेमें झुकाकर एक हाथही निकाल देताहै । (६) कोई शिरको संकुचित करके दोनो हाथ निकालताहै । (७) कोई मध्यभागको संकुचित करके हाथ पांव तथा शिरसे योनि द्वारपर प्राप्त होताहै । (८) कोई एक साथलसे योनिद्वारपर प्राप्त होताहै और दूसरी साथल गुदाकी तरफ प्रवृत्त होतीहै ऐसे संक्षेपसे मूढ गर्भकी गति आठ प्रका-रकी वर्णनकी गई ॥ ६ ॥

तत्र द्वावंत्यावसाध्यौ मूढगर्भौ शेषानपि विपरीतेंद्रियार्थाक्षेपकयोनि-भ्रंशसंवरण मक्कल्लश्वासकासभ्रमनिपीडितान्परिहरेत् ॥ ७ ॥

इनमेंसे अंतके दो असाध्य मूढ गर्भ होतेहैं और शेषभी जिनमें इंद्रियोंका ज्ञान विपरीत होजाय अथवा आक्षेपक वायु रोगहो अथवा योनि बाहर निकल आवे अथवा योनि बहुतही सुकड जाय तथा मक्कल्लक नाम प्रसूत शूल तीक्ष्ण हो श्वास खांसी और भ्रम इन करके निपीडित हो अर्थात् जिन्हें ये उपद्रव हों उन्हेंभी त्यागदे ॥ ७ ॥

भवंति चात्र ।

यहांपर श्लोक है कि-

कालस्य परिणामेन मुक्तं वृंताद्यथा फलम् ॥ प्रपद्येत स्वभावेन नान्यथा पतति नु फलम् ॥ ८ ॥ एवं कालप्रकर्षेण मुक्तो नाडी विबंधनात् ॥ गर्भा-शयस्था यो गर्भो जननाय प्रपद्यते ॥ ९ ॥

जैसे कालके परिणामसे डालीसे छूटकर स्वभावसे फल गिरपड़ताहै अन्यथा नहीं पड़ता ॥ ८ ॥ ऐसेही समय पूरा होनेपर गर्भाशयका गर्भभी नाडियोंके बंधसे छूटकर जन्म लेनेके लिये प्रवृत्त होताहै ॥ ९ ॥

क्रमिवाताभिघातैस्तु तदेवोपद्रुतं फलम् ॥ पतत्यकालेपि यथा तथा स्याद्गर्भविच्युतिः ॥ १० ॥ आचतुर्थात्ततो मासात् प्रस्रवेद्गर्भविच्युतिः ततः स्थिरशरीरस्य पातः पंचमषष्ठयोः ॥ ११ ॥

जैसे कीडेके खाने वायु लगने चोट लगने आदिके उपद्रवोंसे फल अकालमें (बे समय) भी गिरजाताहै वैसेही उपद्रवोंसे गर्भभी बे समय गिर पडताहै ॥ १० ॥ चार महीनेतक गर्भ गिरे तो उसे गर्भ स्राव कहतेहैं उससे पीछे शरीर स्थिर होजाताहै इससे पांचवें और छठे महीनेमें गिरे तो गर्भपात कहलाताहै ॥ ११ ॥

प्रविध्यति शिरो या तु शीतांगी निरपत्रपा ॥ नीलोद्धतशिरा हंति सा गर्भं स च तां तथा ॥ १२ ॥ गर्भास्पंदनमावीर्णां प्रणाशः श्यावपांडुता ॥ भवं त्युच्छ्वासपूतित्वं शूलं चांतर्मृते शिशौ ॥ १३ ॥ मानसागंतुभिः मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥ गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १४ ॥ वस्तमारविपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पंदते यदि ॥ तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद्भिषक् ॥ १५ ॥

इति निदानेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

जो स्त्री शिरको धुने और देह टंडी पडजाय लज्जा जाती रहे नीली नसें चमकें वह गर्भके बालकको मार देतीहै तथा मराबालक उसे मार देताहै ॥ १२ ॥ जिसके गर्भमें बालक फिरे नहीं और आवी (प्रसव वेदना) जाती रहे शरीर कालापीला पडजाय और श्वासमें मुरदे जैसी दुर्गंध आवे और शूल हो तो जानोकि बालक पेटमें मरगया ॥ १३ ॥ माताके मानसिक और आगंतुक उपतापोंसे पीडित हुवा तथा व्याधियोंसे पीडित हुवा बालक कुक्षिमें मरजाताहै ॥ १४ ॥ गर्भगत बालक को शीघ्र मारनेवाली मृता स्त्रीकी कुक्षि यदि फरके (तो बालक अभी जीताहै ऐसा जाने) और शीघ्रही मृत स्त्रीकी कूंखको फाडकर जीते बालकको सुज्ञ वैद्य निकालले १५

इतिश्री सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातो विद्रधीणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

इसके अगाडी अब विद्राधि (फोडों) के निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

सर्वामरगुरुः श्रीमान् निमित्तान्तरभूमिपः॥ शिष्यायोवाच निखिलमिदं विद्रधिलक्षणम् ॥ १ ॥ त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः दोषाः शोफं शनैः घोरं जनयत्युच्छ्रिता भृशम् ॥ २ ॥ महाशूलं रुजा वंतं वृत्तं चाप्यथ वायतं॥ तमाहुर्विद्रधिं धीराः विज्ञेयः षड्विधः स च ॥ ३

सम्पूर्ण देवताओंके गुरु निमित्तांतरसे काशीके भूपति (राजा) श्रीमान् धन्वंतरि महाराज अपने शिष्य सुश्रुत महर्षिके प्रति विद्रधियोंके संपूर्ण लक्षण वर्णन करते भये ॥ १ ॥ त्वचा रक्त मांस मेद इन्हें दूषितकर अस्थि (हड्डी) में प्राप्त हुवे वात आदि दोष धीरे २ घोर रूप ऊंचे (विद्रधिके कारण भूत) शोथको उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥ फिर अति शूल और दरदवाला गोल अथवा फैला हुवा (फोडा) हो उसे विद्रधि कहते हैं वह छः प्रकारका होता है ॥ ३ ॥

विद्रधिकी संप्राप्ति और भेद ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ ४ ॥

पृथक् २ एक एक दोषसे जैसे वायुसे पित्तसे कफसे चौथा सन्निपातसे पांचवे क्षत (चोट लगने) से छठे रक्तसे इस भांति छः ६ प्रकारसे विद्रधि होता है इन छहों प्रकारके विद्रधियोंके लक्षण वर्णन किये जाते हैं ॥ ४ ॥

विद्रधियोंके लक्षण ।

कृष्णोरुणो वा परुषो भृशमत्यर्थवेदनः ॥ चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥५॥ पक्वोदुंबरसंकाशः श्यावोवा ज्वरदाहवान्॥ क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः॥६॥ शरावसदृशः पांडुः शीतः स्तब्धोल्पवेदनः ॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च सकंडुश्च कफोत्थितः ॥ ७ ॥

जो काला तथा लाल हो खरधरा हो जिसमें चीस अधिक हो तथा जिसके उठने और पकनेमें चित्र विचित्रता हो वह वायुका विद्रधिहै ॥ ५ ॥ जो पके गूलर फलके

(श्लो० १) सर्वामरगुरुरिति अमृतदानेन सर्वे देवा अमराः कृताः तेनासौ सर्वेषां देवानां गुरुरित्यर्थः । निमित्तान्तरभूमिप इति निमित्तांतरेण कारणांतरेण भूपालतांगतः अपुत्रस्य काशिराजस्य पुत्रत्वमापन्न इतिकारणांतरं [illegible] (इति डल्हणः) ॥

तुल्य हो ऊदा हो जिसमें कभी ज्वर और दाहभी हों तथा शीघ्रही उठे और शीघ्रही पक जाय वह पित्तका विद्रधि है ॥ ६ ॥ जो सरांईके आकारहो पीला हो ठंडा हो करडाहो जिसमें पीडाभी स्वल्प हो तथा देरसे उठे और देरहीसे पके तथा खाजभी हो तो वह कफका विद्रधि है ॥ ७ ॥

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥ नानारूपरुजस्रावो घटालो विषमो महान् विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः॥८॥ तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते चापथ्यसेविनः ॥ क्षतोष्मा वायुनिर्सृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥९॥ ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥ एष विद्रधिरागंतुः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ १० ॥ कृष्णस्फोटावृतः श्याव स्तीव्रदाहरुजाज्वरः॥पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ ११ ॥

वायुमें थोडा पित्तमें पीला कफमें सुपेद इसक्रमसे स्राव होताहै तथा नाना प्रकारके रूप पीडा और स्रावहों जिसके ऊपर गाँठसी पडजाय अति विषम हो और विषम ताहीसे पके वह सन्निपातका विद्रधि होताहै ॥ ८ ॥ और उनही भावों (पतन प्रहारादि) करके अभिहत जो घाव हो उसमें अपथ्य आहार विहारकरे तब वायु करके प्रेरित घावकी गरमी रक्त सहित पित्तको दूषित कर देतीहै ॥ ९ ॥ ज्वर तृषा तथा दाह उत्पन्न होजातेहैं ऐसा फोडा आगंतुक कहलाताहै और इसमें पित्त विद्रधिके लक्षण होतेहैं॥१०॥जो ऊदे रंगका तीव्र दाह और पीडा वाला विद्रधिहो और उसके आसपास काली फुनसियांहों तथा ज्वर हो आवे और उसमें पित्त विद्रधिके लक्षण हों वह रक्त विद्रधि कहलाताहै ॥ ११ ॥

उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥ आभ्यंतरानतस्तूर्द्ध्वं विद्रधीन् परिचक्षते ॥ १२ ॥

ये ऊपर छः ६ प्रकारके विद्रधि फोडे वर्णन किये तिनमें सन्निपातका विद्रधि असाध्य होताहै इसके अगाडी अब अंतर विद्रधियोंको वर्णन करतेहै ॥ १२ ॥

अंतरविद्रधिः ।

गुर्वसात्मविरुद्धान्नशुष्कसंक्लिन्न भोजनात् ॥ अतिव्यवायाव्यायाम-वेगाघातविदाहिभिः ॥ १३ ॥ पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम्॥वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतः कुर्वंति विद्रधिम् ॥ १४ ॥

(श्लो० ८) घटालइति ऊर्द्ध्वभागो महानयस्य सघटालः ॥

(श्लो० ९) तैस्तैर्भावैरिति पतनगूढप्रहारादिभिः अभिहते (इति नि० सं०) ॥

गरिष्ठ भोजनसे प्रतिकूल तथा विरुद्ध भोजनसे सूखे तथा क्लेदित भोजन करनेसे अति मैथुन करनेसे शारीरक श्रम न करनेसे मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे विदाही वस्तु खानेसे ॥१३॥ वातादि दोष पृथक्२होकर तथा कुपित होकर गुल्मके रूपवाले तथा बंबई जैसे ऊपरको उठे हुवे अंतर विद्रधि (भींतर फोडे) पैदा करदेतेहैं ॥ १४ ॥

अंतर विद्रधिके स्थान ।

गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा॥वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्नि वा तथा॥१५॥तेषां लिंगानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः॥ आमपक्वैषणीयेन पक्वापक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥

गुदा बस्तिका मुख नाभि कूख वंक्षण (जंघाकी संधि) तथा वृक्क (गुरदों) प्लीहा (तिल्ली) यकृत् (जिगर) तथा हृदय और क्लोम इन स्थानोंमें प्रायः अंतरविद्रधि होतेहैं ॥ १५ ॥ इनके चिह्न बाह्य विद्रधिके लक्षणोंसे जान लेने चाहियें तथा आप "पक्वैषणीय" अध्यायोक्त लक्षणोंसे पका या बिन पकाहै ऐसा देख लेना चाहिये ॥ १६ ॥

अधिष्ठानविशेषेण लिंगं शृणु विशेषतः॥गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥१७॥ नाभ्यां हिक्का तथाटोपः कुक्षौ मरुतकोपनम्॥कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ ॥ १८ ॥ वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीन्ह्युच्छ्वासावरोधनम्॥सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि शूलश्च दारुणः॥१९॥ श्वासो यकृति तृष्णा च पिपासा क्लोमजेधिका ॥ २० ॥

स्थान विशेष करके विद्रधियोंके विशेष लक्षण सुनो । गुदामें भींतर विद्रधि होतो मुलकर वायु नहीं सरे और वस्तिमें होतो कष्टसे थोडा २ मूत्र उतरे ॥ १७ ॥ नाभिमें अंतर विद्रधि होतो हिचकी आवे और पेट फूल जाय तथा कूखके भींतरको विद्रधि होतो वायुका कोप हो और वंक्षण (नलों) में हो कमर और पीठ अत्यंत जकड जाय ॥ १८ ॥ वृक्क (गुरदों) में फोडा हो तो पँसवाडा सुकड जाय और प्लीहामें होतो रुककर श्वास आवे और हृदयमें हो तो सब शरीर जकड जाय और हृदयमें दारुण शूल हो ॥ १९ ॥ यकृत (जिगर) पर फोडा होतो श्वास और तृषा हो तथा क्लोम स्थानमें हो तो बहुत अधिक प्यास हो ॥ २० ॥

आमो वा यदि वा पक्वो महान्वा यदि चेतरः ॥ सर्वो मर्मोत्थितश्चापि विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥ २१ ॥ नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्द्ध्वं

(श्लो० १५) बस्तिमुखे बस्तौ । वंक्षणं ऊरुमूलाश्रयः (नलेइति लोके) । वृक्कौ मांसपिंडद्वयं पक्वाशय-क्लिन्नः ... दक्षिणपार्श्वे स्थितः इति डल्हनः लोके तु गुरद इति वदति ॥

मितरेत्वधः ॥ जीवत्यधो निस्रुतेषु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ २२ ॥ हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ॥ जीवेत्कदाचित् पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २३ ॥

कच्चा हो चाहे पका हो बडा हो या छोटा सब विद्रधि मर्म स्थानमें हुवा कष्ट साध्य होता है ॥ २१ ॥ नाभिसे ऊपरके विद्रधि पककर ऊपरको गमन करते हैं और अन्य नीचेको गमन करते (झिरते) हैं नीचेको झिरनेवाले नीचेहीको झिरें तो मनुष्य जीवे और जो (नीचेको झिरनेवाले) कदाचित् ऊपरको झिरने लगे तो मनुष्य जीवे नहीं ॥ २२ ॥ हृदय नाभि और वस्तिके सिवायका अंतर विद्रधि बाहरको फूट निकले तो शायद मनुष्य जीवेभी परंतु इतर (हृदय नाभि वस्ति)का अंतर विद्रधि बाहरको फूट निकले तो मनुष्य कदाचित् नहीं जीवे ॥ २३ ॥

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथा हितैः॥ ज्वरदाहकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः ॥ २४ ॥ अपि सम्यक्प्रजातानामसृक्कायादनिःसृतम् ॥ रक्तजं विद्रधिं कुर्यात् कुक्षौ मक्कल्लसंज्ञितम् ॥ सप्ताहान्नो प्रशांतश्चेत्ततो सौ संप्रपच्यते ॥ २५ ॥

जिनके गर्भपात होजाताहै उनके तथा जिनके पूरा बालक होताहै उन स्त्रियोंके कुपथ्य करनेसे ज्वर और दाह करनेवाला घोर रक्तका विद्रधि होजाताहै ॥ २४ ॥ तथा जिन स्त्रियोंके अच्छे प्रकार प्रसूत (बालक) हो लेताहै परंतु शरीरसे रुधिर ठीक २ नहीं निकलता तो उनके कुक्षिमें मक्कल्ल संज्ञिक रक्तका विद्रधि होजाताहै और जो वह मक्कल्ल सात दिनमें शांत नहीं हो तो फिर पकजाताहै ॥ २५ ॥

विशेषमथ वक्ष्यामि स्पष्टं विद्रधिगुल्मयोः ॥ तुल्यदोषसमुत्थानाद्विद्रधे गुल्मकस्य च ॥ २६ ॥ कस्मान्न पच्यते गुल्मो विद्रधिः पाकमेति च॥गुल्माकाराः स्वयं दोषा विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ २७ ॥ विवरानुचरो ग्रंथि रप्सु बुद्बुदको यथा ॥ एवं प्रकारो गुल्मस्तु तस्मात्पाकं न गच्छति ॥ २८ ॥ मांसशोणितबाहुल्यात्पाकं गच्छति विद्रधिः॥ मांसशोणितहीनत्वात् गुल्मः पाकं न गच्छति ॥२९॥ गुल्म स्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ विद्रधिः पच्यते तस्माद्गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ ३० ॥

इसके अगाडी विद्रधि और गुल्मका विशेष स्पष्ट भेद कहतेहैं कि समान दोषोंसे उत्पन्न हुवे विद्रधि और गुल्ममेंसे गुल्म क्यों नहीं पकताहै और विद्रधि क्यों पक जाताहै (इस प्रश्नका उत्तर) यहहै कि गुल्ममें स्वयं वातादि दोषही गुल्मके आकार होजाते हैं और विद्रधि मांस और रुधिरमें होताहै ॥२६॥२७॥ जैसे जलमें बुलबुला वैसे खाली स्थानमें विचरने वाला गुल्म होताहै इसलिये नहीं पकता ॥ २८॥ अथवा मांस और रुधिरकी अधिकतासे विद्रधि पकजाताहै और मांस रक्त करके हीन होनेसे गुल्म नहीं पकता ॥२९॥ गुल्म अपने दोषों (वायु पित्त कफादि) में स्थित रहताहै और विद्रधि मांस और रुधिरमें रहताहै इसलिये विद्रधि पक जाता है और गुल्म नहीं पकता ॥ ३० ॥

हृन्नाभिबस्तिजः पक्वो वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः॥अथ मज्जपरीपाको घोरः समुपजायते ॥ ३१ ॥सोऽस्थिमांसनिरोधेन द्वारं न लभते यदा॥ततः स व्याधिना तेन ज्वलनेनेव दह्यते ॥ ३२ ॥ अस्थिमज्जोष्मणा तेन शीर्यते दह्यमानवत्॥विकारः शल्यभूतोऽयं क्लेशयेदातुरंचिरम् ॥ ३३ ॥ अथास्य कर्मणा व्याधिर्द्वारं तु लभते यदा ॥ ततो मेदःप्रभं स्निग्धं शुक्लं शीतमथो गुरु ॥ ३४ ॥ भिन्नेऽस्थ्नि निस्रवेत्पूयमेतदस्थिगतंविदुः ॥ विद्रधिं शास्त्रकुशलाः सर्वदोषरुजावहम् ॥ ३५ ॥

इति निदाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हृदय नाभि और बस्ति इनका अंतरविद्रधि जो पक जाय वह त्याज्य है तथा सन्निपातका विद्रधि भी वर्ज्य (असाध्य) होताहै। और यदि मज्जामें परिपाक होतो घोर होताहै वह अस्थि और मांसके अवरोधसे द्वार यदि न पावे तो पीडासे अग्निके समान जला करताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर वह अस्थि और मज्जाकी गरमीसे जले हुवे (अग्निदग्ध) की तरह खिल जाताहै मज्जागत शल्यभूत यह विकार रोगीको बहुत क्लेश देताहै (बहुत दिन दुःख देताहै) ॥ ३३ ॥ और जो कर्म (शस्त्र कर्म) करके व्याधिद्वारभी पावे तो उसमेंसे मेद (चरबी) जैसा चिकना सुपेद शीतल और भारी (राध) निकलताहै ॥ ३४ ॥ अस्थिके भेदन होनेपर जिससे पूय निकले उसे अस्थिगत विद्रधि शास्त्रकुशल वैद्य जानें यह सब दोषों और सब प्रकारकी पीडाओंका करने वाला होताहै ॥ ३५ ॥

विद्रधि (फोडा) को डाक्टरीमें एनसस या वाइलस कहतेहैं और यूनानीवाले दमीले कहतेहैं ॥

इति सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातो विसर्पनाडीस्तनरोगनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इससे अगाड़ी विसर्पनाडीस्तनरोग इनके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

विसर्पकी संप्राप्ति ।

त्वङ्मांसशोणितगताः कुपितास्तु दोषाः सर्वांगसारिणमिहास्थितमात्मलिंगम्॥ कुर्वंति यं विसृतमुन्नतमाशुशोफं तं सर्वतो विसरणाच्च विसर्पमाहुः ॥ १ ॥

त्वचा मांस और रुधिरमें प्राप्त हुवे कुपित वातादि दोष समस्त शरीरमें फैलने वाला एक जगह स्थित न होनेवाला वातादिके लक्षणोंवाला विस्तारयुक्त कुछ २ ऊपरको उठा हुवा ऐसा शोथ उत्पन्न करते हैं जिसे सारे शरीरमें फैलनेसे विसर्प कहते हैं ॥ १ ॥

विसर्पके लक्षण ।

वातात्मकोऽसितमृदुः परुषोंगमर्दसंभेदतोदपवनज्वरलिंगयुक्तः॥ गंडैर्यदा तु विषमैरतिदूषितत्वाद्युक्तः स एव कथितः खलु वर्जनीयः ॥ २ ॥ पित्तात्मको द्रुतगतिर्ज्वरदाहपाकस्फोटप्रभेदबहुलः क्षतजप्रकाशः॥ दोषप्रवृद्धिहतमांसशिरायदार्स्यात्स्रोतोजकर्दमनिभो न तदा स सिध्येत् ॥ ३ ॥

वायुका विसर्प काला पतला खरधरा होता है अँगडाई बहुत आती हैं भेदनकेसी पीडा और दर्द होता है तथा वातज्वरकेसे चिह्न होते हैं और जिसमें दग्धकेसे गंडे विषम पड़जांय ऐसे दूषित होनेसे वह विसर्प (वात विसर्प) त्यागने योग्य (असाध्य) होता है ॥ २ ॥ पित्तका विसर्प शीघ्र फैलनेवाला होता है और उसमें ज्वर दाह होता हैं और पक जाता है तथा फुनसियोंमें विदीर्णता अधिक होती है तथा क्षतज घावकासा रूप होता है और जिसमें दोषोंकी वृद्धिता और मांस और रगोंका नाश हो जाय तथा अंजनकी कीचड़के समान जो हो जाय वह सिद्ध नहीं होता (वह पित्तविसर्प असाध्य है) ॥ ३ ॥

श्लेष्मात्मकः सरति मंदमशीघ्रपाकः स्निग्धःसितक्षवथुरल्पगुरुप्रकंडूः। स

(श्लो० २) गंडैः आग्निसदृशैः स्फोटैः अतिदूषितत्वात् द्वाभ्यां वातपित्ताभ्याम् दूषितत्वात् अथवा अतिवातेनैवदूषितत्वात् (नि०स०)॥

(श्लो० ३) स्रोतोजकर्दमनिभः अंजनसदृशकर्दमद्रवतुल्यः (इतिडल्हनः)

वर्त्मिकस्त्रिविधवर्णरुजोवगाढः पक्वो न सिध्यति च मांसशिराप्रणाशात् ॥ ४ ॥ सद्यः क्षतव्रणमुपेत्य नरस्य पित्तं रक्तं च दोषबहुलस्य करोति शोफम् ॥ श्यावं सलोहितमतिज्वरदाहपाकं स्फोटैः कुलत्थसदृशैरसितैश्चकीर्णम् ॥ ५ ॥

कफका विसर्प मंद गतिसे फैलता है बहुत दिनमें पकताहै चिकना सुपेद शोथका रंग होताहै और थोड़ा मोटा होताहै तथा अधिक खाज होतीहै । और संन्निपातका विसर्प तीनों भांतिके रंग और खेदोंवाला होताहै और अवगाढ (जड़वाला) होताहै यह पके पीछे सिद्ध नहीं होता क्योंकि मांस और रगोंको नाश कर देताहै ॥ ४ ॥ पाँचवां क्षतज (चोट लगेमें) विसर्प होजाताहै वह इस भांति कि सद्यः घावमें पित्त और रक्त अतिदोषयुक्त मनुष्यके कुपित होजातेहैं और चोटके घावमें ऊदा लाल शोथ उत्पन्न करतेहैं अत्यंत ज्वर और दाह पैदा होजाताहै घाव पक जाताहै तथा घावके आसपास कुलथी जैसी काली काली फुनसियां बहुतसी होजाती हैं ॥ ५ ॥

सिध्यंति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षतकृतश्च नसिद्धिमेति पैत्तानिलावपिचदर्शितपूर्वलिंगौ सर्वे च मर्मसु भवंति हि कृच्छ्रसाध्याः ६

वायु और कफ तथा अकेले पित्तके विसर्प सिद्ध होजाते हैं परंच सन्निपातका क्षतज (घावका) विसर्प ये सिद्ध नहीं होते तथा केवल पित्तका और वायुकाभी जो पहले असाध्य कह दियेवे सिद्ध नहीं होते (जैसे वातविसर्प दग्धकेसे गंडोवाला और पित्तका मांसशिरा नष्ट करने वाला कज्जलकी कीचसा ये पहलेही असाध्य कहदिये तथा मर्म स्थानोंमें हुवे सभी प्रकारके विसर्प कष्टसाध्यहैं ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) इस विसर्प रोग और कुष्ठांतर्गत विसर्पका भेद कुष्ठाध्यायगत विसर्पकी टिप्पणीमें देखो ॥

विसर्पको डाक्टरीमें एरीसिफालिस कहतेहैं और यूनानीमें सुरखवादा कहतेहैं ॥

अथनाडी ।

शोफं न पक्वमिति पक्वमुपेक्षते यो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । अभ्यंतरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥ ७ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरित्यतश्च नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ८ ॥

जो फोडेका शोथ बहुत दिनतक पकेही नहीं और कच्चा विदीर्ण करदे अथवा बहुत दिनतक पके पीछेभी नहीं फूटे (और उसे चीराभी लगाकर न निकाले) अथवा अत्यंत राधवाले कुटिल व्रणमें कुपथ्य करे तो वह पीवसहित घाव पूर्वोक्त (त्वचादि) स्थानोंको विदीर्ण करके भीतरको प्रवेश होजाताहै ॥ ७ ॥ वह व्रण अत्यंत बहनेसे और इधर उधर उसकी गति होकर नाडी (नाली) की तरह बहता रहताहै इससे इसे नाडी (नाडी व्रण अर्थात् नासूर) कहतेहैं यह नाडी ८ प्रकारकी होतीहै तीनों पृथक् २ दोषोंसे जैसे १ वायुसे २ पित्तसे ३ कफसे और संमूर्छित (अर्थात् दो दो दोषोंसे) ४ वात पित्त ५ पित्त कफ ६ कफ वातसे और ७ सन्निपातसे ८ शल्यसे ॥ ८ ॥

नाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपायाम् ।
तृट्तापतोदसदनज्वरभेदहेतु पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु पित्तात् ॥ ९ ॥
ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छलास्रा रात्रिश्रुतिस्तिमितरुक्कठिना सकंडूः ।
दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १० ॥

उनमें वायुकी नाडी खरधरी छोटे मुहवाली शूल युक्तहोतीहै झागसे मिला मल विशेष रात्रिको स्रवताहै ।पित्तकी नाडी तृषा ताप (जलन) दर्द सदन (ग्लानि) ज्वर और भेदन इनका हेतु होतीहै और पीला गरम मल दिनको अधिक स्रवताहै ॥९॥ कफकी नाडीसे बहुत गाढा अर्जुन (सुपेद) मैला मल रात्रमें अधिक स्रवताहै तथा धीमी २ पीडा होती कठिनता और खाज होतीहै । और जिनमें दो दोषोंके लक्षण हों वे द्वंद्वज नाडी जाननी । ये गति व्यतिकर(भेद)से द्वंद्वजभी तीन प्रकारसे होतीहै १ वात पित्त २ वातकफ ३ कफ पित्त ॥ १० ॥

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवंत्यभिहितानि च लक्षणानि ।
तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ११

(श्लो० ८) संमूर्च्छितैः मिश्रीकृतैर्द्वंद्वैरित्यर्थः इतिडल्हणाचार्योऽष्टविधांनाडीं वदन्ति गयदासाचार्यस्तु पञ्चैवनाड्य इतिव्याख्यानयति यथा त्रिभिर्दोषैः पृथक् तिस्र एकशश्च संमूर्छितैः सांनिपातिकीति अन्या शल्यनिमित्ताच्च इति

(श्लो० १०) व्यतिकरोभेदः ॥

(श्लो० ११) घोरामसुक्षयकरी इत्यत्र घोरां दारुणां असुक्षयकरीं प्राणघातिनीं अथवा घोरामसुखकरीं अरतिकारिणीम् ॥

नेष्टं कथंचिदणुमात्रमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलमथितमच्छमसृग्विमिश्रमुष्णं करोति सहसा सरुजा च पित्तम् ॥ १२ ॥

सन्निपातकी नाडीमें दाह ज्वर श्वास और मूर्च्छा तथा मुँहमें शुष्कता ये लक्षण होतेहैं काल रात्रीकी भांति प्राण हरनेवाली दारुण दुःख देनेवाली होतीहै। इसे वायु पित्त और कफ त्रिदोषके कोपसे जानो ॥ ११ ॥ उदीरित जो त्वचा आदि स्थान उनमें कदाचित् अणुमात्रभी शल्य (कांटा लोहा पत्थर शिला आदि) (रहजाय) तौ शीघ्रही व्रण गति उत्पन्न करताहै और उसमेंसे फेनयुक्त मथितसा स्वच्छ रुधिरसे मिला हुवा गरम मल तथा पित्त कष्टके साथ निकलताहै ॥ १२ ॥

स्तनरोग ।

यावत्यो गतयो यैश्च कारणैः संभवंति हि । तावतस्तनरोगाः स्युःस्त्रीणां तैरेव हेतुभिः ॥ १३ ॥ धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रिताः।दोषाविसरणात्तासां न भवंति स्तनामयाः ॥ १४ ॥ तासामेव प्रजातानां गर्भिणीनां तु ताः पुनः।स्वभावादेव विवृता जायंते संभवत्यतः ॥ १५॥

जितने हेतुवोंसे जितनी गति होतीहैं (अर्थात् वायु पित्त कफ सन्निपात अभिघातसे) उतनेही (५) प्रकारके स्तनरोग स्त्रियोंको उन्हीं उन्हीं कारणोंसे होतेहैं ॥ १३ ॥ कन्या (लडकियों)के स्तनकी नाडियोंके द्वार खुले नहीं होते(बंध होतेहैं) तथा उनमें दोषोंका वितरण नहीं होता इससे छोटी लडकियोंके स्तन (चूचियोंको) रोग नहीं होते ॥ १४ ॥ और जब स्त्री युवा होतीहैं तब गर्भवती होनेकी दशामें अथवा प्रसूता होनेकी दशामें वे स्तनकी नाडियोंके द्वार स्वभावहीसे खुले होतेहैं इस हेतु तब स्तनके रोगभी होतेहैं ॥ १५ ॥

रसप्रसादो मधुरः पक्काहारनिमित्तजः।कृत्स्नदेहात्समायातः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ १६ ॥ विशस्तेष्वपि देहेषु यथा शुक्रं न दृश्यते।सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ १७ ॥ तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात् स्मरणादपि। शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्चप्रवर्तते ॥ १८ ॥ सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्ष-

(श्लो० १२) कालमित्यध्याहारः ॥

(श्लो० १३) यैरेव वातपित्तकफसन्निपाताभिघातैः कारणैस्तैरेव हेतुभिःस्तनरोगाःस्युः ॥

(श्लो० १७) विशस्तेषु मारितेषु विशस्तः नाशिते मारिते (इति शब्दस्तोम) विशस्तेषु इत्यत्रकेचित् विसृतेषु इति पाठं पठंति विसृतेषु विस्तीर्णेषु ॥

णे हेतुरुच्यते । आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ १९ ॥
तदेवापत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि । ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्त्तते । स्नेहो निरंतरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

आहारके परिपाकसे उत्पन्न हुवा जो शुद्ध और मधुर रस उस समस्त शरीर व्यापी रसका सार शरीरसे स्तनों (चूचियों)में जब प्राप्त होता है तब (वह श्वेत भावको प्राप्त हुवा) दुग्ध कहलाता है ॥ १६ ॥ विशस्त अर्थात् मृतशरीरसे जैसे शुक्र नहीं दीखता है(मरे शरीरकी लाशको चीरकर देखें तो कहींभी शुक्र नहीं पाया जाता है इसी प्रकार मृतशरीरके चीरनेसे दुग्धभी किसी एक जगहस्तन आदिमें नहीं पाया जाता) इसीसे दुग्धभी समस्त शरीरके आश्रय होनेसे शुक्रके लक्षणवाला (शुक्रकी भांति) कहा जाता है अथवा कई विशस्तकी जगह विसृत ऐसा पाठांतर मानते हैं कि जैसे सर्वत्र फैले हुवे शरीरमें जैसे शुक्र नहीं दीखता वैसेही दुग्धभी इत्यादि परंतु पहिला अर्थ ठीक है ॥ १७ ॥ वह सर्व शरीरवर्ती शुक्र प्यारी स्त्रीके दर्शनसे ध्यानसे शब्द सुननेसे स्पर्शसे हर्षित होकर प्रवर्त होता है (शुक्रधरा कलामें आता है) ॥ १८ ॥ हर्षित होनेमें प्रसन्नमनही कारण होता है (जैसे अभीष्ट स्त्रीके दर्शन स्पर्शादिसे पुरुषके सब शरीरसे निचुडकर शुक्र शुक्रधरा कलामें प्राप्त होता है तब पुरुषको चैतन्यता मेढ्रमें स्थूलता और कठोरता आजाती है ऐसेही आहारके रससे उत्पन्न होनेवाला होनेसे स्त्रियोंका दुग्धभी सब शरीरसे निचुड २ कर स्तनोंमें आता है (तब स्तन स्थूल और भारी हो जाते हैं) ॥ १९ ॥ वह (स्त्रियोंका दुग्ध) संतानके स्पर्शसे दर्शनसे स्मरणसे शरीरके ग्रहणसे शुक्रकी भांति (जैसे शुक्र वीर्यधरा कलामें आ जाता है वैसे) स्तनोंमें दुग्ध आजाता है और निरंतर अधिक जो स्नेह है वही इसके झिरने टपकने या निकलनेका कारण होता है२०

दूषित स्तन्यके लक्षण ।

तत्कषायं भवेद्वातात् क्षिप्तं च प्लवतेम्भसि ॥ पित्तादम्लं च कटुकं राज्यो म्भसि च पीतिकाः ॥ २१ ॥ कफाद्घनं पिच्छलं च जले वाप्यवसीदति । सर्वैर्दुष्टैः सर्वलिंगमभिघाताच्च दुष्यति ॥ २२ ॥

जो स्त्रीका दुग्ध कसेला हो और पानीमें बूंद डालनेसे ऊपरही तिरता फिरे उसे वायुसे दूषित जानो तथा जो स्वादमे अम्लता लिये हो या चरपरा कुछहो और जलमें डालनेसे पीली लहरेंसी दीखें तो उस दुग्धको पित्त दूषित जानो ॥ २१ ॥ कफसे दूषित दुग्ध भारी और गाढा होता है तथा जलमें बूंद डालनेसे डूब जाताहै

और जिसमें सब लक्षण हो तीनों दोषोंसे दूषित होता है और अभिघात चोट लगने मर्दन करने आदिसेभी दुग्ध दूषित होजाताहै ॥ २२ ॥

शुद्ध स्तन्यके लक्षण ।

यत्क्षीरमुदके क्षिप्तमेकीभवति पांडुरम् ॥ मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥

जो दुग्ध जलमें डालनेसे एक जगह हो और कुछ २ पीलापनहो तथा स्वादमें मीठा हो और दूषित वर्णवाला(नीला पीला गुलाबी आदि)नहो उसे निर्दोष जानो२३

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः॥ रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ २४ ॥ पंचानामपि तेषां तु हित्वा शोणितविद्रधिम् ॥ लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २५ ॥

इति निदाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

दुग्धयुक्त या विना दुग्धके स्त्रीके स्तनोंमें जब वातादि कोई दोष प्राप्त हो तब रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तन रोगका कारण होजाताहै ॥ २४ ॥ रक्तकी विद्रधिको छोडकर उन पांचोंके लक्षण बाह्य विद्रधिके लक्षणोंके तुल्य होतेहैं ॥ २५॥

और नाडी व्रणको यूनानीमें कुरह या नासूर कहतेहैं और डाक्टरीमें सेनसयाक्रानिक अलसर कहतेहैं ॥ २५॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां निदानस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगंडानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी ग्रंथी अपची अर्बुद और गलगंड इन रोगोंके निदानका व्याख्यान करते हैं ॥

ग्रंथिनिदान ।

वातादयो मांसमसृक् प्रदुष्टा संदूष्य मेदश्च कफानुविद्धम् ॥ वृतोन्नतं विग्रथितं तु शोफं कुर्वत्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

दुष्ट हुवे वातादिक दोष मांसको तथा रुधिरको और कफसे मिश्रित मेदको दूषित करके फैला हुवा तथा ऊँचा और गांठके तुल्य शोथ (ऊंचाई) पैदा कर देते हैं इससे इसे ग्रंथिरोग (गांठे) कहते हैं ॥ १ ॥

(श्लो० १) कफानुविद्धं कफसंसृष्टं । सकारादस्थिरार्थमिर्ग्राह्यः (इति डल्हनमतम्) ॥

आयम्यते व्यथ्यत एति तोदं प्रत्यस्यते कृत्यत एति भेदं॥ कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ २ ॥ दंदह्यते धूप्यति चातिमात्रं पापच्यते प्रज्वलतीव चापि॥ रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ३ ॥ शीतो विवर्णोल्परुजोऽतिकंडुः पाषाणवत्संहननोपपन्नः॥ चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपा भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

जो ग्रंथि (गांठ) फूले व्यथितसी हो जिसमें चीस हो तथा चमचमाट हो विदीर्णसी होती हो फटीसी जाती हो सांवला रंग हो कर्कश हो मशकसी फली हो और टूटनेपर (या नशतरसे चीरनेपर) स्वच्छ सुरख रुधिर निकले वह वातग्रंथि है ॥२॥ जिसमें दाह हो संताप अधिक हो पकाईसी जाती हो अति प्रज्वलितसी (गरम) हो और लाल पीला रंग हो टूटे जब गरम और अधिक रक्त निकले वह पित्तग्रंथि है॥ ॥ ३ ॥ जो छूनेमें शीतल हो जिसका अन्यथा वर्ण न हो (त्वचाके रंग हो) जिसमें स्वल्प पीडा हो खाज अधिक चले और पत्थर जैसी करडी हो मलने दबानेसे चैन मालूम हो बहुत समयमें बढे और टूटनेपर सुपेद गाढी राध निकले वह कफकी ग्रंथि है ॥ ४ ॥

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महानल्परुजोऽतिकंडुः ॥ मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ ५ ॥ व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुर्हि शिराप्रतानम् ॥ संपीड्य संकोच्य विशोष्य वापि ग्रंथिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ ६ ॥

जो ग्रंथि शरीरकी वृद्धि और क्षयके अनुसार बढतीघटती रहै बहुत स्निग्ध हो जिसमें पीडा अल्पहो खाज अधिक हो और जिसको अधिक भेदन करनेसे तिलकी पिट्ठी घृत इनके समान मेद सा निकले तो वह मेदकी ग्रंथि है ॥ ५ ॥ दुर्बल मनुष्य अति व्यायाम (परिश्रम) करै तब उन्ही व्यायामोंसे कुपित वायु नसोंके जालको

(श्लो० २) आयम्यते वायोराकर्षणेन दीर्घइवक्रियते । प्रत्यस्यते कुप्यते ॥

(श्लो० ३) अतिमात्रं धूप्यति अतिशयेन संतापं करोति (इति डल्हनः) ॥

(श्लो० ४) पाषाणवत् कठिन इति शेषः । संहननोपपन्नः संहननायोपपन्नः पीडनप्रियः इत्यर्थः ॥

(श्लो० ६) वृद्धवाग्भटे तु विशेषः आस्थिग्रंथिः व्रणग्रंथिश्च यथा अस्थिभंगाभिघाताभ्यामुन्नतावनतं तु यत् । सोऽस्थिग्रंथिरिति।व्रणग्रंथिर्यथा आरूढे रूढमात्रे वा व्रणे सर्वरसाशिनः।सार्द्रे वा बंधरहिते गात्रेऽश्माभिहतेऽथवा।वातोऽसृक्स्नुतं दुष्टं संशोष्य ग्रथितं व्रणं कुर्यात्सदाहः कंडूमान् व्रणग्रंथिरयं स्मृतः (इति वृद्धवाग्भटः) ॥

इकट्ठा करके अथवा दबाकर या सकोडकर या शोषित करके ऊंची फैली हुई ग्रंथि शीघ्र उत्पन्न करतीहै (वह शिरा अर्थात् नसोंकी ग्रंथिहैं) ॥ ६ ॥

ग्रंथिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥ अरुक् स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ ७ ॥

वह शिराकी ग्रंथि (नसोंकी गांठ) यदि पीडा युक्त हो (कुछ दूखती हो) तथा सरकती हो तो कष्टसाध्य होतीहै और यदि उसमें कुछभी दर्द न हो और स्थिरहो बडी हो तथा मर्मस्थानमें हो तो वर्जित (असाध्य) ग्रंथिहै ॥ ७ ॥

अपची निदानम् ।

हन्वस्थिकक्षाक्षकबाहुसंधि मन्यागलेषूपचितं तु मेदः ॥ ग्रंथिं स्थिरं वृत्त मथायतं वा स्निग्धं कफश्चाल्परुजं करोति ॥ ८ ॥ तं ग्रंथिभिश्चामलकास्थिमात्रैर्मत्स्यांडजालप्रतिमैस्तथान्यैः ॥ अनन्यवर्णैरुपचीयमानं चयप्रकर्षादपचीं वदंति ॥ ९ ॥

ठोढीके अस्थि कास नेत्रके कोये भुजाकी संधि कनपटी और गला इन स्थानोंमें मेद और कफ (दूषित हो) स्थिर गोल चौडी फैली चिकनी अल्प पीडावाली ग्रंथि उत्पन्न करतेहैं ॥ ८ ॥ आमलेकी गुठली जैसी गांठों करके तथा मछलीके अंडोंके जाल जैसी त्वचाके वर्णकी अन्य गांठों करके उपचीयमान (संचित) होतीहै इससे चय (संचय) की उत्कर्षतासे इसे अपची कहतेहैं ॥ ९ ॥

कंडूयुतास्तेल्परुजः प्रभिन्नाः स्रवंति नश्यंति भवंति चान्ये ॥ मेदःकफाभ्यां खलु रोग एषः सुदुस्तरो वर्षगणानुबंधः ॥ १० ॥

यह अपची रोग खाजयुक्त होताहै और अल्प पीडा होतीहै इनमेंसे कोई तो फूटकर बहने लगजातेहैं और कोई स्वयं नाश होजातेहैं यह रोग मेद और कफसे होताहै यदि यह कई वर्षोंका होजाय तो नहीं जाता ॥ १० ॥

अर्बुद ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छितो मांसमभिप्रदूष्य ॥ वृत्तं स्थिरं मंदरुजंमहांतमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥ कुर्वंति मांसोपचयं च शोफं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदंति ॥ ११ ॥

(श्लो० १०) वर्षगणानुबंधः सुदुस्तरः इति बहुवर्षानुबंधोदुस्साध्यः ॥

(श्लो० ११) संमूर्च्छिताः मिलिताः । महांतंग्रंथेः सकाशादीर्घं । (इति भावमिश्रः) ॥

शरीरके किसी प्रदेशमें मूर्च्छित हुवे वातादि दोष मांसको दूषित करके गोल स्थिर अल्प पीडा वाले बडे और फैली जड वाले तथा बहुत दिनमें कुछ २ बधने वाले जो पककर फूटे नहीं ऐसे मांसके पिंडसे तथा शोथ उत्पन्न करतेहैं उन्हे शास्त्रज्ञ अर्बुद (अर्थात् रसोली कहतेहैं ॥ ११ ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा वा ॥ तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेः समानानि सदा भवंति ॥ १२ ॥

वायुसे पित्तसे रुधिरसे कफसे तथा मांससे अथवा मेदसे यह जो अर्बुद रोग होता है उसके लक्षण सदैव ग्रंथिके समान होतेहैं ॥ १२ ॥

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरास्तु संपीड्य संकोच्य गतं [illegible]पाकम्॥सास्रावमुन्नह्यति मांसपिंडं मांसांकुरै राचितमांसवृद्धिम् ॥ १३ ॥ स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं स्यात् ॥ रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ १४ ॥

दूषित हुवा (पित्त) दोष रुधिर और शिराओंको पीडित करके तथा संकुचित करके जब कभी पाकको प्राप्तहो तब स्रावयुक्त मांसपिंडको तथा मांसोंके अंकुर युक्त मांस वृद्धिको उत्पन्न करता है॥१३॥उससे दूषित हुवा रुधिर बहुत निकलताहै इससे यह रक्तार्बुद असाध्य कहलाताहै क्योंकि इसमें रक्तके क्षयके उपद्रवोंसे पीडित होनेके कारण रक्तार्बुद रोगवाला पीला पडजाताहै(या उसे पांडु रोग होजाताहै)॥१४॥

मांसार्बुद ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेंगे मांसं प्रदुष्टं प्रकरोति शोफम्॥अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ १५ ॥ प्रदुष्टमांसस्य नरस्य बाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमान्युपवर्जयेत्तु॥ १६ ॥ संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम्॥यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥ यद्द्वंद्वजातंयुगपत्प्रकामाद्द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ १७ ॥

(श्लो० १२) ग्रंथेः समानानि वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानामर्बुदानां लक्षणानि भवंतीति ॥

(श्लो १३ । १४) दोषोऽत्रपित्तम । उन्नह्यतिउद्गतं करोति । गतस्तुपाकं इत्यत्र ततस्त्वपाकमिति वापाठः अपाकंयथास्यात्तथा कोर्थः पूयमभूत्वा अजस्रंरुधिरमेवस्रवति ॥

(श्लो० १५) मुष्टिप्रहारादिभिरित्यत्र आदिशब्देन अन्योपिहेतुर्बोद्धव्यः ॥

(श्लो० १६) बाढंअतिशयेनेति (वस्तो) । मांसपरायणस्य मांसभक्षणशीलस्य (इति डल्हनः) अस्यचतुर्थ पदं अग्रिमेनार्द्धश्लोकेनान्वितव्यम ॥

पीडित शरीरमें मुष्टि काष्ठादिके प्रहार आदिसे दूषित हुवा मांस ऐसे शोथको पैदा करता हैं जिसमें वेदना नरहै स्निग्ध हो त्वचाके वर्णकाही हो पककर फूटे नहीं करडा पत्थर साहो तथा चलायमान नहीं हो (उसे मांसार्बुद कहते हैं) (यहां आदि शब्दके कथनसे प्रहारके सिवाय दब जाने कुचला जाने इत्यादि कारणों तथा अन्य कारणोंसेभी मांसार्बुद हो सकता है) ॥ १५ ॥ प्रायःमांसार्बुद मांसभोजी मनुष्योंके जब मांस दूषित होता हैं तब विशेष करके होता है । और यह मांसार्बुद असाध्य कहा है तथा साध्य अर्बुदों बातादिके अर्बुदों मेसेभी आगे कहे हुवे अर्बुदोंको (असाध्य जानके) त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥ जो सदा झिरता हों अथवा जो मर्म स्थानोंमें हो अथवा जो स्रोत अर्थात् द्वारोंमें हो तथा चलायमान न हो और जो पहले अर्बुद हो उसीके समीप और अन्य अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसे वैद्य अध्यर्बुद कहते हैं अथवा दो दोषोंसे एकही वार पास पास दो अर्बुद पैदा हों तो वे द्विरर्बुद होते हैं और येभी असाध्य हैं ॥ १७ ॥

न पाकमायांति कफाधिकत्वान्मेदोधिकत्वाच्च विशेषतस्तु॥ दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्चतेषां सर्वार्बुदान्येवं निसर्गतस्तु ॥ १८ ॥

ये अर्बुद इस हेतुसे पाकको प्राप्त नहीं होते कि इनमें ग्रंथिकी अपेक्षा कफका भाग बहुत अधिक होता है और विशेष करके मेदका भाग तो बहुतही अधिक होता है तथा दोषकी स्थिरता हो जाती हैं और गांठसी बध जाती है जिससे स्वभावहीसे सब अर्बुद प्रायः नहीं पकते ॥ १८ ॥

गलगंड ।

वातः कफश्चैव गले प्रवृद्धो मन्येतु संसृत्य तथैव मेदः ॥ कुर्वन्ति गंडं क्रमशः स्वलिंगैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ १९ ॥ तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः कृष्णोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ॥मेदोन्वितश्चोपचितश्च कालाद्विवर्धप्रदिग्धे च गले रुजश्च ॥ २० ॥

वायु और कफ वर्द्धित होकर गल (की त्वचादि) में स्थित होकर तथा मेदमें स्थित होकर अपने अपने लक्षणों सहित यथाक्रम गंड अर्थात् फोडा पैदा करें तो उसको गलगंड रोग कहतेहैं ॥ १९ ॥

(श्लो० १८) निसर्गतः स्वभावत एवेति ॥

(श्लो० १९) गंडः स्फोटकः । स्वलिंगैर्वातादिलक्षणैः समन्वितम् ॥

(श्लो०,२०) प्रदिग्धे पंकयुक्तेलिप्ते दिग्धः लिप्तः (इति वाचस्पतिः)॥

(वातगलगंडके लक्षण)

जो गलगंड पीडायुक्त काली नसोंसे पूरित हो रंग काला अथवा रक्त हो वह वायुका गलगंड होताहै और इसमें देरसे मेदका संचय होताहै गलके लिप्त होनेपर पीडा होतीहै ॥ २० ॥

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ वैरस्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ २१ ॥

कठोरतायुक्त हो बहुत दिनमें बढे और पककर फूटे नहीं तथा कदाचित् अपनी इच्छासे पक (फूट) भी जाय और उस मनुष्यके मुँहमें विरसता हो तथा तालु और गलेमें खुश्की हो (तो वायुका गलगंड हो) ॥ २१ ॥

स्थिरः सवर्णोल्परुगुग्रकंडूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ चिराभिवृद्धिं कुरुते चिराद्वा प्रपच्यते मंदरुजं कदाचित् ॥ माधुर्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ २२ ॥

कफके गलगंडके लक्षण ।

जो स्थिरहो पके वर्णका हो जिसमें थोडी पीडा हो खाज अधिक हो (स्पर्शमें) शीतलहो स्थूलहो बहुत दिनोंमे बढे और बहुतही दिनोंमे पकेभी और मंद २ पीडा हो और उस मनुष्यके मुखमें मीठापनहो तथा तालु और गलमें लेपसा हो तो कफकी गलगंडहै ॥ २२ ॥

स्निग्धो मृदुः पांडुरनिष्टगंधः मेदःकृतो नीरुगथातिकंडुः॥ प्रलंबते लाबुरिवाल्पमूलो देहानुरूपाक्षयवृद्धियुक्तः ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जंतोर्गलेन शब्दं कुरुतेच नित्यम् ॥ २३ ॥

(मेदोज गलगंडके लक्षण)

जो चिकनी हो पीला रंगहो जिसमें बुरी बास आवे पीडा नहीं हो खाज विशेषहो और जो घीया तोंबीके तुल्य लटके और जडमेंसे कुछ पतलाहो तथा शरीरकी वृद्धि और क्षयके अनुसार छोटा बडाहो और उस मनुष्यका मुँह चिकना हो तथा नित्य गलेसे शब्द करे तो उसे मेदकी प्रधानताका गलगंड जानो ॥ २३॥

गलगंडकी असाध्यता ।

कृच्छ्रात् श्वसंतं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ क्षीणं तु वै यो गलगंडिनं तं भिन्नस्वरं चैव विवर्जयेत्तु ॥ २४ ॥

(श्लो० २२) ननु कथं वातगलगंडानंतरं श्लेष्मगलगंडलक्षणमुक्तं कथं न पैत्तिकगलगंडस्य तत्राह वक्ष्यन् वातेन–कफेन–च गलगंडोभवति न च पित्तेन स्वभावेन पित्तजस्य गलगंडाभावः ॥

जो गलगंडका रोगी मनुष्य कष्टसे श्वास लेवे और सब गात्र कोमल होजाय तथा वर्षसे अधिकका गलगंडहो अरुचिहो क्षीण होजाय तथा जिसका स्वरभंग होजाय ऐसे गलगंडके रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ २४ ॥

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥ महान्वा यदि वा ह्रस्वस्तं गंडमिति निर्दिशेत् ॥ २५ ॥

इतिनिदाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

नियमित जिसके गलेमें शोथ हो और वृषणकी तरह गलेमे लटके बड़ा हो या छोटाहो वही गलगंड कहलाता है ॥ २५ ॥

परिशिष्ट (गंडमालाके लक्षण)

कर्कंधुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ॥ मेदःकफाभ्यां चिरमंदपाकैः स्याद्गंडमाला बहुभिश्च गंडैः ॥ १ ॥

छोटे बेर या बडे बेर तथा आँवलेके प्रमाण कांखसे खोदे और गलेके पीछेकी मोटी नसों तथा गलेके वंक्षण अर्थात हाथोंकी संधि (हँसलीके नीचे) तक जिसमें मेद कफसे उत्पन्न हुवे बहुत दिनोंमें मंद मंद पकने वाले ऐसे बहुतसे गंड मलगंड होजांय तो उन्हे गंडमाला कहते हैं ॥ १ ॥ भा०प्र०

गंडमालाको डाक्तरीमें इस्काफ्यूला कहते हैं और यूनानी हकीम अर्बुदको सलआ कहतेहैं और ग्रंथिको अकद कहते हैं और गलगंडकोभी इसीके भेद कहतेहैं॥

इति सुश्रुतटीकायां निदानस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो वृद्ध्युपदंशश्लीपदानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी वृद्धि (अंडवृद्धि) उपदंश श्लीपद इन रोगोंके निदानकी व्याख्या करतेहैं ॥

अंडवृद्धिः ।

वातपित्तश्लेष्मशोणितमेदोमूत्रांत्रनिमित्ताः सप्तवृद्धयः । तासां मूत्रांत्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः ॥ १ ॥ अधः प्रकुपि

(गद्य १) वृद्धिः अंडवृद्धिः । मूत्रांत्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतु रन्यतमः अस्यस्पष्टोर्थः मूत्रनिमित्तावृद्धिः अंत्रनिमित्तावृद्धिश्च द्वेवातसमुद्भवे एवकेवलं उत्पत्तिहेतुरन्यः यथामूत्रवृद्धे उत्पत्तिहेतुर्मूत्रं अंत्रवृद्धेरंत्र[illegible] [illegible] निमित्तं तु वायुरेव केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतमः यथा मूत्रवृद्धेरुत्पत्तिहेतु मूत्रसंधारणं अंत्रवृद्धेः [illegible] इति ॥

तोऽन्यतमो हि दोषः फलकोशवाहिनीरभिप्रपद्य धमनीः फलकोशयोर्वृद्धिं जनयति तां वृद्धिमित्याचक्षते ॥ २ ॥

वायु पित्त कफ रुधिर मेद मूत्र तथा अंत्र (अँतडी) इन कारणोंसे वृद्धि (अंड वृद्धि) रोग सात प्रकारका होताहै। इनमेंसे मूत्रज और अंत्रज वृद्धिका निमित्तभी वायुहीसे उत्पन्न होताहै केवल उत्पत्तिका हेतुमात्र और होताहै) अर्थात् मूत्र तथा अंत्रा अथवा मूत्रसंधारण मूत्रज वृद्धिका अन्य हेतु और भार हरण (बोझ उठाना) अंत्रज वृद्धिका अन्य हेतु होजाताहै ॥१॥ नीचे बस्तिस्थानमें कुपित हुवा कोईसा (वातादि) दोष अंडकोश वाहिनी धमनीमें प्राप्त होकर अंडकोशोंमें वृद्धि उत्पन्न करदेताहै उसे वृद्धि रोग कहतेहैं ॥ २ ॥

वृद्धिकापूर्वरूप ।

तासां भविष्यतीनां पूर्वरूपाणिबस्तिकटीमुष्कमेढ्रेषु वेदना मारुतनिग्रहः फलकोशयोः शोफश्चेति ॥ ३ ॥

अंड वृद्धि होनेवाली होतीहै तब उसके पूर्वरूप ये होतेहैं बस्ति कमर वृषण लिंग इनमें पीडाहो अधोवायुका निरोधहो तथा अंड कोशमें सूजन होनेलगे ॥ ३ ॥

तत्रानिलपरिपूर्णां बस्तिमिवाततां परुषामनिमित्तानिलरुजं वातवृद्धिमाचक्षते । पक्वोदुंबरसंकाशां ज्वरदाहोष्मवतीं चाशुसमुत्थानपाकां पित्तवृद्धिम् । कठिनामल्पवेदनां शीतां कंडुमतीं श्लेष्मवृद्धिं ।कृष्णस्फोटावृतांपित्तवृद्धिलिंगां रक्तवृद्धिं। मृदुस्निग्धां कंडूमतीमल्पवेदनां तालफलप्रकाशां मेदोवृद्धिम् ॥ ४ ॥ मूत्रसंधारणशीलस्य मूत्रवृद्धिर्भवति सा गच्छतोंबुपूर्णादतिरिव क्षुभ्यति मूत्रकृच्छ्रवेदनां वृषणयोः श्वयथुं कोशयोश्चापादयति तां मूत्रवृद्धिं विद्यात् ॥ ५ ॥

इनमेंसे जो वायुसे भरी मशककी तरह फूली हो खरधरी हो विना कारण वायुकी पीडा हो तौ उसे वायुकी अंडवृद्धि कहते हैं। जिसमे वृषण पके गूलरके वर्ण हों मनुष्यको ज्वर दाह और गरमीकी व्याधि हो तथा शीघ्रही बढें और पक जाय उसे पित्तकी अंडवृद्धि कहते हैं। जिसमें कठिनता हो अल्प पीडा हो वृषण ठंडे हों खाज विशेष हो वह कफकी अंडवृद्धि है। जिसमें वृषणोंपर काली २ बहुतसी फुन्सियां हों और प्रायः पित्त वृद्धिके लक्षण हों वह रुधिरकी अंडवृद्धि है जिसमें वृषण कोमल हों चिकनाई हो खाजहो पीडा अल्प हो ताल फलके तुल्य दीखे उसे मेदकी

(गद्य २) फलं अंडम ॥

अंडवृद्धि कहते हैं ॥ ४ ॥ तथा जो मनुष्य मूत्रको रोके प्रायः उसके मूत्रज अंडवृद्धि होती है वह चलते हुये पानीसे भरी मशककी तरह थलथलाती है और मूत्र कठिनतासे आता है तथा वृषणों और वृषण कोश (थैलियों) में शोथ पैदा कर देतीहै उसे मूत्रकी अंडवृद्धि जानना चाहिये ॥ ५ ॥

भारहरणबलवद्विग्रहवृक्षप्रपतनादिभिरायासविशेषैर्वायुरतिप्रवृद्धः प्रकुपितश्च स्थूलांत्रस्येतरस्य चैकदेशं द्विगुणमादायाधोगत्वा वंक्षणसंधिमुपेत्य ग्रंथि रूपेण स्थित्वाऽप्रतिक्रियमाणे च कालांतरेण फलकोशं प्रविश्य मुष्कशोफमापादयत्याध्मातो बस्तिरिवाततः प्रदीर्घः शोफो भवति सशब्दमवपीडितश्चोर्द्ध्वमुपैति विमुक्तश्च पुनराधमति तामंत्रवृद्धिमसाध्यामित्याचक्षते ॥ ६ ॥

बोझा उठानेसे बलवान्के साथ लडने (कुश्ती करने) से वृक्षसे गिरने आदि विशेष कष्टोंसे अत्यंत वायु बढकर और कुपित होकर मोटी आतोंमेंसे अथवा अन्य पतली आंतोंमेंसे किसीके एक देशको दोहरा करके नीचेको पहुँचा वृषणोंकी संधिमें लाके ग्रंथिरूपसे स्थित होता है और यदि उसकी प्रतिक्रिया नहीं कीजाय तब समयपाकर अंडकोशमें प्रविष्ट होजाती है और वृषणोंमें सोजन उत्पन्न करती है और फूलीहुई मशककी तरह फैला हुवा बडा शोथ होता है और ऊपरको दबानेसे शब्दके साथ ऊपरको चढ जाती है और छोड देनेसे फिर उतर आती है उसे अंत्रज (अँतडीकी) अंडवृद्धि कहते हैं और इसको असाध्य कहते हैं ॥ ६ ॥

अंडवृद्धिको डाक्टरीमें कहते हैं और यूनानीमें ताजीमुल अनीसैन कहते हैं ॥

उपदंशनिदान ।

तत्रातिमैथुनादतिब्रह्मचर्याद्वा तथा ब्रह्मचारिणीं चिरोत्सृष्टां रजस्वलां दीर्घरोमां कर्कशरोमां संकीर्णरोमां निगूढरोमामल्पद्वारां महाद्वाराममियामकामामचौक्ष्यसलिलप्रक्षालितयोनिमक्षालितयोनिं योनिरोगोपसृष्टां स्वभावतो वा दुष्टयोनिं वियोनिं वा नारीमत्यर्थमुपसेवमानस्य तथा करजदशनविषशूकनिपातनादर्दनाद्धस्ताभिघाताच्चतुष्पदागमनादचौक्ष्यसलिलप्रक्षालनादवपीडनाच्छुकमूत्रवेगविधारणान्मैथुनांते वा प्रक्षालनादिभिर्मेढ्रमागम्य कुपिता दोषाः क्षतेऽक्षते वा श्वयथुमुपजनयंति तमुपदंशमित्याचक्षते ॥ ७ ॥ स पंचविधस्त्रिभिर्दोषैः पृथक्समस्तैरसृजा चैकः ॥ ८ ॥

अति मैथुनसे अति ब्रह्मचर्यसे तथा ब्रह्मचारिणी बहुत दिनकी छुटी हुई रजस्वला बडे रोमोंवाली करडेरोमों (अधः केश) वाली गहरे रोमों वाली स्त्रीसे संग करनेसे तथा जिसके भीतरको बाल घुसेहों उस स्त्रिके संगसे तथा जिसकी योनि तंगहो या जिसकी बडीहो उसके संगसे तथा जो अप्रियहो जो मैथुनकी इच्छा न करे या जिसने मलीन जलसे योनिधोई हो या जिसने (बहुत दिनसे) योनि धोई नहीं हो या जिसकी योनिमें कोई व्रणादि रोग हो या स्वभावहीसे जिसकी योनि दूषित (अस्थ्यादि युक्त) हो या जिसके योनि होही नहीं अर्थात् स्त्रीसंज्ञिक हीजडी जिसके छोटासा मूत्र मार्ग होताहै ऐसी स्त्रियोंके संग करनेसे या विशेष स्त्रियोंके पास रहनेसे तथा नखून दांत लगनेसे विष तिनका गिरनेसे दबानेसे हाथके मर्दनसे पशुगमनसे मैले जलसे लिंगधोनेसे मसलनेसे वीर्य और मूत्रके वेग रोकनेसे मैथुनांतमें न धोने इत्यादिसे कुपित हुवे वातादि दोष लिंगमें प्राप्त होकर घावमें या विनाघावही शोथ पैदा करते हैं इसे उपदंश कहते हैं ॥ ७ ॥ यह उपदंश पांच प्रकारका होता है वातसे पित्तसे कफसे सन्निपातसे और एक पाँचवां रक्त दोषसे होता है ॥ ८ ॥

तत्र वातिके पारुष्यं त्वक्परिपुटनं स्तब्धमेढ्रता परुषशोफता विविधाश्च वातवेदनाः। पैत्तिकेज्वरः श्वयथुः पक्वोदुंबरसंकाशस्तीव्रदाहः क्षिप्रपाकः पित्तवेदनाश्च। श्लैष्मिके श्वयथुः कंडूमान् कठिनः स्निग्धः श्लेष्मवेदनश्च। रक्तजे कृष्णस्फोटप्रादुर्भावोत्यर्थमसृक्प्रवृत्तिपित्तलिंगानि चात्यर्थं ज्वरदाहौ शोषश्च याप्यश्च कदाचित् । सर्वजे सर्वलिंगदर्शनमवदरणं शेफसः क्रिमिप्रादुर्भावो मरणंचेति ॥ ९ ॥

इनमेंसे वायुके उपदंशमें खरधरापन होताहै लिंगकी चमड़ीमें तरेडें होजाती हैं इंद्रिय करड़ी होजातीहै और खरधरा सोजा होताहै तथा अनेक वायुकी वेदना होतीहै पित्तके उपदंशमें ज्वरहो शोथहो पके गूलरके समान लाल वर्णहो बहुत जलन हो शीघ्रपके तथा पित्तकी वेदनाहो । कफके उपदंशमे खाज युक्त करडा चिकना और कफकी वेदना वाला सोजन (शोथ) हो रक्तके उप दंशमें काली २ फुन्सियां पैदाहों अधिक रुधिर निकले पित्तकेसे लक्षण हों विशेष कर ज्वरहो दाहहो शोष (खुश्की) हो कभी कभी यह रक्तोपदंश याप्य होजाताहै । सन्निपातके उपदंशमें सबके लक्षण होतेहैं लिंगमें दारुण जखम पड़जातेहैं उनमें कीडे पड़जातेहैं तथा मृत्यु होजातीहैं ॥ ९ ॥

परिशिष्ट ।

फिरंगरोगनिदानम् ।

यद्यपि चरक सुश्रुत वाग्भट हारीत आदि सनातन संहितावोंमें फिरंग रोग नही लिखा केवल उपदंशही लिखाहै परंतु इस समय जो रोग आतशक (गरमी) केनामसे विख्यातहै और बहुत फैलाहै वह पूर्व लिखित उपदंशसे विलक्षणही प्रतीत होताहै चरक सुश्रुतादिमें जो इसे पृथक् नहीं लिखा इससे जाना जाताहै कि उस समय भरत भूमिमें यह दारुण रोग फिरंग नहींथा परंतु प्रकृति विरुद्ध अन्य देशीय मनुष्योंका यही अधिक समागम हुवा तो उनके संगसे इसका प्रादुर्भाव हुवा और भावमिश्रके समयमें इस फिरंग रोगका यहां प्रादुर्भाव होगयाथा इसीसे अपने भावप्रकाश ग्रंथमें भावीमिश्रेने इस रोगको उपदंशसे पृथक् लिखाहै देखो भावप्रकाशमें लिखाहै कि-

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्ये नैवयद्भवेत् ॥ तस्मात् फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥ फिरंगिणोङ्गसंसर्गात् फिरंगिण्याः प्रसंगतः ॥ व्याधिरागंतुजोह्येषः दोषाणामत्रसंक्रमः ॥ २ ॥

फिरंग संज्ञक देश अथात् यूरोपके ठंडे मुल्कोंमें यह रोग विशेषतासे होताहै इस कारणसे इसका नाम वैद्योंने फिरंग रोगही कहाहै ॥ १ ॥ फिरंगी फिरंग रोगवाले) के अंगके संसर्गसे अथवा फिरंगण (फिरंग रोगवाली) स्त्रीको यह आगंतुक व्याधि पैदा (हुई और) होतीहै इसमें दोषोंकी संक्रामकता प्रसंगसे होतीहै ॥ २ ॥

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्यआभ्यंतरस्तथा ॥ बहिरंतर्भवश्चापि तेषां लिंगा नि च ब्रुवे ॥ ३ ॥ तत्रबाह्य फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशोल्परुक् । स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योपि स स्मृतः ॥ ४ ॥ संधिष्वाभ्यंतरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ॥ शोथं च जनयेदेषः कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ५ ॥ कार्श्यं बलक्षयो नाशा भंगो वन्हेश्च मंदता ॥ रक्तदोषास्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ६ ॥

फिरंग रोग तीन प्रकारका होताहै १ बाह्य २ अभ्यंतर ३ बाह्याभ्यंतर उनके लक्षण कहतेहैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे बाह्य (बाहरी) फिरंगमें फुन्सियांसी होतीहैं कभी अल्प होताहै फूट जाने पर व्रणकी भांति वैद्योंने सुख साध्य कहाहै ॥ ४ ॥ अभ्यंतर (भीतरी) फिरंग आमवात रोगकी तरह संधियोंमें व्यथा और शोथ पैदा

करताहै यह वैद्योंने कष्टसाध्य कहाहै ॥ ५ ॥ इस रोगके ये उपद्रव हैं कृशता बलकी क्षीणता नाक भंग होजाना अग्निकी मंदता रक्तदोष (खून बिगडजाना) अस्थि टेढेहोना (और कई रक्तदोषकी जगह अस्थिशोष ऐसा पाठांतर कहतेहैं) ॥ ६ ॥

(वक्तव्य) सुश्रुतके पाठी इसका उपदंशमेंही अंतर्भाव करतेहैं इससे कि "योनिरोगोपसृष्टामुपसेवमानस्य" ऐसा सुश्रुतमें लिखाहै इससे फिरंग योनिरोगवाली स्त्रीसंगसे समझो बल्कि "शुक्रमूत्रवेगविधारणात्" ऐसाभी लिखाहै जिससे वर्तमान समयके सुजाकरोग (कृच्छ्र) काभी अंतरभाव होसकताहै परंच भावप्रकाशके अनुसार उपदंश और फिरंगकी औषध और चिकित्सामें अंतर होनेसे तथा फिरंगमें आमवातकेसी व्यथा और नासा भंगादि उपद्रवोंके अंतरसे अवश्य यह पृथकूही सिद्ध होताहै ॥

डाक्टरीमें इसे सिफलिस और यूनानी हकीम बादफरंग या आतशक कहतेहैं ॥

श्लीपदनिदानम् ।

कुपितास्तु दोषाः वातपित्तश्लेष्माणोऽधःप्रपन्ना वंक्षणो रुजानुजंघास्वावतिष्ठमानाः कालांतरेण पादमाश्रित्य शनैः शोफं जनयंति तत् श्लीपदमित्याचक्षते ॥ ७ ॥ तत्रिविधं वातपित्तकफनिमित्तमिति ॥ ८ ॥

कुपित हुवे वायु पित्त कफ दोष नीचेको प्राप्त होकर वंक्षण पावोंकी ऊपरली सांधि साथल जानु और जंघा इनस्थानोंमें स्थित हुवे समय पाकर पैरों (पिंडलियों)में प्राप्त होकर धीरे धीरे शोथ उत्पन्न करते हैं (पैरको मोटा स्थूल करदेते हैं) इसे श्लीपद (पील पाव रोग) कहते हैं ॥ ७ ॥ यह तीन प्रकारका होता है वायुका पित्तका और कफका ॥ ८ ॥

तत्र वातजं खरं कृष्णं परुषमनिमित्तानिलरुजं परिस्फुटति च बहुशः । पित्तजंतु पीतावभासमीषन्मृदुज्वरदाहप्रायञ्च । श्लेष्मजं तु श्वेतं स्निग्धावभासं मंदवेदनं भारिकमिति महाग्रंथिकं कंटकैरुपचितं च ॥ ९ ॥ तत्र संवत्सरातीतमतिमहद्वल्मीकजातं प्रस्रुतमितिवर्जनीयम् ॥ १० ॥

वायुके श्लीपदमें पाँव खरधरा साँवला करडा होता हैं तथा विना हेतु वायुके विकार होते हैं और विशेष करके पाँवका शोथ फटने लगता है (लकीरेंसी होती हैं)। पित्तका श्लीपद हो तो पावके शोथमें पीली चमक मालूम हो कुछ २ कोमल हो तथा प्रायः ज्वर और दाह हो । कफके श्लीपदमें सोजा सुपेद हो चिकनी चमक हो मंद पीडा हो भारापन अधिक हो बडी गाँटेंसी हो तथा मांसके अंकुरोंसे व्याप्त

(गद्य ९) कंटकैरुपचितं मांसांकुरैः उपचितम् ॥

हो ॥ १२ ॥ इनमेंसे जो वर्षसे अधिक पुराना हो जो साँपोंकी बँबई जैसा हो गया हो तथा जो नित्य झिरता हो तो (असाध्य जान) त्यागने योग्य है ॥ १० ॥

भवन्ति चात्र ।

त्रीण्येतानि विजानीयात् श्लीपदानि कफोच्छ्रयात्॥गुरुत्वं च महत्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ११ ॥

यहांपर श्लोक हैं कि । ये तीनोंही प्रकारके श्लीपद कफकी उल्बणतासे होते हैं क्योंकि कफके विना भारीपन और मोटापन नहीं हो सकता इससे इस रोगमें मुख्य प्रधान कफही है ॥ ११ ॥

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः॥ये देशास्तेषु जायंते श्लीपदानि विशेषतः॥ १२॥ पादयोर्हस्तयोश्चापि श्लीपदं जायते नृणाम्॥कर्णा-क्षिनासिकौष्ठेषु केचिदिच्छंति तद्विदः ॥ १३ ॥

इतिनिदाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जिन देशोंमें बहुत करके पुराना (कई वर्षोंका भरा) जलहो और वेदेश सब ऋतुवोंमें शीतलहीहों ऐसे देशोंमें विशेष करके श्लीपद रोग अधिक होताहै (जैसे विहार अवध बंगाला प्रांतके आनूप देशोंमें यह अधिक होताहै) ॥ १२ ॥ मनुष्योंके पैरोंमें तथा किसीके हाथोंमेंभी यह श्लीपद रोग होताहीहै परंतु कई आचार्य ऐसाभी कहते हैं१८कि यह श्लीपद कान नेत्र नासिका और होठ(तथा लिंग) मेंभी होसक्ताहै॥ श्लीपदको डाक्टरीमें (इन्फ्लीमेशन औफ दीलेग)कहतेहैं और यूनानी वाले पीलपावा कहतेहैं ॥ १३ ॥

इतिश्री सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातः क्षुद्ररोगाणां निदानं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अगाडी क्षुद्ररोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

समासेन चतुश्चत्वारिंशत् क्षुद्ररोगा भवंति तद्यथा ॥ १ ॥ अजगल्लिका यवप्रख्याऽन्धालजी विवृता कच्छपिका वल्मीकमिंद्रवृद्धा पनसिका पाषाणगर्दभो जालगर्दभः कक्षा विस्फोटको अग्निरोहिणी चिप्पंकुनखोऽनुशयी विदारिका शर्करार्बुदं पामा विचर्चिका रकसा पाददारिका कदरमलसमंद्रलुप्तो दारुणकोऽरुंषिका पलितं मसूरिका यौवनपिडका

पद्मिनीकंटको जंतुमणिमशकश्चर्मकीलस्तिलकालको न्यच्छं व्यंगः परिवर्तिकाऽवपाटिका निरुद्धप्रकाशः निरुद्धगुदोऽहिपूतनं वृषणकच्छू-र्गुदभ्रंशश्चेति ॥ २ ॥

संक्षेपतासे चवालीस ४४ क्षुद्ररोग होते हैं जैसे ॥ १ ॥ अजगल्लिका यवप्रख्या अंधालजी विवृता कच्छपिका वल्मीक इंद्रवृद्धा पनसिका पाषाणगर्दभ कक्षा विस्फो-टक अग्निरोहिणी चिप्प कुनख अनुशयी विदारिका शर्करार्बुद पामा विचर्चिका रकसा पाददारिका दकर अलस इंद्रलुप्त दारुणक अरुंषिका पलित मसूरिका यौवन पिडिका पद्मिनी कंटक जतुमणि मशक चर्मकील तिलकालक न्यच्छ व्यंग परिव-र्तिका अवपाटिका निरुद्धप्रकाश निरुद्धगुद अहिपूतन वृषण कच्छु तथा गुदभ्रंश ऐसे ये ४४ हुए इनके लक्षण चिन्हादि अगाड़ी लिखते हैं ॥ २ ॥

क्षुद्ररोगोंके लक्षण ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंन्निभा कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ ३ ॥

जो चिकनी त्वचाके वर्णकी ग्रथित मूंगके समान पीडा रहित बालकोंके फुन्सी होतीहै उसे " अजगल्लिका " कहतेहैं यह कफ वायुसे होतीहै ॥ ३ ॥

यवाकारासुकठिना ग्रथिता मांससंसृता॥पिडका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्ये ति सोच्यते ॥ ४ ॥ घनामवक्त्रां पिडकामुन्नतां परिमंडलाम्॥अंधालजी-मल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ५ ॥ विवृतास्यां महादाहां पक्वो-दुंबरसन्निभाम्॥विवृतामिति तां विद्यात् पित्तोत्थां परिमंडलाम्॥ ६ ॥ ग्रंथयः पंच वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः॥कफानिलाभ्यामुद्भूतां वि-द्यात्तां कच्छपीमिति ॥ ७ ॥

" यवप्रख्या " का लक्षण जो फुन्सी यव (जौ) के आकारहो बहुत कठिन हो गांठसी पडगई हो जिसपर मांस आच्छादितहो उसे यव प्रख्या कहतेहैं और यह यव प्रख्या कफ और वायुसे उत्पन्न होतीहै ॥ ४ ॥ " अंधालजी " जो फुंसी करडीहो जिसमें मुख न हो ऊपरको उठी हुईहो या नीचे फैलीहो उसमें अल्पपीबहो उसे अंधालजी कहते हैं यहभी कफ वायुसेही उत्पन्न होतीहै ॥

"विवृता " जिसका मुँह फैला हुवाहो अत्यंत दाहहो तथा जो पके गूलरके समा-

(ग० २) शार्ङ्गधरेण षष्टिक्षुद्ररोगाःपठिताः अवशेषपरिशंकाः संख्यासूचकाः ॥

नहो फैलीहो वह विवृता है यह पित्तसे उत्पन्न होतीहै ॥ ६ ॥ " कच्छपी " जिसमें पांच या छः ग्रंथि दारुण हो और कछवेके भांति ऊपरको उठीहो यह कच्छपीहै कफ वायुसे होतीहै ॥ ७ ॥

पाणिपादतले संधौ ग्रीवायामूर्द्ध्वजत्रुणि ॥ ग्रंथिर्वल्मीकवद्यस्तु शनैः समुपचीयते ॥ ८ ॥ तोदक्लेद परीदाहकंडूमद्भिर्व्रणैर्वृतः॥व्याधि वल्मीक इत्येष कफपित्तानिलोद्भवः ॥ ९ ॥

" वल्मीक " हाथकी हथेली पावोंके तलवे संधि ग्रीवा (गरदन) तथा ऊर्द्ध जत्रु ऊपरके जोते इनस्थानोंमें जो धीरे धीरे बढकर बँबईके आकार होजाय दरद और क्लेदना तथा दाह और खाजवाले व्रणोंसे व्याप्तहो तो वह " वल्मीक " नामक रोगहै यह कफ पित्त और वायुसे होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

पद्मपुष्करवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम्॥इंद्रवृद्धां तु तां विद्यु वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ १० ॥ कर्णोपरि समंताद्वा पृष्ठे वा पिडकोग्ररुक् ॥ शालूकवत्पनसिकां तां विद्यात् कफवातजाम् ॥ ११ ॥

" इंद्र वृद्धा " जो बीचमें कमलकी कर्णिकाकी भांति फुन्सियोंसे व्याप्तहो वह फुन्सी इंद्र वृद्धा है और इसे वैद्य वात पित्तसे उत्पन्न जाने ॥ १० ॥ " पनसिका " कानपर आस पास या पीठपर जो शालूककी तरह उग्र पीडा वाली फुन्सीहो उसे "पनसिका" जानो यह कफ वायुसे होती है ॥ ११ ॥

हनुसंधौ समुद्भूतं शोफमल्परुजंस्थिरं॥पाषाणगर्दभं विद्यात् बलासपवनात्मकम् ॥ १२॥ विसर्पवत्सर्पतियो दाहज्वरकरस्तनुः॥अपाकः श्वयथुः पित्तोन्मजयो जालगर्दभः ॥ १३ ॥

"पाषाणगर्दभ" हनु (ठोडी) की संधिमें उत्पन्न हुवा अल्प पीडावाला और स्थिर सोजा हो उसे " पाषाण गर्दभ " जानो (इसे देश भाषामें कनफेड़ कहते हैं) (डाक्टरीमें " पेरोटा इटिस" कहते हैं) यहभी कफ और वायुसे होता हैं ॥ १२ ॥ " जाल गर्दभ" जो विसर्पकी भांति फैले दाह और ज्वर पैदा करे हलका हो और पके नहीं ऐसा सोजा पित्तसे उपजा " जाल गर्दभ" कहलाता है ॥ १३ ॥

बाहुपार्श्वांसकक्षासु कृष्णस्फोटां सवेदनां पित्तप्रकोपात्संभूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥ अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरारक्तपित्ततः॥क्वचि

(श्लो० ११) शालूकं कुमुदादिमूलं आलुविशेष (इतिशब्दस्तोम०)

त्सर्वत्रवादेहे स्मृताविस्फोटकाइति ॥ १५ ॥ कक्षाभागेषुयेस्फोटा जायंते मांसदारुणाः ॥ अंतर्दाहज्वरकराः दीप्ताःपावकसन्निभाः ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वापक्षाद्वाघ्नंति मानवम् ॥ तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यांसन्निपाततः ॥ १७ ॥

"कक्षा" जो भुजा पँसवाडा खंवा कांखके स्थानमें वेदना युक्त काली फुन्सी हो उसे कक्षा (कँखलाई) कहते हैं यह पित्तके कोपसे होती है ॥ १४ ॥ "विस्फोटक" जो अग्निसे जलेके समान स्फोट (फालकेसे) किसी शरीरके एक भागमें या सारे शरीरमें हो ज्वरभी हो तौ उन्हे "विस्फोटक" कहतेहैं ये रक्त और पित्तसे होतेहै ॥ १५ ॥ "अग्नि रोहिणी" कांखके प्रदेशमें जो मांसको दारुण करने वाले अंतर्दाह और ज्वर करनेवाले अग्निके समान जलने वाले ऐसे फोडे हों उन्हे अग्निरोहिणी कहते हैं ये संनिपातसे होते हैं और असाध्य होते हैं तथा सातदिनमें अथवा दशदिनमें अथवा पंदरा दिनमें मनुष्यको मारदेते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

नखमांसमधिष्ठाय वातःपित्तंचवेदनाम् ॥ करोति दाहपाकौच तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् । तदेव क्षतरोगाख्यं तथोपनखमित्यपि ॥ १८ ॥

"चिप्यरोग" नखूनके मांसमें वायु और पित्त प्राप्त होकर वेदना तथा दाह और पाक उत्पन्न करे तौ उसे "चिप्य" कहते हैं और इसेही क्षतरोग कहते हैं तथा उपनखभी कहते हैं ॥ १८ ॥

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षो सितः खरः ॥ भवेत्तु कुनखं विद्यात्कुलीनमिति संज्ञितम् ॥ १९ ॥ गंभीरामल्पसंरंभां सवर्णमुपरिस्थिताम् कफादंतः प्रपाकांतां विद्यादनुशयीं भिषक् ॥ २० ॥ विदारीकंदवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसंधिषु ॥ रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् २१ ॥

"कुनख" चोट आदि लगने रे दूषित हुवा जो नख रूक्ष और काला तथाखरधरा होजाय तो उसे "कुनख" कहते हैं और इसेही "कुलीन" संज्ञक रोगी जानो ॥ ॥ १९ ॥ "अनुशयी" जो फोडा गहराहो आरंभमें थोडासादीखे ऊपरसे त्वचाके रंगहीकाहो (भीतरचक्कलदारहो) और भीतरहीसे पकता आवे उसे वैद्य "अनुशयी" कहतेहै यह कफसे उत्पन्न जानो ॥ २० ॥ "विदारिका" जो विदारीकंदके समान गोल फैला हुवा कांख तथा नलोंके ऊपर लाल रंगका फोडा हो उसे "विदारी" कहतेहैं यह विदारी संनिपातसे होतीहै और इसमें सब दोषोंके लक्षण होतेहै ॥ २१ ॥

(श्लो० १६ । १७) वाताधिके: सप्ताहात् पित्ताधिकैर्दशाहात् कफाधिके: पक्षात् घ्नंति (इतिशेषः)

प्राप्य मांसशिरास्नायुं श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः॥ग्रंथिं कुर्वंति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २२ ॥ स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिंगतोऽनिलः मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्पुनः ॥ २३ ॥ दुर्गंधं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः॥स्रवंति सहसा रक्तं तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥

" शर्करार्बुद " मांस और शिरा तथा स्नायुमें कफ मेद तथा वायु प्राप्त होकर ग्रंथि पैदा करतेहैं और जब फूटे या चीरीजाय तब उसमेसे शहत घृत चरबी जैसा मल अधिक झिरताहै फिर वृद्धिको प्राप्त हुवा वायु उसमें मांसको शुष्क करके ग्रंथि युक्त शर्करा (रेतासा) उत्पन्न करदेताहै फिर दुर्गंध युक्त क्लिन्न (क्लेदित) नाना प्रकारके वर्णका रक्त अत्यंत शिराओंमेंसे एका एक निकलने लगजाताहै तो इसे "शर्करार्बुद" कहतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

पामाविचर्च्यौ कुष्ठेषु रकसा च प्रकीर्तिता ॥ २५ ॥ परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ॥पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंस्थिताम्॥ २६ ॥

" पामा " (गीली खुजली) " विचर्ची " (व्योंची) तथा " रकसा " (सूखी खाज) इनके लक्षण कुष्ठोंके लक्षणोंमें वर्णन होचुके हैं ॥ २५ ॥ " पाददारी " बहुत फिरनेवाले मनुष्योंके अति रूखे पांवोंके नीचे पीडावाली दारी (बिंवाई) रोगको वायु उत्पन्न करतीहै इसे "पाददारी" कहतेहैं ॥ २६ ॥

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः॥मेदोरक्तानुगे चैव दोषे वा जायते नृणाम् ॥ २७॥ सकीलः कठिनो ग्रंथिर्निम्नमध्योन्नतोपि वा कोलमात्रः सरुक् स्रावी जायते कदरस्तु सः॥ २८॥क्लिन्नांगुल्यंतरौ पादौ कंडूदाहरुजान्वितौ॥दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥

" कदर " छोटी २ कंकरियोंसे कुचले हुवे पांवोंमें या कांटे आदिसे घाव हुवेमें मेद और रुधिरके अनुगत दोष हो जाते हैं तब मनुष्योंके पांवोंमें कील युक्त कडरी ग्रंथि नीची मध्यम अथवा ऊपरको उठी हुई बडे बेरके समान पीडावाली गाठनसी पड़जाती है यह " कदर " नामक क्षुद्ररोग कहलाता है (इसे भाषामें " डील " कहते हैं) ॥ २७ ॥ २८ ॥ " अलस " भीगे हुवे पैरोंकी अंगुलियोंके बीचमें खाज दाह पीड़ा युक्त पीडा दुष्टकीचडके स्पर्शसे होती है उसे " अलस " (खार वा कहते हैं)॥ २९ ॥

रोमकूपानुगपित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्॥प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा

सशोणितः ॥ ३० ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोन्येषामसंभवः ॥ तदिंद्रलुप्तं खालित्यं रुज्येतिच विभाव्यते ॥ ३१ ॥

" इंद्रलुप्त " जब रोमकूपके अनुगत पित्त होता है और वायुसे मिलकर मूर्च्छित होजाता है तब रोमों (बालों) को गिरा देता है फिर रक्तसे मिला कफ रोमकूप (रोमोंके छिद्रों) को रोक देता है जिससे फिर और बाल नहीं आवे इस रोगको " इंद्रलुप्त " और खालित्य रोग कहते हैं (इसे भाषामें कुरा या गंज कहते हैं) ॥ ३० ॥ ३१ ॥

दारुणा कंडुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते॥कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३२॥ अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदानि मूर्द्धनि॥कफासृक्कृमि-कोपेन नृणांविद्यादरूंषिकाम् ॥ ३३ ॥

" दारुणक " जिसमें बालोंकी जमीनमें दारुण खाज चले रूक्षताहो उसे " दारु-णक "कहते हैं यह कफ और वायुके कोपसे होता है ॥ ३२ ॥ " अरूंषिका " जिसमें अनेक मुखवाली बहुत गीली शिरमें फुंसियां हों उन्हे " अरूंषिका " कहते हैं यह कफ रक्त और कृमि (जूं) के विकारसे होती हैं ॥ ३३ ॥

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः॥पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥ ३४ ॥ दाहज्वररुजावंतस्ताम्राः स्फोटाः सपीतकाः॥गा-त्रेषु वदने चांतर्विज्ञेयास्ता मसूरिकाः ॥ ३५॥ शाल्मलीकंटकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः जायंते पिडका यूनां वक्रे या मुखदूषिकाः ३६ ॥ कंटकैराचितं वृत्तं कंडूमत्पांडुमंडलम् ॥ पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यं क-फवातजम् ॥ ३७ ॥

" पलित " क्रोध शोक और परिश्रम करनेसे शरीरकी गरमी और पित्त शिरमें प्राप्त होकर बालोंको पका देतेहैं (बालोंको सुपेद करते हैं) इससे "पलित" नामक रोग होजाताहै ॥ ३४ ॥

" मसूरिका " दाह ज्वर और पीडावाली सुरख पीलापन युक्त जो शरीरमें तथा मुँहके भीतर (मसूरके समान) फुन्सियां हों उन्हे " मसूरिका " कहतेहैं (भाषामें इसे शीतला और उरदूमें चेचक कहतेहैं) यह रुधिर और पित्तकी प्रधानतासे होतीहै ॥ ३५ ॥

"मुख दूषिका" अथवा यौवनपिडिका जो संभलके कांटेके तुल्य तरुण मनुष्योंके मुँहपर छोटी फूंसियां होतीहैं उन्हे "मुख दूषिका" तथा " यौवनपिडका " कहतेहैं ये कफ वायु और रुधिरसे होतीहैं (भाषामें इन्हे मुहांसा कहते हैं ॥ ३६ ॥

" पद्मिनी कंटक " जो अंकुरोंसे व्याप्त गोल खाजवाली पीली जडवाली कमलनी के काँटोंके भांति फुन्सियांहों उन्हे " पद्मिनी कंटक " कहतेहैं और यह कफ वायुसे उत्पन्न होतीहैं ॥ ३७ ॥

नीरुजं सममुत्पन्नं मंडलं कफरक्तजम्॥सहजं रक्तमीषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥ ३८ ॥ अवेदनं स्थिरं चैव यस्य गात्रेषु दृश्यते॥माषवत्कृष्ण-मुत्सन्नमनिलान्मशकं दिशेत् ॥ ३९ ॥ कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानिच॥वातपित्तकफोद्रेकात् तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ४० ॥

" जतुमणि " जो चकद्दा पीडा रहित समान हो मंडलसाहो कुछ लाल (ऊदा) हो खरधरा न हो जन्मसेही हो वह कफ रक्तज जतुमणि (लशुन) कहाताहै ॥ ३८॥ " मशक " जो वेदनारहित स्थिर माषके तुल्य उभरा हुवा काला शरीर पर हो उसे मशक (मसा) कहतेहैं यह वायुसे होताहै ॥ ३९ ॥ " तिलकालक " जो छोटे२ तिलके समान काले छींटेसे वेदनारहित शरीरपर होतेहैं उन्हे"तिलकालक"(तिल) कहते हैं ये वात पित्त कफके उद्रेकसे होतेहैं ॥ ४० ॥

मंडलं महदल्पंवा श्यामं वा यदि वा सितम्॥सहजं नीरुजं गात्रेन्यच्छमि-त्यभिधीयते ॥ ४१॥ समुत्थाननिदानाभ्यां चर्मकीलः प्रकीर्तितः॥ ४२॥ क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः॥सहसा मुखमागम्य मंडलं विसृजे-त्ततः ॥ नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगतमादिशेत् ॥ ४३ ॥

" न्यच्छ " शरीरपर छोटे या बडे काले या सुपेद पीडा रहित जन्मसे जो मंडलहों उन्हे न्यच्छ (चकद्दे) कहतेहैं (यह रक्त और पित्तसे होतेहैं) ॥ ४१ ॥ "चर्मकील" उत्थान और निदानसे चर्मकील रोग जानना चाहिये अर्थात् वात आदि दोषसे जैसा और जिस स्थानमें हो उसीसे जाने ॥ ४२ ॥ " व्यंग " क्रोध तथा श्रमसे कुपित हुवा वायु पित्तसे मिलकर एकाएक मुखकी बहिर्गतत्वचामें प्राप्त होकर मंडल (धब्बे) पैदा करताहै तब पीडा रहित कुछ काले २ चकद्देसे मुखपर होजातेहैं इसे व्यंग अर्थात् झाँई कहतेहैं ॥ ४३ ॥

मर्दनात्पीडनाच्चापि तथैवात्यभिघाततः ॥ मेढ्रचर्म यदावायुर्भजते सर्वत-श्चरः ॥ ४४ ॥ तदा वातोपसृष्टं तु चर्मप्रति निवर्त्तते॥मणेरधस्तात्कोशश्च ग्रंथिरूपेण लंबते ॥ ४५ ॥ सवेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति कचित् मारुतागंतुसंभूतां विद्यात्तांपरिवर्तिकाम्॥सकंडूः कठिना चैव सैव श्ले-ष्मसमुत्थिता ॥ ४६ ॥

" संनिरुद्ध गुद " मलका वेग रोकनेसे रुका हुवा वायु गुदामें प्राप्त होकर मलके निकलनेके बडे द्वारको निरोध करके मार्गको तंगकर देता है ॥ ५१ ॥ फिर मल निकलनेका रास्ता तंग होनेसे मल कष्टसे निकलता है इसे संनिरुद्धगुद रोग कहते हैं यह दुस्तर (कष्ट साध्य) रोग है ॥ ५२ ॥

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्नस्यास्नाप्यमानस्य कंडूरक्तकफोद्भवः ॥ ५३ ॥ कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५४ ॥

" अहिपूतन " जब बालकको विष्ठामूत्रसे भरे हुवे विनाधोये अपान वायु होताहै तथा पसीने नित्य आया करे और स्नान कराया नहीं जाय ऐसे बालकोंको रक्त और कफसे उपजी खाज होतीहै ॥ ५३ ॥ फिर विशेष खुजानेसे शीघ्रही फुन्सिया होकर झिरने लगतीहैं फिर व्रणोंसे एक रूप छत्तडासा घोर होजाताहै इसे "अहिपूतन" जानो ॥ ५४ ॥

स्नानोत्सादनहीनस्य मलोवृषणसंश्रितः ॥ प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात् स कंडूं जनयेत्तदा ॥ ५५ ॥ तत्र कंडूयनात् क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५६ ॥

" वृषण कच्छू " न्हाने धोने मैल उतारनेसे हीन जो पुरुष उनके वृषणोंमें आश्रित हुवा मैल जब पसीने आकर क्लेदित होताहै तब खाज पैदा करताहै ॥ ५५ ॥ फिर वहां खुजानेसे शीघ्रही फुन्सियां होतीहैं पानीसा निकलने लगताहै इसे "वृषणकच्छू" कहतेहैं और यह कफ रुधिरके कोपसे होताहै ॥ ५६ ॥

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ॥ रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ५७ ॥

इति निदाने त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥

" गुदभ्रंश " अतिप्रवाहण (किनछने) से तथा अतिसारसे जब रूक्ष और दुर्बल मनुष्यकी गुदा (कांच) बाहर निकले तौ उसे "गुदभ्रंश" रोग कहतेहैं (यह वायुसे होताहै) ॥ ५७ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातः शूकदोषनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी शूक दोषके निदानकी व्याख्या करतेहैं ।

लिंगवृद्धिमिच्छतामक्रमप्रवृत्तानाम् शूकदोषनिमित्ता दश चाष्टौ च व्याधयो जायंते तद्यथा सर्षपिका अष्ठीलिका ग्रंथितं कुम्भीका अलजीमृदितं संमूढपिडका अवमन्थः पुष्करिका स्पर्शहानिः उत्तमा शतपोनकः त्वक्पाकः शोणितार्बुदम् मांसार्बुदमांसपाकः विद्रधिः तिलकालकश्चेति ॥ १ ॥

जो पुरुष अयोग्य क्रमसे लिंगकी वृद्धि(तथा स्थूलता कठोरता आदि) की इच्छामें प्रवृत्त होतेहैं (अर्थात् अयोग्य मूढ लोगोंकी बताई औषध तिले पट्टी लेप आदिसे लिंगकी वृद्धि आदिके लिये यत्न करते हैं) उनको शूक दोषके कारणसे अठारह प्रकारकी व्याधियां होतींहैं वे ये हैं १ सार्षपिका २ अष्ठीलिका ३ ग्रथित ४ कुंभिका ५ अलजी ६ मृदित ७ संमूढपिडका ८ अवमंथ ९ पुष्करिका १० स्पर्शहानि ११ उत्तमा १२ शतपोनक १३ त्वक्पाक १४ शोणितार्बुद १५ मांसार्बुद्ध १६ मांसपाक १७ विद्रधि १८ तिलकालक ॥ १ ॥

इन सबके लक्षण ।

गौरसर्षपतुल्या तु शूकदुर्भग्नहेतुका॥ पिडकाकफरक्ताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका बुधैः ॥ २ ॥ कठिनाविषमैरंतैर्मारुतस्य प्रकोपतः शूकैस्तु विषसंयुक्तैः पिडकाष्ठीलिकाभवेत् ॥ ३ ॥

जो सुपेद सरसोंके तुल्य छोटी २ फुन्सियां कफ रक्तसेहों उन्हें सर्षपिका कहते हैं ये शूक (नामक लिंग वृद्धि कारक कृमि) के दुर्भग्न होने ठीक न होनेके दोषसे होती हैं॥२॥ जो करड़ी और भीतरसे विषम ऐसी वायुके कोपसे पिडकाहो वह अष्ठीलिका है यह विषयुक्त शूकोंसे होतीहै ॥ ३ ॥

(गद्य० १) शूकः सविषजलजंतुविशेषः यस्यप्रयोगेनपुरा लिंगवृद्धिंकुर्वंति कामिनोजनाः तथाच भावप्रकाश- नोक्तोयोगः यथा भल्लातकास्थि जलशूकमथाब्जपत्रमंतर्विदाह्यमतिमान् सहसैंधवेन । एतद्विचूर्णफलं तेनविघृ- मालेपितं महिषविड्विमलीकृतेंगे । स्थूलंमहद्दृढतुरंगमलिंगतुल्यं शेफः करोत्यभिमतं महिलाप्रयोगे-- ॥ १ ॥ तस्यशूक- स्यानुचितप्रयोगेन चाष्टादशव्याधयोभवंति । (इतिभावमिश्रः) डल्हनाचार्योप्याहअत्र आदिशब्दो [illegible] शूकादिदोषनिमित्ता व्याधय इत्यर्थं आदिशब्देनाच तीक्ष्णविषद्रव्य [illegible] ग्राह्याः शूकः [illegible] कीटः ॥

(श्लो० २) दुर्भग्नाः शूकाद्यप्रयोगे तद्धेतुका ॥

(श्लो० ३) अंतैः पतितैः (इति नि० सं०) ॥

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं तत्कफोत्थितम् ॥ कुंभीका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभासिता ॥ ४ ॥ अलजीलक्षणैर्युक्तामलजीम् चम् वितर्कयत् ॥ ५ ॥ मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वायुकोपतः ॥ पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ॥ ६ ॥ दीर्घावव्ह्यश्चापिडका दीर्यंते मध्यतस्तु याः ॥ सोवमंथः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ७ ॥

जो बहुतसे शूकोंसे निरंतर पूरित रहे तब कफसे उपजा " ग्रथित " रोग हो जाताहै तथा रक्त और पित्तसे उपजी जामुनकी गुठली जैसी काली कुंभी फल सदृश जो फुंसी लिंगपर होती है उसे " कुंभीका " या कुंभिका कहते हैं यहभी दुष्ट शूकके अवचारणसे होती है ॥ ४ ॥ अलजी जो प्रमेह पिडिकाओंमें वर्णन हो चुकी हैं उसके लक्षणोंसे युक्त हो तौ " अलजी " जानना चाहिये ॥ ५ ॥ (शूककी पीड़ा होनेपर) जो मसला या दबाया जाय तो वायुके कोपसे "मृदित" नाम रोग होता हैं तथा (शूक दोष होनेपर) बारबार हाथ लगानेसे "संमूढ पिडिका" रोग हो जाता हैं ॥ ६ ॥ जिसमें बडी २ बहुतसी फुंसियां बीचसे फटीसी हो जाय उसे " अवमंथ" कहते हैं यह कफ रक्तसे होता है और यह वेदना तथा रोमहर्ष करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

पित्तशोणितसंभूता पिडकापिडकाचिता ॥ पद्मपुष्करसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेतिसा ॥ ८ ॥ जनयेत् स्पर्शहानिं तु शोणितं शूकदूषितम् ॥ ९ ॥ मुद्गमाषोपमा रक्तापिडका रक्तपित्तजा ॥ उत्तमैषा तु विज्ञेया शूकाजीर्णनिमित्तजाः १०

जिसमें पित्त और रक्तसे उपजी हुई फुंसीसे फुंसी मिलकर कमलकी कर्णिकाके तुल्य हो उसे " पुष्करिका " जानो ॥ ८ ॥ जिसके शूक दोषसे दूषित हुवा रुधिर स्पर्शकी हानि उत्पन्नकर दे तौ उसे " स्पर्श हानि " रोग जानो ॥ ९ ॥ मूंग उड़दके बराबर लाल फुंसी रक्त पित्तसे उपजी हो तौ उसे " उत्तमा " नाम रोग कहते हैं यह शूकके जीर्ण नहीं होनेसे होता हैं ॥ १० ॥

(श्लो० ४) शूकैर्यत्पूरितमिति बहुभिः शूकैःशश्वत् यत् पूरितं तद्ग्रथितं भवति एकादिनांतरपूरणं प्रशस्तमिच्छन्तिकामतन्त्राचार्याः नित्याधिकशूकपूरणाद्ग्रथितनाम्नोरोगस्योत्पत्तिः । " कुंभीकेति " कुंभीफलमिव अयमपिदुष्टशूकावचारणात् भवति । (इति डल्लनः) ॥

(श्लो० ६) शूकदोषेजाते पीडितं सयत्संरब्धंसशोथं भवतितत्मृदितं । शूकदोषे पाणिभ्यां भृशसंमूढे पिच्चिते लिंगे संमूढपिडकाभवति अत्रापि वातकोपत इत्यनुवर्तते (इति भावमिश्रः) ॥

(श्लो० ७) अवमंथोपि स्थूलीकर्म शूककर्मापचारेणज्ञेयः ॥

(श्लो० ८) पद्मपुष्करं कमलकर्णिका एषापिस्वकर्मापचारजा ज्ञेया ॥

(श्लो० ९) शूकदूषित शूकेनदुष्टीकृतं शोणितम् ॥

(श्लो० १०) शूकानजीर्णीभूतायस्यानिमित्तजा रक्तपित्तकृताउत्तमाज्ञेया ॥

छिद्रैरणुमुखैर्यत्तु चितं मेढ्रं समंततः॥ वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥ ११ ॥ पित्तरक्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ॥ १२ ॥ कृष्णस्फोटैः सरक्तैश्च पिडकाभिश्च पीडितम्॥ यस्य वस्तिरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १३ ॥ मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥ १४ ॥

छोटे २ मुखवाले छिद्रोंसे लिंग इंद्रिय चारों तरफसे व्याप्त होतो इसे शत पोनक नाम शूक रोग कहतेहैं यह व्याधि वायु और रक्तसे होतीहै ॥ ११ ॥ लिंगकी त्वचा पित्त और रक्त विकारसे पकजाय ज्वर और दाह होतो इसे त्वक्पाक कहतेहैं॥ ॥ १२ ॥ जिसके काली और लाल अथवा रक्त सहित पिडकाओंसे इंद्रिय पीडित हो तथा वस्तिमें दारुण पीडा होतौ शोणितार्बुद जानो ॥ १३ ॥ और मांसके दोषसे इसी भांति मांसार्बुद होताहै ॥ १४ ॥

शीर्यंते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः॥ विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १५ ॥ विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्त मभिनिर्दिशेत् १६ कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि च॥ पातितानि पचंत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १७ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यंते यस्य देहिनः॥ सन्निपातसमुत्थानं तं विद्यात्तिलकालकम् ॥ १८ ॥

जिसका मांस गलकर विखरने लगे तथा सब दोषोंकी वेदना हो तो उसे संनिपातसे उपजा मांसपाक वैद्यको जानना चाहिये ॥ १५ ॥ विद्रधि को सन्निपातसे उपजी यथोक्त लक्षणोंसे जाने (विद्रधिके लक्षण पहले कह आये हैं) उसी भांति लक्षण सब दोषोंके जाने ॥ १६ ॥ जो काले और कबरे विषयुक्त शूकोंको योगमें डालते हैं तौ वे शीघ्रही समस्त मेढ्रको पका देते हैं और मांस काला होकर विखर जाता है तौ संन्निपातसे उपजा तिलकालक रोग जानो ॥ १७ ॥ १८ ॥

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः॥ विद्रधिश्च न सिध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १९ ॥

इति निदाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(श्लो० ११) शतपोनकः शूकदूषित वातशोणितजः॥ (श्लो० १२) त्वक्पाकः शूकदूषितपित्तरक्तकृतः ॥
(श्लो० १३) शोणितार्बुदं शूकदूषितरक्तेन भवति ॥ (श्लो० १४) मांसार्बुदं शूकदूषितमांसेन भवति ॥
(श्लो० १५) मांसपाकः शूकदूषितदोषत्रयेण ॥ (श्लो० १६) विद्रधिरयमपि पूर्वोक्तसन्निपातविद्रधितुल्यः ॥
(श्लो० १७ । १८) सविषकृष्णचित्रशूकदूषितसर्वदोषेण तिलकालकः ॥

इनमेंसे जो मांसार्बुद हो तथा मांस पाक हो तथा विद्रधि और जो तिलकालक रोग होजाय तो ये सिद्ध नहीं होते अर्थात् असाध्य हैं तथा इनके सिवाय साध्य हैं।

(वक्तव्य) इस समय लिंगवृद्धि और पुष्टि आदिके लिये शूक नामक कृमिके बरतावका प्रचार नहीं है इससे ऐसे शूक दोष नहीं होते परंतु हां इस समय भी कई मूढ तीक्ष्ण तिलेपट्टी आदिका बर्ताव अयोग्य करते हैं उससे अनेक उपद्रव होतेही हैं ॥ १९ ॥

इतिश्री सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः ।

अथातो भग्नानां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाडी भग्न (शरीरका अवयव भंग होने) के निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

पतनपीडनप्रहाराक्षेपणव्यालमृगदशनप्रभृतिरभिघातविशेषैरनेकविधम-स्थ्नां भंगमुपदिशंति तत्तुभंगजातमनुसार्य्यमाणं द्विविधमेवोत्पद्यते संधि-मुक्तं कांडभग्नंच ॥ १ ॥

ऊपरसे गिरने दबजाने चोट लगने तथा कूदने (फलाँकने) से तथा व्याल (हिंसक पशु) और मृग (पशुमात्र) के काटने (मुँहसे पकडकर खैंचने चबाने) आदिके अभिघातोंसे अनेक प्रकारसे अस्थि आदिका भंग होना वर्णन करतेहैं वह भंग हुवा स्थान अनुसरणके योग्य दोही प्रकारसे प्रतिपादन किया जासकता है (१) संधिमुक्त (किसी जोड परसे अलग होगयाहो) (२) कांडभग्न (वीचसे अस्थि भंग होगयाहो) ॥ १ ॥

संधिमुक्त ।

तत्र संधिमुक्तमुत्पिष्टं विश्लिष्टं विवर्तितमवक्षिप्तमतिक्षिप्तं तिर्यक् क्षिप्त मिति षड्विधम् ॥ २ ॥

इनमेंसे संधिमुक्त ६ छःप्रकारका होताहै १ उत्पिष्ट (जो दोनो भाग रगडे गयेहों पीसे गयेहों) २ विश्लिष्ट (जो टहलगयाहो अलग होगयाहो) ३ विवर्तित (संधि बराबरको हटजाय) ४ अवक्षिप्त (दोनों ओड संधि हटजाय) ५ अति-क्षिप्त (संधि और अस्थि दोनों हटजावें)६ तिर्यक्क्षिप्त (संधि अस्थि टेढाहोजावे)

(भग्न १) अत्र [illegible] भानेकः भंगश्च अत्र विशेषोऽभिमतः (भा०मि०) व्यालो हिंसकपशुः [illegible] मृगः पशुमात्रः (इतिशब्दस्तोमः) ॥

तत्र प्रसारणाकुंचनविवर्तना क्षेपणाऽशक्तिरुग्ररुजत्वं स्पर्शासहत्वंचेति सामान्यं संधिमुक्तलक्षणमुक्तम् ॥ ३ ॥

तिसमें पसारने सिकोड़ने हिलाबे (उठाने) रखने (टिकाने) की शक्ति न रहे और दारुण पीडाहो तथा स्पर्श सहा नहीं जाय ये संधिमुक्तके सामान्य लक्षण वर्णन किये गयेहैं ॥ ३ ॥

विशेषेणोत्पिष्टे संधावुभयतः शोफो वेदना प्रादुर्भावो विशेषतश्च नानाप्रकारावेदना रात्रौ प्रादुर्भवंति ॥४॥ विश्लिष्टेऽल्पशोफो वेदनासातत्यं संधिविक्रिया च ॥५॥ विवर्तिते तु संधिपार्श्वापगमनाद्विषमांगता वेदना च ॥६॥ अवक्षिप्ते संधिविश्लेषस्तीव्ररुजत्वं च ॥ ७ ॥ अतिक्षिप्ते द्वयोः संध्यस्थ्नोरतिक्रांतता वेदना च॥ ८ ॥ तिर्यक्क्षिप्ते त्वेकास्थिपार्श्वापगमनमत्यर्थं वेदनाचेति ॥ ९ ॥

विशेष करके उत्पिष्टमें दोनो तरफ संधिमें शोथ होता है और पीडा होती है और रात्रिमें अधिक पीडा उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥ विश्लिष्टमें थोड़ा शोथ होता है और निरंतर वेदना होती है और संधिमें विक्रिया अर्थात् संधि काम न दे ॥ ५ ॥ विवर्तितमें संधि बराबरकी तरफ चली जानेसे अंग टेढा होजाता है और पीडा होती है ॥ ६ ॥ अवक्षिप्तमें संधि दूर टहल जाती है और तीव्र वेदना होती है ॥ ७ ॥ अतिक्षिप्तमें दोनों संधियों और अस्थियोंमें अंतराय हो जाता है और पीडा होतीहै॥ ॥ ८ ॥ तथा तिर्यक्क्षिप्तमें एकतर्फका अस्थि टेढा होकर बराबरको चला जानेसे अधिक वेदना होती है ॥ ९ ॥

कांडभग्न ।

कांडभग्नमतऊर्ध्वं वक्ष्यामः । कर्कटकमश्वकर्णं चूर्णितं पिच्चितमस्थिच्छलितं कांडभग्नं मज्जानुगतमतिपातितं वक्रं छिन्नं पाटितं स्फुटितमिति द्वादशविधम् ॥ १० ॥

कांडभग्न (बीचसे अस्थि भंग) को यहांसे अगाड़ी कहते हैं कांडभग्न बारह प्रकारका होता है १ कर्कटक २ अश्वकर्ण ३ चूर्णित ४ पिच्चित ५ अस्थिच्छलित ६ कांडभग्न ७ मज्जानुगत ८ अतिपातित ९ वक्र १० छिन्न ११ पाटित १२ स्फुटित ॥ १० ॥

श्वयथुबाहुल्यं स्यंदनविवर्तन स्पर्शासहिष्णुतमवपीड्यमाने शब्दः स्रस्तांगता विविधवेदना प्रादुर्भावः सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभ इतिसमासेन कांडभग्नलक्षणमुक्तम् ॥ ११ ॥

कांडभग्नके सामान्य लक्षण-शोथ अधिक हो टहलाने हिलाने और स्पर्श (छूने) की सहिष्णुता (बरदाश्त) नहीं हों रगड़नेसे शब्द हों अंग शिथल हो जायं नाना प्रकारकी वेदना उत्पन्न हो सब प्रकार चैन नहीं पड़े संक्षेपतासे ये कांड भग्नके लक्षण है ॥ ११ ॥

विशेषतस्तु संमूढमुभयतोऽस्थिमध्यभग्नं ग्रंथिरिवोन्नतं कर्कटकम् ॥ १२ ॥ अश्वकर्णवदुद्गतमश्वकर्णम् ॥ १३ ॥ चूर्णितमस्थि तत्तु शब्दस्पर्शाभ्यां बोद्धव्यम् ॥ १४ ॥ पिच्चितं पृथुतां गमनमल्पशोफम् ॥ १५ ॥ पार्श्वयोरस्थिहीनोद्गतमस्थिच्छलितम् ॥ १६ ॥ चलेत प्रकंपमानं कांडभग्नत्वम् ॥ १७ ॥ अस्थ्यवयवोस्थिमध्यमनुप्रविश्य मज्जानमुन्नह्यतीति मज्जानुगतम् ॥ १८ ॥ अस्थि निशेषतश्छिन्न-मतिपातितम् ॥ १९ ॥ आभुग्नमविमुक्तास्थि वक्रम् ॥ २० ॥ अ-न्यतरपार्श्वावशिष्टं छिन्नम् ॥ २१ ॥ पाटितमणुबहुविदारितं वेदनावच्च ॥ २२ ॥ शूकपूर्णमिवाध्मातं विपुलं विस्फुटीकृतं स्फुटितंमिति ॥ २३ ॥

इनके विशेषतासे लक्षण कहते हैं-जो दोनो तरफसे अस्थि उठा हुवा बीचसे भंग हो गांठकी भांति उभरा हो उसे " कर्कटक " कहते हैं (इसका आकार कर्कट (ककेड़े) कासा होनेसे कर्कटक कहलाता है) ॥ १२ ॥ जो टूटा अस्थि घोड़ेके कानकी भांति ऊंचा होजाय उसे " अश्वकर्ण " कहते हैं ॥ १३ ॥ जो अस्थिका चूर्ण हो गया हो उसे शब्द और स्पर्श (छूने) से जान सकते है आस्थिका चूर्ण हो जाय तो उसे " चूर्णित " कहते हैं ॥ १४ ॥ जो चौड़ा होजाय और थोड़ा शोथ हो उसे " पिच्चित " कहते हैं ॥ १५ ॥ जो एकतरफ अस्थि नीचा होजाय और दूसरा टूटा भाग ऊंचा हो तो उसे " अस्थिच्छलित " कहते हैं ॥ १६ ॥ जो हिलानेसे चलायमान हो (टूटा मालूम दे) उसे कांडभग्न (हड्डीका डंडा टूटा समा) जाने ॥ १७ ॥ जो अस्थिका भाग दूसरे अस्थिमें प्रवेश हो जाय और अस्थिके भीतरकी मज्जाको बाहर निकाले तो उसे " मज्जानुगत " कहते हैं ॥ १८ ॥

जो निःशेष अस्थि कटजाय तो उसे " अतिपातित " कहते हैं ॥ १९ ॥ जो अस्थि टेढा होजाय परंतु टूटे नहीं उसे " वक्र " कहते हैं ॥ २० ॥ जो एक ओरसे कट जाय टूट जाय और एक तरफसे शेष रहे अर्थात् एक पार्श्वमेंसे कुछ बाकी रहे उसे " छिन्न " कहते हैं ॥ २१ ॥ जो थोडा या बहुत विदारित (फटा) हो उसमें वेदना हो उसे (पाटित) कहते हैं ॥२२॥ जो धान्यसे भराहुवासा बहुत फूला हो स्फूट न हो उसे स्फुटित कहते हैं ॥ २३ ॥

तेषु चूर्णितछिन्नातिपातितमज्जानुगतानि कृच्छ्रसाध्यानि कृशवृद्धबालानां क्षतक्षीणकुष्ठश्वासिनां संध्युपगतं च॥ २४ ॥

इनमेंसे चूर्णित छिन्न और अतिपातित तथा मज्जानुगत कृच्छ्र साध्य होते हैं और दुबले वृद्ध बालक तथा क्षत क्षीण मनुष्योंके तथा कुष्ठ रोगवालों और श्वास रोगवालोंके भी " कांडभग्न "कष्ट साध्य होताहै तथा जो कांडभग्न संधिके समीप या संधिमें हो वहभी कष्ट साध्यही होताहै (अथवा कृशादिकोंके संधिगत भग्नभी असाध्य होताहै)॥ २४॥

भवंति चात्र ॥ भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् ॥ जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तच्चिकित्सकः ॥ २५ ॥ असंश्लिष्टं कपालं तु ललाटे चूर्णितं च यत्॥ भग्नं स्तनांतरे शंखे पृष्ठे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ २६ ॥

कपालका अस्थि टूट गयाहो तथा (कमरका बांस टूट गयाहो) अथवा कमरकी संधि अलग होगई हो या छूट गईहो तथा जांघ पिसगई हों तो इन्हें चिकित्सक त्यागदे क्योंकि ये असाध्यहैं ॥ २५ ॥ कपालके अस्थि अलग होजायँ तथा मस्तकका चूर्ण होजाय तथा चूंचियोंके बीच (छाती) फटजाय अथवा कनपटी फटजाय तथा पृष्ठ वंश भग्न होजाय मूर्द्धा (दिमाग) भग्न होजाय तो इन्हेभी त्यागदे ॥ २६ ॥

आदितो यच्च दुर्जातमस्थि संधिरथापि वा ॥ सम्यक् संहितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुर्निबंधनात् ॥ २७ ॥ संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तत्तु वर्जयेत् ॥ २८ ॥

जो आरंभहीसे अयोग्य पैदा हुवेहों अस्थि और संधि तथा ठीक ठीक जोडे हुवे अस्थिभी अनुचित रखनेसे या अनुचित बंधनसे अथवा क्षोभसे जो विक्रिया (विकार और खराबी)को प्राप्तहो जांय तो इन्हेभी त्यागदे ॥ २७ ॥ २८ ॥

मध्यस्य वयसोवस्थास्तिस्रो याः परिकीर्तिताः ॥ तत्र स्थिरा भवेज्जंतु रूपकांतो विजानता ॥ २९ ॥

मध्यम आयुवाले (१६ से ४० वर्षतकके) मनुष्यकी तीन अवस्था वृद्धि-यौवन संपूर्णता वर्णनकीहैं इन अवस्थाओंमें मनुष्य स्थिर होताहै इन्ही अवस्थाओंमें भग्नकी चिकित्साके योग्य ठीक होताहै ॥ २९ ॥

तरुणास्थीनि नम्यंते भज्यंते नलकानि तु॥कपालानि विभिद्यंते स्फुटंति रुचकानि च ॥ ३० ॥

इति सुश्रुते निदानस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तरुण अस्थि अर्थात् नासिका कर्ण नेत्र इनके अस्थि तो नवजाया करतेहैं नीचे होजाते हैं तथा नलका (शाखाके अस्थि) टूट जाया करतेहैं तथा कपाल (नितंब कनपटी तालु ललाटके अस्थि) फटजाया करतेहैं और रुचक संज्ञक अस्थि (दांत) उखड या टूट या झड जायाकरते हैं और चकारके ग्रहणसे वलय संज्ञक अस्थिभी टूटतेहीहैं यह अस्थियोंकी जातिके अनुसार भग्न वर्णन किया है अस्थि पांचही ५ प्रकारके होतेहैं तरुण नलक कपाल रुचक और वलय इन्हे शारीरकस्थानमें देखो ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथातो मुखरोगाणां निदानं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी मुख रोगोंके निदानकी व्याख्या करते हैं ॥

मुखरोगाः पंचषष्टिः सप्तस्वायतनेषु तत्रायतनानि ओष्ठौ दन्तमूलानि दंताः जिह्वा तालु कंठः सर्वाणिचेति तत्राष्टावोष्ठयोः पंचदश दंतमूलेषु अष्टौ दन्तेष्वेकादश जिह्वायां नव तालुनि सप्तदश कंठे त्रयः सर्वेष्वायतनेषु ॥ १ ॥

मुखके सातों स्थानोंमें सब पैंसठ ६५ प्रकारके रोग होते हैं वे सात स्थान ये हैं १ होठ २ दंतमूल (मसूढे) ३ दांत ४ जिह्वा ५ तालु ६ कंठ ७ संपूर्णमुख इनमेंसे होठोंमें आठ रोग होते हैं और दाँतोंकी जड़ (मसूढोंमें) पंद्रा तथा दांतोंमें आठ और जिह्वामें पांच तालूमें नव तथा कंठमें सतरह और संपूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होते हैं ऐसे सब मिलकर ६५हुवे इनके लक्षण कहते हैं ॥१॥

होठरोग (८)

तत्रौष्ठप्रकोपा वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांसमेदोऽभिघातनिमित्ताः २

(श्लो० ३०) अस्थीनि च तरुण—नलक—कपाल—रुचक—वलयभेदात्पंच विधानि बोद्धव्यानि शारीरकस्थाने ॥

(गं० २) वृद्धवाग्भटे ओष्ठरोगेषु खण्डोष्ठोपि लिखितः यथा " तत्र खंडोष्ठ इत्युक्तो वा तेनोष्ठो द्विधा कृतः " इति ॥

इनमें ओष्ठ प्रकोप (होठके ८ रोग) वायुसे पित्तसे कफसे सन्निपातसे रुधिरसे मांससे मेदसे और अभिघात (चोट आदि लगने) से ॥ २ ॥

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुगन्वितौ। दाल्येते परिपुट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥ ३ ॥ आचितौ पिडकाभिस्तु सर्षपाकृतिभिर्भृशम्॥ सदाहपाकसंस्रावौ नीलौपीतौच पित्ततः ॥ ४ ॥ सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडकाभिरवेदनौ ॥ कंडूमंतौ कफाच्छूनौ पिच्छलौ शीतलौ गुरू॥ ५॥

खरधरे हों करडे हों ठिठरायेसे हों काले हों तीव्र पीडा हो विदीर्णसे होते हों फूटनसी हो तो जाने कि वातसे ओष्ठ रोग है ॥ ३ ॥ बहुतसी सरसों जैसी फुन्सियोंसे व्याप्त हो दाह पाक और स्राव युक्त हों नीले या पीले हों तो पित्तका ओष्ठ रोग जानो ॥ ४ ॥ त्वचाके वर्णकी फुन्सियोंसे व्याप्त हों वेदना अति न हो खाज हो शोथ हो मोटे हों शीतल और भारी होठ हों तौ कफकी व्याधि है ॥ ५ ॥

सकृत् कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च॥ संन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकाचितौ ॥६॥ खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभिः समाचितौ॥ रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ॥ ७॥ मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिंडवदुद्गतौ ॥ जंतवश्चात्र मूर्च्छंति सृक्कस्योभयतो मुखात् ॥ ८ ॥

कभी एकवार काले होठ होजांय कभी पीले और कभी सुपेद तथा अनेक भांतिकी फुन्सियोंसे व्याप्तहों तो सन्निपातका ओष्ठरोग जानो ॥ ६ ॥ खजूरके फलके रंगकी फुन्सियोंसे व्याप्त हों और जिनमें रक्तचमकहो तथा रुधिर झिरे तो रुधिरका ओष्ठ रोगहै ॥ ७ ॥ जो होठ भारीहों और मोटे हों तथा मांसके पिंडेकी भांति ऊपरको उठे हों और मुखसे दोनों तरफके ओष्ठ भागोंपर (बैठनेसे) जंतु मूर्च्छित होजातेहैं तो उसे मांसदुष्ट जनित ओष्ठरोग जाने ॥ ८ ॥

मेदसा घृतमंडाभौ कंडूमंतौ स्थिरौ मृदू ॥ अच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतोगुरू ॥९॥ क्षतजाभौ विदीर्येते पाट्येते चाभिघाततः॥ ग्रथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कंडूसमन्वितौ ॥ १० ॥

जो घृत तथा मंडके वर्णके हों खाजहो स्थिरहों कोमलहों और उनमेंसे सुपेद स्फटिक जैसी पीव झिरे और भारी हों तो मेददुष्ट जनित ओष्ठरोग होताहै ॥९॥ चोट लगीसी मालूम हो विदारणसे होगयेहों फटगयेसे हों गांठसी पडगई हो तथा खाजयुक्त हों तो यह अभिघातज ओष्ठरोग कहाहै ॥ १०॥

(श्लो० ८) सृक्कस्योभयतो मुखादिति मुखात् सृक्कस्य उभयतः जंतवो मूर्च्छंति सृक्के ओष्ठयोः प्रांतभागः (इति वाचस्पतिः) ॥

दंतमूल (मसूढोंके) रोग (१५)

दंतमूलगतास्तु शीतादो दंतपुप्पुटको दंतवेष्टकः शौषिरो महाशौषिरः पारिदरः उपकुशो दंतवैदर्भो वर्द्धनोऽधिमांसो नाड्यः पंचेति ॥ ११ ॥

दंतमूल (मसूढोंके) रोग इस प्रकारहैं १ शीताद २ दंतपुप्पुट ३ दंतवेष्टक ४ शौषिर ५ महाशौषिर ६ परिदर ७ उपकुश ८ दंतवैदर्भ ९ वर्द्धन १० अधिमांस और इनके सिवाय ५ नाडी (दंतनाडी अर्थात् नासूर) जैसे पहले दशवीं अध्यायमें नाडीका वर्णन होचुकाहै यथा वातसे पित्तसे कफसे संनिपातसे और शल्यसे ऐसेही दंतमूलमेंभी ५ प्रकारकी नाडीजानो इस प्रकार सब मिलकर १५ रोगहुवे ॥ ११ ॥

शोणितं दंतवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ दुर्गंधीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनिमृदूनिच ॥ १२ ॥ दंतमांसानि शीर्यंते पचंति च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ १३ ॥

जिसके मसूढोंमें अकस्मात् रुधिर निकले और मसूढे दुर्गंध युक्त हों काले पड जांय क्लेदित रहें और नरम हो जांय ॥ १२ ॥ तथा दांतोंकी जडका मांस गिरने लगे तथा परस्पर मसूढे पकने लगें तौ यह कफ और रक्तसे उपजी " शीताद " नाम व्याधि कहलाती है ॥ १३ ॥

दंतयोस्त्रिषुवायस्य श्वयथुः सरुजोमहान् ॥ दंतपुप्पुटकोज्ञेयः कफरक्त निमित्तजः ॥ १४ ॥ स्रवंति पूयरुधिरं चला दंता भवंति च ॥ दंतवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १५ ॥ श्वयथुर्दंतमूलेषु रुजावान् कफरक्ततः ॥ लालास्रावी स विज्ञेयः कंडूमान् शौषिरो गदः ॥ १६ ॥

जिसके दांतों मसूढों अथवा तालू सहित तीनो स्थानोंमें पीडा सहित महाशोथ हो तो कफ रक्तसे उपजा " दंतपुप्पुट " रोग जानना ॥ १४ ॥ जिसके मसूढोंसे पीब और रुधिर झिरे और सब दांत हिलजांय तौ वह दुष्ट रुधिरसे उपजा " दंत वेष्टक " रोग जानना चाहिये ॥ १५ ॥ मसूढोंमें पीडा युक्त शोथ हो खाजभी हो तथा मुंहसे लार गिरें तौ कफ रुधिरसे उपजा " शौषिर " नाम रोग जानने योग्य है ॥ १६ ॥

दंताश्चलंति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥ दंतमांसानि पच्यंते मुखंच परि पीड्यते ॥ यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञकः ॥ १७ ॥ दंतमांसानि शीर्यंत यस्मिन्ष्ठीवंति चाप्यसृक् ॥ पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरोहि स

जिसके दांत मसूढोंमेंसे हिलकर गिरने लगें और तालु वीदीर्ण हो (फट) जाय और मसूढें पक जांय तथा मुखमें अतिपीडा हो तो यह संन्निपातसे उपजी " महा-शौषिर " नाम व्याधि कहलाती है ॥ १७ ॥ जिसके मसूढें विदीर्ण होजांय और थूकनेमें खून आवे तौ पित्त कफ और रुधिरसे उपजी हुई " परिदर " नाम व्याधि जाननी चाहिये ॥ १८ ॥

वेष्टेषु दाहः पाकश्च तेभ्यो दंताश्चलंति च ॥ आघट्टिताः प्रस्रवंति शोणितं मंदवेदना ॥ १९ ॥ आध्मायंतेऽस्रुते रक्ते मुखं पूति प्रजायते ॥ यस्मिन्नु-पकुशः स स्यात्पित्तरक्तकृतो गदः ॥ २० ॥ घृष्टेषु दंतमूलेषु संरंभो जायते नृणाम् ॥ भवंति च चला दंताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ २१ ॥

मसूढोंमें दाह हो पकजांय और दांत हिलकर मसूढोंसे गिरने लगें और विना दबाये रगडे उनमेंसे रक्त निकले और मंद वेदना हो ॥ १९ ॥ और यदि रक्त नहीं निकले तो मसूढें फूल जांय और मुखमें दुर्गंध आवे यह पित्त और रुधिरसे उपजा " उपकुश " रोग है ॥ २० ॥ दांतोंकी जड को रगडनेसे संरंभ (शोथ) उत्पन्न होजावे और दांत हिलजावें तौ अभिघात (रगडा जाने) से उपजा "वैदर्भ" रोग जानो ॥ २१ ॥

मारुतेनाधिको दंतो जायते तीव्रवेदनः ॥ वर्द्धनः स मतो व्याधिर्जाते-रुक् च प्रशाम्यति ॥ २२ ॥ हानव्ये पश्चिमे दंते महाशोथो महारुजः ॥ लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ २३ ॥ दंतमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिताः ॥ २४ ॥

यदि वायुसे तीव्र वेदना युक्त और अधिक दांत (मसूढोंमें) पैदा हो जाय तौ उसे " वर्द्धन " कहते हैं इसमें अधिक दंत उत्पन्न होनेमें तो वेदना होती है और निकल आये पीछे वेदना शांत हो जाती है ॥ २२ ॥ हनु (ठोढी) के पिछली तरफके दांत (मूल) में भारी शोथ और पीडा होय मुँहसे लार गिरे तो कफका किया हुवा यह " अधिमांस " जानना चाहिये ॥ २३ ॥ मसूढोंकी जडमें पांच प्रकारकी नाडी (नासूर) होती हैं जैसे दशमाध्याय में नाडीरोग कहा है वातज पित्तज कफज सन्निपातज और शल्यज वैसेही यहां भी जानो (देश भाषामें इसे नाडीको आडिया कहते हैं) ॥ २४ ॥

(श्लो० २१) संरंभोऽत्र श्वयथुः (इति डल्हनः) ॥

(श्लो० २२) जाते अधिदंते संजाते सति रुक् प्रशाम्यति जायमाने वेदना भवति इति भावः ॥

(श्लो० २३) हानव्ये हनुभवे ।

(श्लो० २४) पंच नाड्यो यथेरिताः दशमाध्यायवर्णितास्तथैवात्र ज्ञेयाः ॥

दंतरोग (८).

दंतगतास्तु दालनः क्रिमिदंतको दंतहर्षो भंजनकः शर्करा कापालिका श्यावदंतको हनुमोक्षश्चेति॥ २५ ॥

दंतगत (दांतोंके) ८ रोग इस प्रकार होते हैं १ दालन २ क्रिमिदंत ३ दंतहर्ष ४ भंजनक ५ शर्करा ६ कापालिक ७ श्यामदंतक ८ हनुमोक्ष ॥ २५ ॥

दाल्यंते बहुधा दंता यस्मिंस्तीव्ररुगन्विताः ॥ दालनः स इति ज्ञेयः सदा गति निमित्तजः ॥ २६ ॥ कृष्णश्छिद्री चलः स्रावी ससंरंभो महारुजः ॥ अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः कृमिदंतकः ॥ २७ ॥ दशनाशीतमुष्णं च संहते स्पर्शनं न च ॥ यस्य तं दन्तहर्षं तु व्याधिं विद्यात्समीरणात् ॥ ॥ २८ ॥ वक्रं वक्रं भवेद्यस्मिन् दंतभंगश्च तीव्ररुक् ॥ कफवातकृतो व्याधिः स भंजनकं संज्ञितः ॥ २९ ॥

जिसमें दांत विदारणसे होतेहों और तीव्र पीडा युक्तहो वह " दालन " नामक दंत रोग जानना यह सदैव गतिके कारणसे होताहै ॥ २६ ॥ जो दांत काला पड जाय इसमे छिद्रहो हिलने लगजाय उससे मल निकल शोथ युक्तहो और वेदना अधिकहो और विना कारणके पीडा होजाय वायुसे यह "कृमिदंत" रोग जानना (अर्थात् दांतमें कीडा लगाहै ऐसा जानना) ॥ २७ ॥ जिसके दांत शीतल और गरम वस्तु तथा स्पर्शको नहीं सहसकें उसे वायुसे उपजी " दंतहर्ष " नाम व्याधि जानना ॥ २८ ॥ जिसमें मुँहका आकार टेढा होजाय और दांत टूटनेलगें तथा तीव्र वेदनाहो वह कफ वायुका किया हुवा " भंजनक " नाम रोग होताहै ॥ २९॥

शर्करेव स्थिरी भूतो मलो दंतेषु यस्य वै ॥ सा दंतानां गुणघ्नी तु विज्ञेया दंतशर्करा ॥ ३० ॥ दलंति दंतवल्कानि यदा शर्करया सह ॥ ज्ञेया कपालिका सैव दशनानां विनाशिनी ॥ ३१ ॥ योऽसृग्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दंतस्त्वशेषतः ॥ श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदंतकः ॥ ३२ ॥ वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ॥ हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३३ ॥

(श्लो० ३३) हनुमोक्षः वाग्भटेन भावमिश्रेणच दंतरोगेषुनपठितः परंच करालः दंतभेदश्चालश्च पठिताएवं वाग्भटेनच दंतरोगाःस्युः तेषांलक्षणानियथा दंतभेदे द्विजास्तोदभेदरुक्स्फुटनान्विता । चालश्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथैः । करालक्षण भावप्रकाशात् शनैः शनैः प्रकुरुते यस्यदंताश्रितोऽनिलः करालान् विकटान् दंतान् स करालोन सिध्यति इति ॥

जिसके दांतोंमें शर्करा (पथरी) की तरह मल जमकर होजाय वह दांतोंके गुण नाश करने वाली " दंतशर्करा " होती है ॥ ३० ॥ यदि उस शर्करा जमी हुईके साथ दांतोंकी फच्चटें गिरने लगें तो दांतोंके नाश करने वाली " कापालिका " नाम व्याधि जाननी चाहिये ॥ ३१ ॥ जो रुधिरसे मिले हुवे पित्त करके सारादांत भस्मसा होकर काला या नीला होजाय तो उसे " श्यावदंत " कहतेहैं उन उन भावों (कठिन चर्वण अति जृंभा आदि) करके वायुसे ठोडीकी संधि बिगड़ जाय तो उसे " हनुमोक्ष " रोग कहतेहैं इसमें अर्दित वायुकेसे लक्षण होतेहैं (यह व्याधि दांतोंमें पीडा करने वाली और दांतोंके समीप होनेसे दंत रोगमें कही है) ॥३२॥३३ ॥

जिह्वाके रोग (५)

जिह्वागतास्तु कंटकास्त्रिविधास्त्रिभिर्दोषैरलास उपजिह्विकाचेति ॥३४॥

जिह्वाके ५ रोग इस प्रकार हैं कि कंटक तीन प्रकारके तीनो दोषोंसे जैसे १ वात कंटक २ पित्तज कंटक ३ कफज कंटक ४ अलास ५ उपजिह्विका ॥ ३४ ॥

जिह्वारोगोंके लक्षण ।

जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ पित्तेन पीता परिदह्यते च चिता सरक्तैरपि कंटकैश्च ॥ ३५॥ कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोद्भवैः शाल्मलिकंटकाभैः॥ जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः॥ जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले तु जिह्वा भृशमेति पाकम्॥३६॥ जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः ॥ प्रसेककंडूपरिदाहयुक्ता प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥ ३७ ॥

वायुके दोषसे (कंटक) हों तो जिह्वा फटी हुई और सोई हुई सी अर्थात् सुन्नसी तथा शाकके पत्ते जैसी (खरधरी और पतली) मालूम होती है ॥ पित्तके दोषसे कंटक होतो जिह्वा पीली होती है और उसमें दाह होता है और रक्त युक्त कंटकों (मांसांकुरों)से व्याप्त होती है ॥ ३५ ॥ कफके दोषसे कंटक हों तो जिह्वा भारी मोटी और सिंभलके काँटों जैसे मांसांकुरोंसे व्याप्त होती है ॥ और जो जिह्वाके नीचे मोटा सोजा हो तो कफ रक्तकी मूर्ति अलास नामक जिह्वा रोग जानो और यह रोग बढकर जिह्वाको स्तंभितकर देता है और जड़मेंसे जिह्वापाकको प्राप्त हो

(श्लो० ३५) शाकः वृक्ष विशेषो महाखरपत्र लक्षणः॥ कंटकैः मांसांकुरैः ॥

(श्लो० ३६) अलासरोगे जिव्हास्तंभेन तु वायुरप्यास्ति तथाच मूलपाकेन पित्तमप्यस्ति अतएव सन्नि-पातिकत्वेनाऽसाध्यत्वं डल्हणमतात् (इति निबंध संग्रहः) ॥

जाती है (पक जाती है) ॥ ३६ ॥ जिसके जिह्वाके अग्रभागमें सोजा हो और जिह्वाको ऊपरको नवादेवे मुँहसे लार गिरे खाज और दाहसे युक्त हो तौ कफ रुधिरसे उपजा इसे " उपजिह्विका " नामक रोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

तालुरोग (९)

तालुगतास्तु गलशुंडिका तुंडकेर्य्यध्रुषो मांसकच्छपोऽर्बुदं मांससंघात-स्तालुपुप्पुटस्तालुशोषस्तालुपाक इति ॥ ३८ ॥

तालुके ९ रोग इस भांति होते हैं कि १ गलशुंडिका २ तुंडिकेरी ३ अध्रुष ४ मांसकच्छप ५ अर्बुद ६ मांससंघात ७ तालुपुप्पुट ८ तालुशोष और ९ तालुपाक ॥ ३८ ॥

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोफो ध्मातबस्तिप्रकाशः॥ तृष्णा-कासश्वासकृत्तं प्रदिष्टो व्याधिर्वैद्यैः कंठशुंडीति नाम्ना ॥ ३९ ॥ शोफः स्थूलस्तोददाहप्रपाकः प्रागुक्ताभ्यां तुंडिकेरी मता तु ॥ शोफः स्तब्धो-लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोध्रुषो रुग् ज्वराढ्यः ॥ ४० ॥

जो कफ रक्तसे उपजा हुवा तालुकी जड़से लेकर दीर्घ सोजा होताहै और भरी मशककी तरह तालु फूल जाताहै तृषा अधिक होतीहै तथा खाँसी और श्वास पैदा कर देताहै वैद्योंने इस व्याधिको " कंठशुंडी " (गलशुंडी) नामसे कहाहै ॥ ३९ ॥ जिसके तालुमें सोजाहो तालु भारीहो पीडा दाह और पाक हो तौ पूर्वोक्त कफ रुधिरसे उपजा " तुंडिकेरी " नाम रोग जानो ॥ और जिसमें करड़ा सोजाहो और तालु प्रदेशमें रक्तता अधिकहो दर्द और ज्वर करके युक्त हो तौ रुधिर विकारसे उपजा " अध्रुष " नाम रोग जानना ॥ ४० ॥

कूर्म्मोत्सन्नोऽवेदनो शीघ्रजन्मा ऽरक्तो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा स्यात् पद्माकारं तालुमध्ये तु शोफं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिंगम् ॥ ४१ ॥ दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च तोल्वंतस्थं मांससंघातमाहुः॥ नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यात् मेदोयुक्तात्पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ ४२ ॥

जो कछुवेकी भांति ऊपरको उठाहो वेदनारहितहो बहुत दिनोंमें पैदाहो लालवर्ण नहीं हो तौ कफसे उपजा " कच्छप " नाम रोग जानना ॥ जो कमलके आकार तालुके मध्यमें सोजाहो और उसमें पूर्वोक्त ग्यारहवीं अध्यायोक्त रक्तार्बुदके लक्षणहों तो रक्तसे उपजा " अर्बुद " रोग जानना ॥ ४१ ॥ और यदि तालुमें कफसे मांस दूषित हो वेदना रहितहो तो " मांससंघात " कहतेहैं ॥ तथा बडे बेरेक

समान स्थिर और वेदना रहित ग्रंथिसीहो तौ मेद युक्त कफसे उपजा "तालुपुप्पुट" रोग जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः श्वासो वातात्तालुशोषः सपित्तात् ॥ पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येनं तालुपाकं वदंति ॥ ४३ ॥

जिसमें अत्यंत शोष (तालुमें खुश्की) हो और तालु विदीर्णसा होताहो और श्वास हो तौ पित्त युक्त वायुसे उपजा "तालुशोष" रोग होताहै ॥ और यदि पित्त तालु प्रदेशमें अत्यंतपाक घोर रूप पैदा करे तौ उसे "तालुपाक" कहतेहैं॥४३॥

कंठरोग (१७)

कंठगतास्तु रोहिण्यः पंच कंटशालूकमधिजिव्हो वलयो वलास एकवृंदो वृंदः शतघ्नी गिलायुर्गलविद्रधिर्गलौघः स्वरघ्नो मांसतानो विदारी चेति ॥ ४४ ॥

कंठके १७ रोग इस प्रकारसे होते हैं कि रोहिणी ५ प्रकारकी १ वातरोहिणी २ पित्तरोहिणी ३ श्लेष्मरोहिणी ४ सन्निपातरोहिणी ५ रक्तरोहिणी ६ कंठशालूक ७ अधिजिह्व ८ वलय ९ बलास १० एकवृंद और वृंद ११ शतघ्नी १२ गिलाय १३ गलविद्राधि १४ गलौघ १५ स्वरघ्न १६ मांसतान और १७ विदारी ॥ ४४ ॥

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ॥ प्रदूष्य मांसं गलरोधिनोंकुरान् सृजंति यान् साऽसुहरा तु रोहिणी ॥४५॥ जिह्वां समंताद्भृशवेदना ये मांसांकुराः कण्ठनिरोधिनः स्युः ॥ तां रोहिणीं वातकृतां वदंति वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ताम् ॥ ४६ ॥ क्षिप्रोद्भवा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्ततः स्यात् । स्रोतोनिरोधिन्यपि मंदपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा वै ॥ ४७ ॥

गल प्रदेशमें वायु अथवा पित्त अथवा कफ तथा तीनों दोष अथवा रक्त मूर्च्छित होकर मांसमें दूषण उत्पन्न करके गलके रोकने वाले मांसके अंकुर पैदा कर देते हैं उसे रोहिणी कहते हैं यह रोहिणी शीघ्र मृत्युकारिणी है ॥ ४५ ॥ जो जिह्वाके आसपास दारुण वेदना वाले और कंठके रोक देने वाले और वायुके उपद्रवोंसे युक्त मांसके अंकुर हों तौ इसे वायुकी रोहिणी कहते हैं ॥ ४६ ॥ यदि शीघ्र उत्पन्न

(गद्य ४४) पूर्वोद्दिष्टकंठरोगाः सप्तदशवर्णिताः कथमष्टादश इत्याह डल्हनः एकवृंदो निर्देशानुरोधेनाख्या तरंभाशो वृंदत्वं प्रतिपद्यते अतो मूलोक्ता सप्तदशसंख्या विरुद्धतहाति जेज्जटमतम्। माधवकरतु एकवृंदे अष्टादश इत्येवमाह

(श्लो० ४५) आयुहराः शीघ्रमारका अथवा [illegible]हरा प्राणहराश्चेति ॥

होनेवाले और शीघ्रही विदाहको प्राप्त होने (जलन होने) वाले तथा शीघ्रही पकनेवाले अंकुर हों और तीक्ष्ण ज्वरभी हो तौ पित्तकी रोहिणी है । यदि गल आदि मार्ग रोकनेवाली मंद पकने वाली भारी स्थिर ऐसी कफकी रोहिणी होती है ॥४७ ॥

गंभीरपाका प्रतिवार्यवीर्या त्रिदोषलिंगा त्रयसंभवा स्यात् ॥ स्फोटाचिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मकेयम् ॥ ४८ ॥

जिसका पकाव गहरा हो तथा उसका बल निवारण करने योग्य न हो (तीक्ष्ण पीडा हो) और तीनों दोषोंके लक्षण हों तो त्रिदोषसे उपजी रोहिणी होती है ॥ तथा जिसमें बहुतसी फुंसियां हों और पित्तकी रोहिणीके समान लक्षण हों तो रुधिरकी रोहिणी समझनी चाहिये और यह असाध्य होती है ॥ ४८ ॥

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रंथिर्गले कंटकशूकभूतः ॥ खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कंठशालूकमिति ब्रुवंति ॥ ४९ ॥ जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वाप्रबंधोपरि रक्तमिश्रः ॥ ज्ञेयोधिजिह्वः खलु रोग एषः विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥५०॥ बलास एवायतमुन्नतं च शोफं करोत्यन्नगतिं निवार्य ॥ तं सर्वथैवा प्रतिवारवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥५१॥

बडे बेरकी गुठलीके बराबर कफसे उपजी ग्रंथिजो गलेमें हो और वह कांटे और तिनके जैसोंसे छाई हुईसीहो खरधरी या करडी और स्थिरहो तथा शस्त्र (नश्तर आदि) के अवचारसे साध्य होने योग्यहो (अर्थात् इतनी करडी और स्थिर हो कि शस्त्रके विना स्वयं नहीं फूटे) उसे " कंठशालूक " कहते हैं ॥ ४९ ॥ जिसमें जिह्वाके अग्रमें सोजाहो कफसे और जिह्वाके प्रबंध (मूल) पर रुधिरसे मिला हुवा रक्त वर्णका सोजाहो तो इसको " अधिजिह्व " नाम रोग जाने और जब यह पक जाय तब त्यागने योग्य होताहै ॥ ५० ॥ जब कफ (बढकर) फैला हुवा और ऊंचा सोजा पैदा करे और अन्नके भीतर जानेकी गतिकोरोक दे तौ उसे सर्वथा प्रतिकारके योग्य नहीं और त्यागने योग्य ऐसा " वलय रोग " कहते हैं॥ ५१ ॥

गले च शोफं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नं ॥ मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुः बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ५२ ॥ वृत्तोन्नतो यः श्वयथुः सदाहः कंड्वन्वितो ऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ॥ नाम्नैकवृंदः परिकल्पितोसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५३ ॥ समुन्नतवृत्तममंददाहं तीव्रज्वरं वृंदमुदाहरंति ॥ तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनोत्थजं तम् ॥ ५४

कफ और वायु बढकर गलेमें शोथ पैदाकरे और श्वास युक्तहो तथा मर्मका छेदन करनेवालाहो तौ निपुण वैद्य दुस्तर "बलास" संज्ञिक रोग उसे कहते हैं॥५२॥ जो गलेमें फैला हुवा और ऊंचा दाह युक्त खाज सहित बिना पकनेवाला मृदु (करड़ा) और भारी ऐसा सोजाहो तौ इस व्याधिको " एक वृंद " इसे नाम रोग कहते हैं और यह कफ और क्षतज (चोट लगने आदिके रक्त) से उत्पन्न होती है ॥ ५३ ॥ और यदि उठा हुवा और फैला हुवा तीक्ष्ण दाह युक्त जैसा हो और तीव्रज्वरभी हो तौ उसे वृंद कहते हैं इसे पित्त और क्षतज(चोट आदि) से उपजा जानना चाहिये और यदि इसमें चीस दरद हो तौ उसे वायु और रक्तसे उपजा जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

वर्तिर्घना कंठनिरोधिनीया चितातिमात्रं पिशितप्ररोहैः॥नानारुजोच्छ्राय-करी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीवशतघ्न्यसाध्या ॥५५॥ ग्रंथिर्गलेत्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोल्परुक् स्यात् कफरक्तमूर्तिः॥संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च सशस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः॥ ५६ ॥सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफोरुजो यत्र व संति सर्वाः॥स सर्वदोषोगलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५७ ॥

जो कंठमें कंठरोकने वाली गहरी बत्तीसी हो और मांसके अंकुरोंसे अत्यंत आच्छादित हो नाना प्रकारकी वेदना और उभार करने वाली हो तौ उसे " शतघ्नी " कहते हैं यह शतघ्नीकी भांति (जो लोहेकी तोप होती है उसके तुल्य) होती है और त्रिदोषसे उपजती हैं तथा असाध्य होती हैं ॥ ५५ ॥ गलेमें जो आवलेकी गुठलीके बराबर स्थिर और थोड़ी पीडा करनेवाली ग्रंथि हो और ऐसा मालुम हो जैसे गलेमें भोजनका ग्रास अटका हो तौ उसे कफ और रक्तकी मूर्ति " गिलायु " रोग जानना और यह गिलायु शस्त्रसे साध्य होने योग्य होता है ॥ ५६ ॥ जो समस्त गलेमें फैलकर सोजा उपजे और वेदना उसमें तीनों दोषोंकी हो तौ त्रिदोषसे उपजा " गलविद्रधि " नाम रोग होताहै यह गल विद्रधि पूर्वोक्त त्रिदोष विद्रधिके तुल्य होता है ॥ ५७ ॥

शोफो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वातगतेर्निहंता॥कफेन जातो रुधि-

---

(श्लो० ५६) अशनं सक्तं इव लक्ष्यते इति भोजनग्रासस्थितमिव लक्ष्यते इत्यर्थः ॥

(श्लो० ५७) तस्य सर्वजस्य पूर्वोक्त सन्निपात विद्रधि तुल्यः ॥

रोगान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ ५८ ॥ योऽतितमताम्यन्नुश्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकंठः॥ कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः सरोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५९ ॥

जो गलेमें अन्न और जलके रोकनेवाला बडा शोथ हो ज्वर युक्त हों तथा (उदान) वायुकी गतिका अवरोध करे तौ रुधिरसे मिले हुवे कफसे उपजा यह " गलौघ " नाम रोग वर्णन किया है ॥ ५८ ॥ जिसमें श्वास लेतेसमय अंधेरासा आवे और निरंतर स्वरभिन्न हो तथा कंठ सूख जाय और विमुक्त हो जाय (खुलासा) हो या विमुक्त कंठका अर्थ भोजन निगलनेमें स्वाधीन नहीं रहे और पवनके मार्गोंमें कफके उपलिप्त होनेपर श्वास वायुसे उपजा यह " स्वरघ्न " रोग जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण॥ स मांसतानः कथितोऽवलंबी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः॥ ६० ॥ सदाहतोदं श्वयथुं सरक्तमंतर्गले पूतिविशीर्णमांसम्॥ पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ ६१ ॥

जो फैला हुवा सोजा कष्टसाध्य रूप गलमें होकर गलेको क्रमसे बंधकरे और अवलंबनशील हो तौ त्रिदोषसे उपजा हुवा मांसतान नामक विकार कहाहै और यह प्राणोंका प्रेरक (दूर करने) वाला है ॥ ६० ॥ गलेके भींतर दाह और दर्द युक्त तथा रक्त युक्त सोजाहो और गलेमें दुर्गंधियुक्त मांस बिखरासा होजाय तौ इसे पित्तसे उपजी मुखमें विदारी जानो और यह विदारी रोग जिस करँवट मनुष्य अधिक सोताहै उस तरफ मुखमें विशेषतासे होतीहै ॥ ६१ ॥

सर्वमुखके रोग।

सर्वसरास्तु वातपित्तकफशोणितनिमित्ताः ॥ ६२ ॥

संपूर्ण मुखमें होनेवाले रोग इस प्रकारसे होते हैं कि वायुसे पित्तसे कफसे तथा रक्तसे ॥ ६२ ॥

(श्लो० ५८) वातगतेर्निहंता इति उदानवातगतेरवरोधकः इति भावमिश्रः अन्येच श्वासवायोर्गति हंता (इति) ॥

(श्लो० ५९) अतितम्यन् तमःपश्यन् । प्रसक्तं निरंतरं (इति डल्लनः)। शुष्कविमुक्तकंठः शुष्को विमुक्तो [illegible] कंठो यस्य स ग्रासं गिलितु मशक्तः इत्यर्थः। अनिलायनेषु कफोपदिग्धेषु इति वायु वर्त्मसु कफोपलिप्तेषु [illegible] ॥

(श्लो० ६१) स रोगी येन पार्श्वेन शेते मुखस्य तस्मिन्नेव पार्श्वे विशेषाद्विदारी भवतीत्यर्थः ॥

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समंताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ॥ रक्तैः सदाहैस्तनुभिः स पीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात् ॥ ६३ ॥ कंडूयुतैरल्परुजैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन रक्तेन पित्तोदित एक एवं कैश्चिन्प्रदिष्टो मुखपाकसंज्ञः ॥ ६४ ॥

इति निदाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

जिसका समस्त मुख दरदयुक्त फालकों से व्याप्त हो तो वह वायुका मुख रोग (मुखपाक है) यदि लालवर्ण के दाहयुक्त पतले पिलास वर्ण सहित फालक हों तौ पित्तका मुखपाक है ॥ ६३ ॥ जो खाज युक्त थोडी पीडा वाले सवर्ण (सुपेद) फालकों से व्याप्त हो तौ कफका मुख पाक है । और किसीनि रक्तका भी मुखपाक एक कहाहै उसमें पित्तहीके अनुसार होताहै (धन्वंतरजी तीनही प्रकारका) वात पित्त कफ का (ही मुखपाक कहते हैं) ॥ ६४ ॥

इन सबके डाक्टरी और यूनानीमें ठीक २ नाम प्रायः नहीं मिलते किसीका नाम मिलता या किसीका ठीक २ नहीं मिलता इसीसे नहीं लिखे उनकी हरएक की तजबीज और ढंग औरही प्रकारसे है ॥

(वक्तव्य) निदान स्थानमें जितने रोगोंका निदान वर्णन हुवा उससे यह नहीं समझना चाहिये कि सुश्रुत संहितामें इतने थोडेहीसे रोगोंका निदान है—नहीं बहुतसे रोगोंका निदान यहां वर्णन नहीं हुवा है उन सबका निदान चिकित्सित स्थान तथा उत्तर तंत्रमें यथायोग्य वर्णन होगा ॥ और हम जो रोगके निदानके साथ प्रायः डाक्टरी तथा यूनानीके मतसे नाम आदि लिखते हैं उसमें गडबड यह रहती है कि उनके अपनी रीतिपर संख्या और रोगको लक्षणादि और ही और ढंगसे हैं इससे कहीं २ किसी किसी रोगका लक्षण सहित ठीक नाम मिलजाता है किसीका किसी औरहीके साथ संबंध या अंतर्भाव समझा जाता है तो जिसके लक्षणोंमेंसे कुछ मिलता है कुछ नहीं या सभी नहीं मिलता या किसीके लक्षणोंमे वहुत भेद हैं या किसीके वर्णन करनेमें लेख बाहुल्य बहुतही होता है तौ ऐसी अवस्थामें उन्हे छोड दिया है यादि उनका ठीक २ वर्णन देखना हो तो उनकी पुस्तकोंसे देखो॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां निदानस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पूर्तिः ।

श्रीमन्मालवभूमिपालतिलकः शैलाननाधीश्वरो विद्याप्रेमनिधिर्विनीतिनिपुणः प्राज्ञोयशस्वी नृपः॥ नित्यं वृद्धिमियाद्यदाश्रितभिषग्वर्येणपूर्तिं गतं टीकायां मुरलीधरेणविदुषा स्थानं निदानं शुभम्॥ १ ॥

(अर्थ) श्रीयुक्त मालव प्रांतके राजाओंमें तिलक रूप शैलानन (सैलाना) के महाराज जो कि विद्या प्रेमके निधि और नीतिमें निपुण तथा विद्वान् हैं और यशस्वी अर्थात् जिनका नामधेय श्री १०८ यशवंतसिंह बहादुर है वे नित्य वृद्धिको प्राप्त हों कि जिनके समाश्रित राजवैद्य मुरलीधर पंडितसे यह सुश्रुत संहिताकी टीका का सुंदर निदानस्थान पूर्ण हुवा ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः सान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट भाषाटीकायां निदानस्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥



ॐ तत्सत्

सुश्रुतसंहितायाः

शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः सर्वभूतचिंताशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

निदानस्थाके अनंतर अब शारीरस्थान वर्णन किया जाता है इस शारीरक स्थानके आरंभमे सबभूतों (प्राणियों) (अथवा पृथिवी जल अग्नि वायु और आकाश) की चिंता (चिंतन अर्थात् ये कैसे पैदा हुवे इनके क्या २ कार्य हैं इत्यादि) शारीरकका प्रथम व्याख्यान करते हैं ॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानाम् ॥ १ ॥

सम्पूर्ण भूतों (पृथिवी अप् तेज वायु आकाश अथवा प्राणियों) का कारण सत्व रजतम (गुणत्रय) के लक्षणवाला तथा अष्टधा प्रकृतिरूप अव्यक्त नाम (मूल प्रकृति) अथवा (ब्रह्म) समस्त जगत् की उत्पतिका हेतु है और वह अव्यक्त स्वयं अकारण है अर्थात् उसका कोई कारण नहीं है वही सबका कारण है । वह एक अद्वितीय ब्रह्म असंख्य क्षेत्रज्ञों (जीवों) का आश्रय है जैसे असंख्य नदी

(गद्य० १)सर्वभूतानामिति पृथिव्यादीनां अथवा सर्वस्थावरजंगमानां सत्वरजस्तमोलक्षणं गुणत्रयात्मकं अष्टरूपं अष्टधाप्रकृतिरूपं इति प्रकृतिभावेनैवाव्यक्तं महानहंकारः पंचतन्मात्राणीति अष्टौ रूपाणि यस्य तत्तथा प्रकृतित्वं चाष्टानामव्यक्तादीनां सांख्ये प्रतिपादितं शिलापुत्रकन्यायेन रूपरूपित्वं च [illegible] महानहंकारः पंचभूतानीत्यष्टौ रूपाणीत्येके अपरे तु मनोबुध्यहंकारमहाभूतानि इत्यष्टौ भाषंते अखिलस्य जगतः संभवहेतुः अभिव्यक्तिकारणं श्रीब्रजगयदासाचार्यस्त्वन्यथा व्याख्याति यथा अखिलस्य जगतः संभवहेतुरित्यनेनोपादानकारणत्वं अव्यक्तस्य जगदुत्पत्तौ प्रतिपादितं अकारणं न कारणं यस्य तत् अविकृतिरूपं न [illegible] अव्यक्तं प्रकृतिः प्रधानं मूलप्रकृतिरितियावत् (इति डल्हनः) अपरे [illegible] शिवे च सांख्यमते सर्वकारणे प्रधाने रूपाद्यहीनतया [illegible] स्वभावस्थायां [illegible] निराकारे ब्रह्मणि च ॥ क्षेत्रज्ञानां [illegible] जानातीति क्षेत्रज्ञः "क्षेत्राख्यानि शरीराणि तेषांचैव यथासुखम् । आत्मानं वेत्ति [illegible] क्षेत्रज्ञ इत्युक्तो जीवात्मा क्षेत्रज्ञः ॥

नालोंका अधिष्ठान समुद्रहै अथवा "औदकानां भावानां" का अर्थ कई मत्स्य शंख पद्मादि ऐसा करतेहैं अर्थात् जैसे मत्स्य पद्मादिका अधिष्ठान समुद्रहै तैसे जीवोंका अधिष्ठान अव्यक्त समुद्रहै तात्पर्य यह है कि " अद्वैतवादी " जो जीव ब्रह्मको एक सजाती मानतेहैं वेतो औदक भाव समुद्रके सजातीय नदी नाले ऐसा अर्थ करतेहैं और "द्वैत-वादी" जो जीव ब्रह्मको पृथक् विजाती मानतेहैं वे मत्स्य शंखादि ऐसा अर्थ करतेहैं॥ १॥

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिंग एव तल्लिंगाच्च महतस्तल्लिंगएवाहं-कार उत्पद्यते स च त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति ॥ २ ॥

उस अव्यक्त (क्षेत्रज्ञोंके अधिष्ठान) से उसकिसे (सत्वरजतमोमय) लक्षणों वाला महत्तत्व(निश्चयात्मक बुद्धितत्व) उत्पन्न हुवा और उस अव्यक्त लिंग महत्तत्व (निश्चयात्मक बुद्धितत्वसे) अव्यक्तलिंग (सत्वरजस्तमस्वभाववाला) अहंकार (अहमिति अर्थात् मैंहू ऐसा अस्त्यात्मक ज्ञान) उत्पन्न हुवा वह तीन प्रकारकाहै १ वैकारिक (प्रकृतिका विकृत रूप विकारवाला) २ तैजस (तेजोमय स्वयंप्रकाश) ३ भूतादि (भूतोंका आदि कारण) और इसका यहभी अर्थ करते हैं कि वैकारि-कादि संज्ञा अहंकरकी पूर्व आचार्योंने व्यवहारके अर्थकी हैं अर्थात् वह अहंकार सात्विक राजस और तामस ऐसे तीन प्रकारका होताहै जहां वैकारिक (सात्विक तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) ऐसे जानना ॥ २ ॥

तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेंद्रियाण्यु-त्पद्यंते । तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसी-ति । तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः ॥ ३ ॥

(मन्त्र २) तस्मादिति तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठानात् अव्यक्तात् महानिति बुद्धितत्वं तत्तु सत्वं समुद्रात् निर्मल-स्फटिकोपलप्रख्यं चिच्छाया संक्रांतिप्राप्तचैतन्यपुरुषवज्ज्ञानात्मकमध्यवसेयविषयं निश्चितकारिणमित्यर्थः ॥ [illegible] तल्लिंग इति सत्वरजस्तमःस्वभावएव।तल्लिंगात् सत्वरजस्तमःस्वभावात् महतः इति बुद्धितत्वात् तल्लक्षणः सत्वरजस्तमःस्वभावएव अहंकारः अहमिति अभिमानव्यापारलक्षणः उत्पद्यते । सोऽहंकारः वैकारिकादिभेदेन त्रिविधः तत्र वैकारिकः प्रकृतेर्विकृतिरूपात्मकः तैजसः तेजोमयस्वयंप्रकाशरूपः भूतादिः भूतानामादिकारणरूपः इति शब्दार्थः अथवा वैकारिकादिसंज्ञास्तु पूर्वाचार्यैः सद्व्यवहाराय कृताः तत्र वैकारिकः सात्विकः तैजसः राजसः भूतादिः तामसः इति (नि० सं०)॥

(मन्त्र ३) तत्र वैकारिकादिति सात्विकादहंकाराद्राजससहायात् । तमो मात्रयानुबिद्धादेकादशेंद्रियाणि । उत्पद्यन्ते । तल्लक्षणानि प्रकाशलक्षणानि सत्वस्यप्रकाशत्वात्। (इति डल्हनः) । उभयात्मकमनः इति उभयात्मकं बुद्ध्यात्मकं कर्मात्मकं च ॥

तहां तैजसकी सहायता युक्त वैकारिक (सात्विक) अहंकार से सात्विक लक्षण वाली या प्रकाश लक्षणवाली एकादश ११ इंद्रिय उत्पन्न हुई वे ११ इंद्रिय इस प्रकार हैं कि श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा और घ्राण तथा वाणी हाथ लिंग गुदा और पाँव तथा मन इनमें पहले पांच ज्ञानेंद्रिय कहलाती हैं और उनके पिछाडीकी पांच कर्म इंद्रिय हैं और उभयात्मक (दोनों का अधिष्ठाता) ग्यारहवां मन है॥ ३ ॥

भूतादेरपि तैजससहायात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यंते तद्यथा शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गंधतन्मात्रमिति तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधास्तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः एवमेषां तत्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याताः ॥ ४ ॥

तैजस (रजोगुणी) युक्त भूतादि (तामस) अहंकारसे तामस लक्षणवाली (मोह लक्षणवाली) पांच तन्मात्रा उत्पन्न हुई यथा शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रा रूप तन्मात्रा रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा और उनके विशेष (अनुभव योग्य स्थूल विषय) शब्द स्पर्श रूप रस गंध यथा क्रम होते हैं (जैसे शब्दतन्मात्रासे शब्द और स्पर्श तन्मात्रासे स्पर्श इत्यादि) (तन्मात्रा अतिसूक्ष्म होते हैं और उनके विषय स्थूल होते हैं) और इन्हीं तन्मात्राओंसे यथा क्रम आकाश वायु अग्नि जल और पृथिवी यथा क्रम उत्पन्न हुए (शब्दतन्मात्रा से आकाश तथा स्पर्श तन्मात्रा से वायु रूपतन्मात्रासे तेज रस तन्मात्रासे जल और गंध तन्मात्रासे पृथ्वी ऐसे उत्पन्न हुए) इन्हीं को चौबीस तत्व वर्णन किया है (तन्मात्राओंमेंसे एक एककी वृद्धिसे आकाशादिकी उत्पत्ति हुई ऐसे भाष्यकारका मत है जैसे शब्द तन्मात्रासे शब्द गुणवाला आकाश उत्पन्न हुवा। और शब्दतन्मात्रा सहित स्पर्श तन्मात्रासे शब्द स्पर्श गुणवाला वायु। और शब्द स्पर्श तन्मात्रा सहितरूप तन्मात्रासे शब्द स्पर्शरूप गुणवाला तेज (अग्नि) उत्पन्न हुवा तथा शब्द स्पर्शरूप तन्मात्रा सहित रस तन्मात्रासे शब्द स्पर्शरूप और रसके गुणोंवाला जल तत्व उत्पन्न हुवा ऐसेही शब्द स्पर्शरूप और रस तन्मात्रा सहित गंध तन्मात्रासे शब्द स्पर्शरूप रस और गंधके गुणोंवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई) ॥ ४ ॥

तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषया कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचना

(गद्य ४) भूतादेरिति तामसादहंकारात् राजससहायात् सत्वमात्रानुबद्धात् पंचतन्मात्राण्युत्पद्यंते । तल्लक्षणानि मोहलक्षणानि तमसो मोहत्वात् । तन्मात्राणि सामान्येषु तानि शब्दादिपंचानां कारणीभूतानि अविशेषाणि । तेभ्यः पंचभ्यः शब्दतन्मात्रादिभ्यः एकोत्तरपरिवृद्ध्या व्योमाद्युत्पद्यंते यथा शब्दतन्मात्रात् शब्द गुणं व्योमशब्दतन्मात्रसहितात् स्पर्शतन्मात्रात् शब्दस्पर्शगुणो वायुः, शब्दस्पर्शतन्मात्रसहितात् रूपतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपगुणं तेजः, शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रसहितात् रसतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपरसगुणा आपः, शब्द स्पर्शरूपरसतन्मात्रसहितात् गंधतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपरसगंधगुणा पृथ्वी (इति भाष्यमतेन ह्रस्वः) ॥

दानानंदविसर्ग विहरणानि ॥५॥ अव्यक्तं महानहंकारः पंचतन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः शेषाः षोडशविकाराः ॥ ६ ॥

इनमें ज्ञानेंद्रियोंके तो शब्दादिक विषय हैं (जैसे श्रोत्रका विषय शब्द त्वचाका विषय स्पर्श चक्षुका विषय रूप जिह्वा (रसना) का विषय रस तथा घ्राणका विषय गंध है) और कर्मेंद्रियोंके विषय क्रमसे वचन ग्रहण आनंद मलत्याग और गमन ये विषय हैं (जैसे वाणीका विषय बोलना हाथोंका विषय पकड़ना लिंगका विषय मैथुन करना और गुदाका विषय मल और वायु त्यागना तथा पैरोंका विषय चलना है) ॥ ५ ॥ " अष्टधा प्रकृति " अव्यक्त महत्तत्व और अहंकार तथा पाँचों तन्मात्रा अर्थात् शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा ये आठ प्रकृति हैं (अर्थात् कारण भूत हैं) और शेष सोलह अर्थात् ग्यारह इंद्रिय और पाँच पृथिव्यादि महाभूत ये विकार हैं जैसे पूर्वोक्त श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा और घ्राण तथा वाणी हाथ लिंग गुदा और चरण तथा मन ये ग्यारह इंद्रिय और पृथ्वी अप् तेज वायु और आकाश ये पंचमहाभूत सब १६ सोलह मिलकर विकार हैं ऐसे सब २४ तत्व हुए ॥ ६ ॥

स्वः स्वश्चैषां विषयोऽधिभूतं स्वयमध्यात्ममधिदैवतं च यथा बुद्धेर्ब्रह्मा अहंकारस्येश्वरः मनसश्चन्द्रमाः दिशः श्रोत्रस्य त्वचो वायुः सूर्यश्चक्षुषोः रसनस्यापः पृथिवी घ्राणस्य वचसोऽग्निः हस्तयोरिंद्रः पादयोर्विष्णुः पायोर्मित्रं प्रजापतिरुपस्थस्येति ॥ ७ ॥

इन बुद्ध्यादिकके अपने अपने विषय अधिभूत कहलाते हैं और ये बुद्ध्यादिक स्वयं अध्यात्म कहलाते हैं और इनके अधिदैवत ब्रह्माको आदि लेके इस प्रकार हैं कि बुद्धि (महत्तत्वका अधिदैवत ब्रह्मा है और अहंकारका शिव मनका चंद्रमा श्रोत्र (कर्ण) का दिशा तथा त्वचाका वायु चक्षुका सूर्य जिह्वाका जल घ्राण (नासिका) का पृथ्वी वाणीका अग्नि हाथोंका इंद्र पैरोंका विष्णु गुदाका मित्र तथा लिंगका अधिदैवत प्रजापति है इन सबके अधिभूत और अध्यात्म तथा अधिदैवत

(गद्य ६) अव्यक्तमित्यादि प्रकृतय अपरेषां कारणभूताः अव्यक्तमिति विविधपाठात् केवलहेतु [illegible] बोधनार्थमिति डल्हनः अपरेत्वित्यत्राव्यक्तपदेनकालस्य ग्रहणं कुर्वन्ति । केचित् [illegible] ग्रहणं कुर्वंति । प्रकृतयस्तु कारण भूता विकाराः कार्यामित्यर्थः । षोडशविकारा यथ [illegible] चेति ।

(गद्य ७) स्वः स्वश्चैषा मिति एषां बुद्ध्यहंकारेन्द्रिय मनसां स्वस्वविषयोऽधिभूतसंज्ञकः स्वयमेतानि बुद्ध्या [illegible] अध्यात्मं ब्रह्मादयोऽधिदैवतम् । भूतानि अधिकृत्य वर्तते तदधिभूतं । आत्मानं शरीरसंबंधे [illegible] वर्तते तदध्यात्मम् । देवतमधिकृत्य वर्तते तदधिदैवतम् । अयं चाधिभूतादिभावो वेदांते [illegible] ॥

इस भांति जानने चाहियें कि बुद्धि अध्यात्म बोधव्य अधिभूत और ब्रह्मा अधिदैवत, अहंकार अध्यात्म अहंकर्तव्य अधिभूत और शिव अधिदैव, मन अध्यात्म संकल्प विकल्प कर्त्तव्य अधिभूत और चंद्रमा अधिदैवत, श्रोत्र अध्यात्म श्रोतव्य अधिभूत और दिशा अधिदैवत, त्वचा अध्यात्म स्पर्शनीय अधिभूत वायु अधिदैवत, चक्षु अध्यात्म दृश्य अधिभूत और सूर्य अधिदैवत, रसन अध्यात्म रसनीय अधिभूत और जल अधिदैवत, घ्राण अध्यात्म घ्रातव्य अधिभूत और पृथ्वी अधिदैवत, वाणी अध्यात्म वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदैवत, हाथ अध्यात्म आदातव्य (ग्रहण करने योग्य) अधिभूत और इंद्र अधिदैवत, पैर अध्यात्म और गंतव्य अधिभूत और विष्णु अधिदैवत, गुदा अध्यात्म विसर्जनीय (मलत्याग) अधिभूत और मित्र नामक देवता अधिदैवत, लिंग अध्यात्म आनंदनीय अधिभूत और प्रजापति नामक देवता अधिदैवत ॥ ७ ॥

तत्र सर्व एवाचेतन एषवर्गः पुरुषः पंचविंशतितमः सच कार्य्यकारण-संयुक्तश्चेतयिता भवति सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्ति-मुपदिशंति क्षीरादींश्च हेतूनुदाहरंति ॥ ८ ॥

तहां समस्त यह वर्ग (अव्यक्तादि २४ तत्व) चेतना से रहितहै और चेतना वाला पच्चीसवाँ "पुरुष" (जीवात्मा) है वह पुरुष कार्य (पंचमहाभूत पृथिव्यादिक और एकादश इंद्रिय) तथा कारण (अव्यक्तादिक अष्ट प्रकृति) इनसे संयुक्त होकर चेतनावाला (चैतन्य) होता है और अचैतन्य होनेपरभी पुरुष (जीवात्मा) की मोक्षके अर्थ प्रधान (अव्यक्त) की प्रवृत्ति होती है ऐसे आचार्य उपदेश करते हैं और अचैतन्य की प्रवृत्ति क्योंकर होसकती है इसमें दुग्धादिक की प्रवृत्तिके हेतुका उदाहरण देतेहैं (कि जैसे दुग्ध चेतनारहित जड) होकर भी वत्सादिकके प्रेम संबंधसे प्रवृत्त होता है चलायमान हो टपकने लगताहै इसी प्रकार शुक्र भी अचैतन्य होकर स्त्रीके संभाषणादि से प्रवृत्त होता है तथा जल अचैतन्य होकर अग्निके संयोग से स्थालीगत वेगवान् होने लगता है उफनने और शब्द करने में उसकी प्रवृत्ति होती है इत्यादि यहां भावमिश्र कहते हैं कि ॥ ८ ॥

(गद्य ८) तत्र सर्व इत्यादि सर्व एष वर्गोऽव्यक्तादिकोऽचेतनः कारणस्याव्यक्तस्याचेतनत्वेन तत्कार्यस्य महदादेरचेतनत्वात् कार्यकारणसंयुक्तः पुरुषश्चेतयिता भवति । तस्य पुरुषस्य कैवल्यार्थं प्रधानस्य मूलप्रकृतेरव्यक्तस्य प्रवृत्तिमुपदिशन्त्याचार्याः । एवं चतुर्विंशतिभिरिति प्रकृतयोऽष्टौ विकाराः षोडशेति चतुर्विंशतिः [illegible] तैः सिद्धे शरीरात्मके गृहे नियतोनित्यः शुभाशुभकर्मफलसमाधीनो जीवात्मा स्वान्तर्भूतकर्म [illegible] वसति ॥

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्वे सिद्धे वपुर्गृहे ।
जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसति स्वांतदूतवान् ॥

अर्थ-इस प्रकार चौबीस तत्वोंकेरके सिद्ध किये (रचे हुवे) शरीर रूपी घर में नियति (कर्मों) के आधीन हुवा मन रूप दूतवाला जीवात्मा पुरुष वास करताहै

अत ऊर्द्ध्वं प्रकृति पुरुषयोः साधर्म्यवैधर्म्ये व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाडी हम प्रकृति और पुरुषके साधर्म्य और वैधर्म्यका व्याख्यान करतेहैं

साधर्म्य ।

तद्यथा उभावप्यनादी उभावप्यनंतौ उभावप्यलिंगौ उभावपिनित्यौ उभावप्यपरौ उभौ च सर्वगताविति ॥ ९ ॥

वह इसप्रकारहै कि दोनो प्रकृति और पुरुष अनादिहैं तथा दोनोही अनंतहैं और दोनोही आलिंग (चिन्ह रहित) हैं तथा दोनोही नित्य (अविनाशी) हैं और दोनोही अपरहैं अर्थात इनसे परे कोई और नहीं है तथा दोनोही सर्वव्यापी हैं यह तो इनमें साधर्मता समान धर्मत्वहै ॥

इनका वैधर्म्य कहतेहैं ।

प्रकृति और पुरुषके पृथक् २ लक्षण ।

एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिणी अमध्यस्थधर्मिणी चेति । बहवस्तु पुरुषाश्चेतनावंतोऽगुणा अबीजधर्मिणोऽप्रसव धर्मिणो मध्यस्थधर्मिणश्चेति ॥ १० ॥

अव्यक्तात्मक मूल प्रकृति एकहै चेतना रहित है सत्व रज और तम ऐसे तीनों गुण वालीहै समस्त पदार्थ बीज रूप होकर प्रलयमें इसीमें स्थित होतेहैं इससे यह बीज धर्मवाली है और इसीमेंसे सब उत्पन्न होते हैं इससे यह प्रसव धर्म वाली है यह सुखादिक भोग भागिनी है इससे मध्यस्थ धर्मवाली (उदासीन)

(गद्य० ९) उभौ प्रकृतिपुरुषौ अलिंगौ न विद्यतेलिंगं ययोस्तौ नित्यौ क्वचिदपि लयं नाशं न गच्छतः अपरौ न परो याभ्यां इति । सर्वगौ सर्वं व्याप्यास्थितौ ।

(गद्य १०) प्रकृतिस्तु अव्यक्तपरपर्याया मूलप्रकृतिरेकाशून्यमया । त्रिगुणा सत्वरजस्तमोगुणा बीजधर्मिणी इति सर्वेषां महदादिविकाराणां बीजभावेनावस्थिता । बीजधर्मिणीत्युच्यते गयदासाचार्यस्तु संहारे भूतेंद्रियतन्मात्राहं कारमहदादीनामाधारभूतेति बीजधर्मिणी सैव सिसृक्षुणा विभुना पुरुषेण सार्द्धं क्षोभमानस्य सास्यावस्थाने प्रच्युता महदहंकारादिक्रमेण [illegible] जगतः प्रसवित्रीत्वात् प्रसवधर्मिणीत्युच्यते (नि. सं.) अमध्यस्थधर्मिणी सुख-दुःखमोहभागिनी न तु सुखदुःखमोहादुदासीना (इति मातामिश्रः) ॥

पुरुषा जीवात्मत्वेनासंख्याता परमात्मत्वेन पुरुषोप्येकएवेति नैय्यायिकाः । पुरुषे अबीजधर्मित्वं महाप्रलयेमह-दादिविकाराणां प्रकृताविव [illegible] । मध्यस्थधर्मित्वं सुखदुःखेच्छादिशून्यत्वात् तथा चोक्तं सांख्ये तस्मा [illegible] साक्षित्वमस्यपुरुषस्य कैवल्यमाध्यस्थं द्रष्टृत्वमकर्तृभावाश्चेति (निबंध संग्रहः)

नहीं है किंतु अमध्यस्थ धर्मवाली है ॥ पुरुष (आत्मा) जीवरूप होकर अनेक (बहुत असंख्य) हैं और चेतनावाले हैं सत्व रज और तम इन तीनों गुणोंसे रहित हैं और अबीज धर्मी हैं (अर्थात् बीज रूप होकर कोई पदार्थ जीवात्मामें नहीं रहते प्रकृतिमें रहतेहैं इससे यह आत्मा पुरुष बीजधर्मी नहीं है किंतु अबीज धर्मी है) और पुरुष अप्रसव धर्मी है (अर्थात् पुरुष आत्मामेंसे कुछ उत्पन्न नहीं होता इससे यह प्रसवधर्मी नहीं है किंतु अप्रसव धर्मवाला है) तथा मध्यस्थ धर्म वाला है अर्थात् सुख दुःखादिमें उदासीन रूप मध्यस्थकी भांति है सुख दुःखादिको प्रकृतिही भोगतीहै प्रकृति विना जीवको सुख दुःखादि नहीं होते ॥ १० ॥

तत्र कारणानुरूपं कार्यमिति कृत्वा सर्वे एवैते विशेषाःसत्वरजस्तमोमया भवंति तदंजनत्वात्तन्मयत्वाच्च तद्गुणा एव पुरुषा भवंती त्येके भाषंते ॥ ११ ॥

कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि कारणके अनुरूप कार्य होता है ऐसा मानकर ये समस्त विशेषरूप विकार (महदादि भूतादि) भी सत्व रज और तमोगुणमय होते हैं तो "तदंजनत्वात्" अर्थात् सत्व रज तमो व्यक्तिवाले होनेसे और तन्मय होनेसे पुरुष (आत्मा) भी तद्गुण अर्थात् तीनों गुणवाले (सत्वरज और तमो गुणवाले) होते हैं जैसे तडागस्थ जलमें पड़ा हुवा चंद्रमाका प्रतिबिंब वह जलके कंपन विकारसे कंपायमान प्रतीत होता है वैसेही प्रकृतिके संयोगसे आत्माभी तद्गुणवाला प्रतीत होता ह अर्थात् सत्वादि गुणयुक्त प्रकृति (महत्तत्व अहंकार और महाभूत) इनके प्रतिबिंबरूप अत्माभी सत्वादि गुणयुक्त प्रतीत होता है और सुखी दुःखी मूढ ऐसा जाना जाता है ॥ ११ ॥

वैद्यकेतु ॥ स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छा नियतिं तथा।।परिणामं च मन्यंते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः ॥ १२ ॥

(गद्य ११) विशेषाः महदादिप्रकाराः । तदंजनत्वात् इति तेषांसत्वरजस्तमसां अंजनव्यक्तिर्वा येषु तस्मात् तन्मयत्वात् सत्वादिमयत्वात् पुरुषाः तद्गुणसत्वरजस्तमोगुणा भवंतीत्येके यथातडागोदकेप्रतिबिंबितो [illegible] गोदकप्रकंपनेन प्रकंपात्मकः कथ्यते एवं सत्वादिरूपे महदादौ प्रतिबिंबिताः पुरुषाः सत्वादिमया भवंति न तु वास्तव सत्वादिमयत्वात् तादृशाच्चतन्मयत्वात् तल्लक्षणानि तद्गुणाः सुखिनो दुःखिनो मूढाश्चपुरुषा भवंति (इति हल्लनः)

(गद्य १२) अत्रैके स्वभाववादिनः स्वभावः सर्वस्य कारणमित्यूचुः तथाहि कः कंटकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं चित्रं विचित्रं मृगपक्षिणां च।माधुर्यमिक्षोः कटुकोमरीचेः स्वभावतःसर्वमिदं प्रवृत्तम्।इति ईश्वरवादिन एवमाहुःईश्वरएव उर्वीपर्वततर्वादिजंतूनां स्वर्गनरकादेश्च कारणं इति । केचिदित्याहुःकालवादिनः काल एवजगतः [illegible] निमित्तमिति । यदृच्छवादिनश्चेत्याहुः यो यतो भवतितत्तुतन्निमित्तमिति यथा [illegible] जितौ धर्माऽधर्मौ नियतिः सैवसर्वस्यकारणमिति नियतिवादिनः । केचिदित्याहुः [illegible] सर्वस्यनिमित्तमितिपरिणामवादिनः। वस्तुतस्तु ते च स्वभावादयोपि समुच्चयेन जगदुत्पत्तौ कारणभूताः तथापि प्रकृति परिणामस्योपादानकारणत्वं स्वभावादीनां पंचानां निमित्तकारणत्वमिति ईश्वरश्च पंचविंशतितमः पुरुषः प्रकृतेःक्षोभक तया कारणत्वेनोदाहृतएव (इति निबंधसंग्रहः) ॥

वैद्यक शास्त्रमें तो ॥ स्वभावको ईश्वरको कालको यदृच्छाको और नियतिको तथा परिणामको दीर्घ दर्शी विद्वान् लोग ऐसे छः प्रकार प्रकृति मानते हैं अर्थात् कोई स्वभावहीको प्रकृति मानते हैं कि जो जिसका स्वभाव हैं वह वैसाही होता है और कोई ईश्वरहीको मुख्य मानते है कि ईश्वरही सबका कारण है और कोई कालहीको मानते हैं कि कालपाकरही संसार पैदा हो कालपाकरही नष्ट होता है और कोई यदृच्छा होनहारहीको मानते हैं कि जैसा भवितव्य हो वैसाही होता है और कोई नियति पूर्व जन्मार्जितादि शुभाशुभ कर्मोंहीको मानते हैं कि जैसा कर्म होता है उसीके अनुसार सब कुछ होता है तथा कोई परिणामही को मुख्य मानते हैं कि अव्यक्तादि सब परिणाम पाकरही जगत्के कारण रूप होते हैं ॥१२॥

तन्मयान्येव भूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत् ॥ तैश्च तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्रामो व्यजन्यत ॥ १३ ॥ तस्योपयोगोऽभिहितश्चिकित्सा प्रति सर्वदा ॥ भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्तिचिन्ता चिकित्सिते ॥ १४ ॥

भूत आकाश आदि तन्मय अर्थात् प्रकृतिके परिणाम (उष्ण द्रव शीत घन खर मृदु आदि) मय हैं और तद्गुण हैं उसीके गुणवाले हैं अर्थात् सत्व रज और तमोगुण वाले हैं (जैसे सत्व बहुलमाकाशं तमो बहुला पृथ्वी इत्यादि) इससे समस्त भूत ग्राम (स्थावर जंगम रूप संपूर्ण जगत्) उन (शीतोष्ण द्रव घन आदि तथा सत्व रज तम) लक्षणों युक्तही उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ उस पंच महाभूतारब्ध भूत ग्राम का उपयोग प्रयोजन ही चिकित्साके प्रति (इस चिकित्सा शास्त्रमें रोग नाशके प्रति) वर्णन किया गया है इसीसे चिकित्सित (चिकित्सा विषय) में भूतों (पंच महा भूतों पृथिवी अप् तेज वायु आकाश और इनके कार्य्यों) से परे अव्यक्त अदृष्ट आदि की चिंता (विचार और मीमांसा) नहीं है अर्थात् नहीं हो सक्ती है ॥ १४ ॥

यतोऽभिहितं तत्संभवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तः भौतिकानि चेंद्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यंते तथेंद्रियार्थाः ॥ १५ ॥

(श्लोक १३) तन्मयान्येवेति चलोष्णद्रवखरस्वभावादिधर्मविशेषाक्रांतप्रकृतिपरिणाममयानि । भूतानीति आकाशादीनि । तद्गुणानिचेति सत्वरजस्तमोगुणानि यथा सत्वबहुलमाकाशं तमोबहुला पृथ्वीत्यादि । भूतग्रामः स्थावरजंगमात्मकः । तल्लक्षणः स्थिरगुरुकठिनादिलक्षणः । (नि. सं.) ॥

(श्लोक १४) तस्य पंचमहाभूतारब्धस्य भूतग्रामस्य परस्परोपकार्योपकारणत्वेन व्यवस्थितस्य । उपयोगः प्रयोजनम् । अभिहितः कथितः । चिकित्सांप्रति रोगापनयनंलक्ष्यीकृत्य। स्पष्टार्थे चिकित्सां प्रतितस्यभूतग्रामस्य उपयोगः सर्वदा अभिहितः इति यस्मात् भूतेभ्यः परं चिकित्सिते चिंता नास्ति ॥

(सत्र १५) तत्संभवद्रव्यसमूहो महत्तत्वादि (बुद्ध्यादि) आकाशादिकः एव भूतादिरुक्तः यतोऽभिहितमायुर्वेदे भौतिकानींद्रियाणि इन्द्रियार्थाश्चवर्ण्यन्ते । डल्हनस्त्वन्यथा व्याख्याति यथा यतः तस्य पुरुषस्य संभवद्रव्याणि शुक्रशोणितादीनि तेषां समूहः संयोगविशेषः भूतादिः भूतप्रभृत्यादिकं आदिमूलकारणं यस्यसः तथा न परं पुरुषसंभवं द्रव्यस्य भूतादित्वाभिधानात् भूतेभ्यः परंचिंता नास्ति इति ॥

उस अव्यक्तसे उत्पन्न हुवा द्रव्यसमूह (महदादि बुद्ध्यादि और व्योमादि) वही भूतादि वर्णन किया है इससे वैद्यक शास्त्रमें वही महदादिक (महत्तत्व अहंकार पृथिवी जल तेज वायु आकाश और सत्व रज तम) ही अभिहित (वर्णित) है तथा भौतिक इंद्रिय (श्रवण स्पर्शन दर्शन रसन और घ्राण) तथा इंद्रियार्थ (शब्द स्पर्श रूप रस गंध) इनका वर्णन होता है ॥ १५ ॥

भवति चात्र ॥ इंद्रियेणेन्द्रियार्थंतु स्वंस्वंगृह्णाति मानवः ॥ नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमिति स्थितिः ॥ १६ ॥

यहां पर श्लोक है कि मनुष्य इंद्रियसे नियत उसी उसके अर्थको समान योनि होनेसे ग्रहण करता है अर्थात् श्रोत्र इंद्रियसे उसके तुल्य योनित्व करके नियत शब्दको ग्रहण करता है और त्वचासे स्पर्शको चक्षुसे रूपको रसनासे रसको और घ्राणसे गंधको ग्रहण करताहै क्योंकि आकाशकी इंद्रिय श्रोत्र है और गुण शब्द है इसी तरह वायुकी इंद्रिय त्वचा और गुण स्पर्श है तथा तेजकी इंद्रिय चक्षु और गुण रूप है तथा जलकी इंद्रिय रसना और गुण रस है और पृथ्वीकी इंद्रिय घ्राण और गुण गंध है इसीसे सजातीय अपने सजातीय को ग्रहण करता है और अन्यसे अन्यको ग्रहण नहीं करता यही सिद्धांत है ॥ १६ ॥

नचायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञाः नित्याश्च असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्येषु पुरुषव्यापकान् हेतूनुदाहरंति ॥ १७ ॥ आयुर्वेदशास्त्रेष्व-सर्वगता क्षेत्रज्ञा नित्याश्च तिर्यग्योनिमानुषदेवेषु संचरंति ॥ १८ ॥ धर्माधर्मनिमित्तम् तएतेऽनुमानग्राह्याः परमसूक्ष्मा श्चेतनावंतः शाश्वतालोहितरेतसोः संनिपातेष्वभिव्यंज्यंते ॥ १९ ॥ यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरसमवायः पुरुष इति सएवकर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः ॥ २० ॥

आयुर्वेदके शास्त्रोंमें क्षेत्रज्ञों (जीवों) को सर्वगत (सर्वव्यापी) नहीं कहते हां नित्य कहते हैं (क्योंकि जो जीव सर्वव्यापी होता तो एकका सुख दुःख सबको होता ऐसा नहीं होने से जीव सर्व व्यापी नहीं है) परंतु हां जीव नित्य है असर्वगत

(श्लोक १६) तुल्ययोनित्वात् इति एकभूतहेतुत्वात् भूतं हि स्वयोनिमेवाभिधावति ॥

(गद्य १७) असर्वगता इति नसर्वव्यापिनः किंत्वेकशरीरव्यापिनः ॥

(गद्य १९) एते क्षेत्रज्ञाः जीवात्मानःपरसूक्ष्मा अतएवानुमानग्राह्याः नतु प्रत्यक्षप्रमाणेन कथंचिदपि ग्राह्याः इत्यर्थः । शाश्वतानित्याः ॥

(गद्य २०) पंचमहाभूतानांशरीरिणः समवायः संयोगः पुरुषः इत्यभिहितम् । सएवकर्मपुरुषः कर्मफलभागीत्यर्थः । चिकित्सायांअधिकृतःगृहीतः ॥

(एक देशी एक शरीर व्यापी) जीवोंमें नित्य पुरुष व्यापक (कहने वाले) हेतुओंको दिखाते हैं ॥ १७ ॥ आयुर्वेद शास्त्रके मतमें असर्वगत (एक देशीय) जीव नित्य हैं वे धर्म और अधर्म का निमित्त पाकर तिर्यग् योनि (पशुकीटादि) तथा मनुष्य देह तथा देव शरीरोंमें विचरते हैं ॥ १८ ॥ ये परम सूक्ष्म जीवात्मा अनुमान से ग्रहण किये जाते हैं (प्रत्यक्षतासे ग्रहण नहीं किये जासक्ते) ये चेतना वाले (चैतन्य) हैं शाश्वत अर्थात् नित्य हैं और माता पिताके रजवीर्यके संयोगसे प्रगट होते हैं ॥ १९ ॥ इसीसे पंच महाभूत और शरीरि (आत्मा) के संयोग को पुरुष कहा गया है और यही कर्म पुरुष चिकित्सामें अधिकार किया गया है (चिकित्सा में ग्रहण किया है)॥ २० ॥

तस्य सुखदुःख इच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानावुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः संकल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः २१

उस कर्म पुरुषके ये १६ गुण हैं (१) सुख (२) दुःख (३) इच्छा (४) द्वेष ५ प्रयत्न ६ प्राण (स्वासलेना) ७ अपान (अधो वायुनिःसारण) ८ उन्मेष निमेष (नेत्रोंको खोलना मीचना) ९ बुद्धि १० मन(इंद्रियोंकी प्रेरणात्मक शक्ति) ११ संकल्प (कल्पना) १२ विचारणा (सोचना) १३ स्मृति (याद करना) १४ विज्ञान (चातुर्य) १५ अध्यवसाय (व्यवसाय) १६ विषयोपलब्धि (शब्द स्पर्श आदिको ग्रहण करना) ॥

सात्विक राजस और तामस (जीवोंके) मनके गुण ।

सात्विकास्तु आनृशंस्यं संविभागरुचिता तितिक्षा सत्यं धर्म आस्तिक्यं ज्ञानं बुद्धिर्मेधास्मृतिधृतिरनभिषंगश्च ॥ २२ ॥ राजसास्तु दुःखबहुलताऽटनशीलताऽधृतिरहंकार आनृतिकत्वमकारुण्यं दम्भोमानोहर्षः कामः क्रोधश्च ॥ २३ ॥ तामसास्तु विषादित्वनास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञानं दुर्मेधस्त्वमकर्मशीलता निद्रालुत्वं च ॥ २४ ॥

(गद्य २१) इदानीं तस्यैवपुरुषस्यशरीरात्मनोसंयोगं कारकेण मनसासंयोगे ये गुणाउत्पद्यंतेतानाहतस्येत्यादि । सुखंअनुकूलवेदनीयम् । दुःखंप्रतिकूलवेदनीयम् । प्रयत्नः उद्योगः । उन्मेषनिमेषः नेत्रयोः उन्मीलननिमीलनम् अध्यवसायः बुद्धेर्व्यवसायः । विषयोपलब्धिः शब्दादीनांस्वैःस्वैरिंद्रियैर्ग्रहणम् । ननु षोडश गुणाः कथिताः कथमत्र [illegible] संख्यागुणानामित्यत्र केचित्तु उन्मेषनिमेषावित्येकं पठंतिकेचित्तु मनःसंकल्पोविचारणा नेति मनसः संकल्पो मनसः कल्पना इत्येकंपठंति मनसोगुणत्वाभावात् ॥

(गद्य २२) संविभागरुचिता संविभज्यभोक्तुमभिलाषुकता । ज्ञानं डल्हणमतेतु आत्मज्ञानं वाचस्पत्येतु बुद्धि [illegible] कर्त्तव्याकर्त्तव्य [illegible] । बुद्धिर्बोधनम् । मेधाधारणाशक्तिः । अनभिषंगः फलनिरपेक्षायाबुद्ध्या [illegible] ॥

(गद्य २३) अहंकारोगर्वः । मानोमदः ॥

सात्विक(सत्व गुण प्रधान जीवोंके) मनके ये गुण हैं कि निर्दयता न होना और संविभाग रुचिता (औरोंको अवश्य देना चाहो आप पदार्थ लेना या न लेना) तितिक्षा (क्षमा) सत्त्वापन धर्माचरण आस्तिकता (यकीन और एतबार रखना) ज्ञान (विचारशक्ति) बुद्धि मेधा (धारणा शक्ति) स्मृति (याद रखना) ज्ञान धृति (धैर्य) अनभिषंग निरपेक्ष (शुभ कर्म करना) ॥ २२ ॥ राजस (रजो गुण प्रधान जीवोंके)मनके गुण ये हैं कि विशेष दुःखी रहना अर्थात् बहुत आडंबर करना जिसमें कभी चैन नहीं हो और एक जगह स्थिरप्राय न होना अर्थात् फिरना धैर्य न होना अभिमान करना झूठ बोल देना दया न रखना पाषंड करना मान (मद या घमंड रखना) हर्ष (आनंद बहुत मानना) काम (विशेष कामना रखना) और क्रोध (चट गुस्से होजाना) ॥ २३ ॥ तामस (तमो गुण प्रधान जीवोंके) मनके ये गुणहैं कि विषाद रखना नास्तिकता (किसीपर एतबार नकरना) अधर्मशील होना बुद्धिकी रुकावट रहना अज्ञान तथा दुर्मेधस्त्व (धारण शक्ति अच्छी न होना) अकर्म शीलता (कोई काम करनेको चित्त न चाहना अर्थात् आलस्य) और निद्रा अधिक आना ॥ २४ ॥

पंचमहाभूतोंके गुण ।

आंतरिक्षास्तु शब्दः शब्देंद्रियं सर्वछिद्रसमूहो विविक्तताच । वायव्यास्तु स्पर्शः स्पर्शेंद्रियं सर्वचेष्टासमूहः सर्वशरीरस्पंदनं लघुता च तैजसास्तुरूपं रूपेन्द्रियं वर्णः संतापो भ्राजिष्णुता पंक्तिरमर्षस्तैक्ष्ण्यं शौर्यंच । आप्यास्तु रसः रसनेंद्रियं सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहो रेतश्च । पार्थिवास्तु गंधो गंधेंद्रियं सर्वमूर्तिसमूहो गुरुताचेति ।। २५ ॥

आकाश तत्वके गुण ये हैं शब्द और शब्देंद्रिय अर्थात् श्रोत्र तथा सम्पूर्ण छिद्र (मुख नासिका कर्ण आदि) तथा विविक्तता (न्यारा न्यारा होना) वायुतत्वके गुण ये हैं स्पर्श और स्पर्शेंद्रिय अर्थात् त्वचा और संपूर्ण चेष्टाओंका समूह (हलना चलना आदि) और सारे शरीरमें फैलाने (सिकोड़नेकी शक्ति) तथा हलकापन अग्नितत्वके गुण ये हैं रूप (देखना) और रूपेंद्रिय अर्थात् चक्षुः तथा वर्ण (सौंदर्य लावण्य) संताप (गरमाई) भ्राजिष्णुता (दीप्ति) पंक्ति (आहारका पकना) अमर्ष (क्रोध) तैक्ष्ण्य (तेजी) और शूरवीरता जल तत्वके गुण ये हैं रस और रसनेंद्रिय (जिह्वा) तथा संपूर्ण द्रव समूह अर्थात् पतले पदार्थ और

(वाक्य १०) पंक्तिः पाकः । शब्देंद्रियंश्रोत्रं । स्पर्शेन्द्रियं त्वक् । रूपेंद्रियं चक्षुः रसनेंद्रियं रसना गंधेंद्रियंघ्राणः । सर्वमूर्तिसमूहः दोषधातुमलेषुयःकश्चित् काठिन्यविशेषः इति (नि० सं०) ॥

भारीपन शीतलता चिकनाई और वीर्य पृथिवी तत्वके गुण ये हैं गंध और गंधेंद्रिय (घ्राण) तथा संपूर्ण मूर्ति समूह (कठिन पदार्थ अस्थि आदि) तथा गुरुता (भारीपन) ॥ २५ ॥

तत्रसत्वबहुलमाकाशं रजोबहुलो वायुः सत्वरजोबहुलोऽग्निः सत्वतमो बहुला आपः तमोबहुला पृथिवीति ॥ २६ ॥

इनमेंसे सत्वगुणकी विशेषतावाला आकाशतत्व है और रजो गुणकी विशेषता वाला वायु है सत्वगुण और रजोगुण दोनोंकी विशेषतावाला अग्नि है सत्वगुण और तमोगुण इन दो गुणोंकी विशेषतावाला जल है और केवल तमोगुणकी विशेषता-वाली पृथ्वी है २६ ॥

श्लोकौ चात्र भवतः ॥ अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत्॥ स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तलक्षणमिष्यते ॥ २७ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराः षोडशैव तु॥ क्षेत्रज्ञश्च समासेन स्वतंत्रपरतंत्रयोः॥ २८॥

इति शारीरके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ये आकाशादि पांचों तत्व परस्पर संमिलित हैं अर्थात् एकमें दूसरे सब प्रवेश हो रहे हैं जैसे आकाशमें परमाणु रूपसे सब व्याप्त हैं और इसी प्रकार वायुमें परमाणु रूपसे सब व्याप्त है तथा अग्निमेंभी परमाणु रूपसे सब रहते हैं इसी प्रकार जल और पृथ्वीमेंभी सभी परमाणु रूपसे व्याप्त हैं परंतु प्रगट नहीं दीखते किंतु अपने अपने स्थूल रूपमें उनके प्रकट लक्षण जाने जाते हैं ॥ ॥ २७ ॥ अव्यक्त (मूल प्रकृति या शून्य) और महत्तत्व अहंकार तथा पंचतन्मात्रा अर्थात् शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रा रूपतन्मात्रा रसतन्मात्रा और गंध तन्मात्रा ये आठ प्रकृति (कारणरूप) हैं और श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा और घ्राण वाणी हाथ पाव लिंग गुदा और मन ये ग्यारह इंद्री और आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी ये पाँचो महाभूत ऐसे श्रोत्रादि सोलह १६ विकार कार्यरूप हैं ये २४ तत्व और पचीसवाँ चैतन्य स्वरूप क्षेत्रज्ञ पुरुष है स्वतंत्र (आयुर्वेद) और परतंत्र (सांख्यादि) में संक्षेपसे वर्णन किये हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः सान्वयकसटिप्पणीकसपरिशिष्ट भाषाटीकायां शारीरस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः शुक्रशोणितशुद्धिर्नाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहां से अगाड़ी अब शुक्र और शोणितकी शुद्धि नामक शारीरककी व्याख्या करते हैं ॥

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः भवंति ॥ १ ॥

जिनका वीर्य वायुसे पित्तसे कफसे रक्तसे दूषित हो तथा कुणप (जिसमें मुरदे के सी गंधहो) जिसमें गाँठें हों तथा दुर्गंध युक्तहो या राधके समानहो अथवा जिन पुरुषों का मूत्र विष्ठा मल तथा वीर्य क्षीण होगया हो अथवा क्षीणवीर्य या वीर्यमें [illegible] विष्ठा हो वे संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते (अर्थात् निरोग और दीर्घायु संतान उत्पन्न नहीं कर सक्ते) ॥ १ ॥

दूषित शुक्रके लक्षण ।

तेषु वातवर्णवेदनं वातेन पित्तवर्णवेदनं पित्तेन श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा शोणितवर्णवेदनं कुणपगंध्यनल्पं रक्तेन ग्रंथिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां पूतिपूय निभं पित्तश्लेष्मभ्यां क्षीणप्रागुक्तं पित्तमारुताभ्यां मूत्रपुरीषगंधि सन्निपातेनेति ॥ २ ॥

इनमेंसे जिसके शुक्र में वायुके वर्ण (लाल कालापन) हो और वायुकी वेदना (तोदभेदादिक) हो वह वायुसे दूषित शुक्र है तथा पित्तके वर्ण (पीतनील) और पित्त वेदना (दाहादि) हों तो पित्तसे दूषित और कफके वर्णका (शुक्ल) और कफ की वेदना (कंडूआदि) हो तो कफसे दूषित जाने और रुधिरके वर्ण (लाल) और रुधिर की वेदना पित्तके तुल्य और कुणपगंधि (मुरदेकेसी गंध) और अल्प न होना ये रुधिरदूषित शुक्रमें होते हैं और कफ वायुसे शुक्रमें गाठें होजाती हैं तथा दुर्गंधि और राधके तुल्य शुक्र पित्त कफसे होता है क्षीण शुक्रके लक्षण पहले सूत्रस्थान पंद-रहवीं अध्यायमें कह चुके हैं यह पित्तवातसे होता है तथा शुक्रमें मूत्रपुरीषता या मूत्र पुरीषगंधि सन्निपातसे होती है ॥ २ ॥

(वाक्य० १) पूर्वाध्यायसर्वभूतचिंताशारीरे शुक्रशोणितयोः सन्निपातेऽभिव्यक्तेः क्षेत्रज्ञः [illegible] तस्मात् इमस्मध्यायेचादौ शुक्रशोणितयोर्वर्णनंक्रियते । कुणपःशवः । क्षीणमूत्रपुरीषरेतसइत्यत्र क्षीणानि मूत्रपुरीषरेतांसि [illegible] पांते अथवा क्षीणरेतसः तथा मूत्रपुरीषरेतासियेषांते मूत्रपुरीषानुगगंधरेतसैव ॥

(वाक्य० २) वातवर्णवेदनमित्यत्रवातवर्णाः अरुणकृष्णादयः [illegible] वर्णाः [illegible] वातदुष्टेऽरुणकृष्णवर्णोभवतः । वातवेदना तोदभेदादयः । एवमेवपित्तादिषुज्ञेयः ॥

तेषु कुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः मूत्रपुरीषरेतसस्त्व साध्याः शेषाः साध्याश्चेति ॥ ३ ॥

इनमें कुणप (मुरदेकेसी गंधवाला) और दुर्गंधित तथा राध सदृश और क्षीणवीर्य वाले पुरुष कष्टसाध्य होतेहैं और जिनके शुक्रमें मूत्र विष्ठा हो वे असाध्य होते हैं और शेष साध्यहैं ॥ ३ ॥

आर्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथक् द्वंद्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति तदपि दोषवर्ण वेदनाभिर्विज्ञेयं तेषु कुणपग्रंथि पूतिपूयक्षीण मूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं साध्यमन्यद्भवति ॥ ४ ॥

पुरुषके शुक्रकी भांति स्त्रियोंका आर्तवभी वायु पित्त कफ इन तीनों दोषोंसे और चौथे रुधिर करके दूषित हो तथा न्यारे २ दोदो दोषोंसे तथा संन्निपातसे दूषित हो तौ वहभी अबीज अर्थात् संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं होता उसेभी वातादि दोषोंके वर्ण और वेदना आदिसे जानलेना चाहिये (अर्थात् जिस एक या कई दोषोंका वर्ण और वेदना हों उन्हींसे दूषित आर्तव जाने) उनमेंसे कुणप (मुरदे केसी गंधवाला गाँठों युक्त दुर्गंधित राध सरीखा तथा क्षीण और मूत्र पुरीष जैसा आर्तव असाध्य होताहै और शेष साध्य होते हैं ॥ ४ ॥

दूषित शुक्र और शोणितकी शुद्धिका उपाय ।

भवंति चात्र ॥ तेष्वाद्यान् शुक्रदोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ॥ क्रियाविशेषैर्मतिमान् तथा चोत्तरबस्तिभिः ॥ ५ ॥ पाययेत्तं नरं सर्पिर्भिषक् कुणपरेतसि ॥ धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ॥ ६ ॥ पाययेदथवा सर्पिः शालसारादिसाधितम् ॥ ग्रंथिभूते शठीसिद्धं पालाशे वापि भस्मनि ॥ ७ ॥ परूषकवटादिभ्यां पूयप्रख्येतु साधितम् ॥ प्रागुक्तं वक्ष्यते यच्च तत्कार्यं क्षीणरेतसि ॥ ८ ॥ विट्प्रभे पाययेत् सिद्धं चित्रकोशीरहिंगुभिः ॥ ९ ॥

यहां श्लोकहैं कि ॥ इन शुक्र दोषोंमेंसे आदिके तीन दोषोंको स्नेहपान स्वेद और विरेचन वमन तथा उत्तरबस्ति आदि क्रियोंसे जीते अर्थात् वायु दूषित शुक्रमें

(श्लोक ५) अथादिशब्देनरेचनवमनादीनांग्रहणम् ॥

(श्लो० ६) धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनत्वचांकल्कक्वाथाभ्यांसाधितंघृतं यथा कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैल मथवा चतुर्गुणेद्रवेमाध्यं तस्यमात्रापलोन्मिता ॥ १ ॥ निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयंक्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् । पादशिष्टंगृहीत्वानुस्नेहंतेन समाचरेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्ये कठिनेष्टगुणंजलं मध्यादिक्वाथ्यं संघातेस्यादष्टगुणंपयः । अत्यंतकठिनेद्रव्ये नीरंषोडशकंमतम् कर्षादितःपलं यावत् क्षिपेत्षोडशिकंजलम् तदूर्ध्वं कुडवंयावत् भवेदष्टगुणंपयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं [illegible]चतुर्गुणम् (इतिभावमिश्रः) एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥

स्नेहपान और स्वेद करावे पित्त दूषितमें विरेचन तथा कफ दूषितमें वमन करावे यहां विरेचन वमनका बोध आदि शब्दसे होताहै॥५॥और शुक्रमें कुणप (मुरदेकीसी गंध) होतो धायके फूल खदिर अनार और कुहेकी छालसे सिद्ध किया घृत पिलावे ॥६॥ अथवा कुणप शुक्रमें शालसारादिसे सिद्ध किया घृत पिलावे और जो शुक्रमें गांठें पड़गई हों तो कचूरसे सिद्ध किया घृत पिलावे अथवा पलाशकी भस्मका सिद्ध घृत पिलावे (एक आढ़क पलाशकी भस्ममें छः आढक जल गेर औटावे चौथाई शेष रहे तब उतारे दृढ वस्त्रसे छाने(सातवार) फिर एक प्रस्थ घृत उस पलाश क्षार युक्त जलमें मिलाकर सिद्धकरे अग्निपर चढावे घृतमात्र शेष रहे सिद्ध जाने) ॥ ७ ॥ जिसका वीर्य राध सदृश हो उसे परूषक (फालसे) और वटादि (न्यग्रोधादिगण जो सूत्रस्थानोक्त है) उनमें सिद्ध किया घृत पिलावे और जिसका वीर्य क्षीण हो उसे पूर्वोक्त स्वयोनिवर्द्धन द्रव्य तथा जो अगाड़ी वाजीकरण अधिकारमें कहेंगे वे उपाय करने चाहिये ॥ ८ ॥ और जिसके शुक्रमें विष्ठाकीसी गंध हो या विष्ठा हो तौ चित्रक खस और हींगसे सिद्ध किया हुवा घृत पिलावे (यद्यपि यह विट्प्रभ शुक्र असाध्य है तौभी कई इसे साध्य कहते हैं इससे उपरोक्त औषध उचित है) (और मूत्र गंधवाला या मूत्र युत शुक्र सर्वथा असाध्य है) ॥ ९ ॥

स्निग्धं वांतं विरिक्तंच निरूढमनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरबस्तिना ॥ १० ॥

शुक्र दोष युक्त मनुष्यको पहले यथोचित स्नेहपान कराके या वमन कराके या विरेचन कराके या निरूहण और अनुवासन बस्ति कर्म करके या सम्यक् रीतिसे उत्तरबस्ति करके पीछे अन्य औषधका उपयोग करे ॥ १० ॥

(स्नेहपानकी विधि तथा वमनकी विधि और विरेचनकी विधि तथा निरूहण बस्तिकी विधि और अनुवासन बस्तिकी विधि एवं उत्तरबस्तिकी विधि विस्तार पूर्वक अन्यत्र देखना) ॥

विधिमुत्तरबस्त्यंतं कुर्यादार्तवशुद्धये ॥ स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्तवार्तिषु ॥ ११ ॥ कुर्य्यात् कल्कान् पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ग्रंथिभूते पिबेत्पाठां त्र्यूषणं वृक्षकानि च ॥ १२ ॥ दुर्गन्धे पूयसंकाशे

(श्लो० १०) उत्तरबस्तिना इति उत्तरबस्त्यंतं स्नेहादुत्तरबस्तिपर्यंतकृत्वा पश्चादौषधादिकं योजयेदिति भावः ॥
(श्लो०११) स्नेहादियुक्तानां स्त्रीणां कृतस्नेहपानवमनविरेचनानां स्त्रीणाम् । चतसृष्वार्तवार्तिषु इति वातपित्तकफशोणितकृतार्तिषु ॥
(श्लोक १२) कल्कान् योनिव्यापद्युक्तान् । पिचून् औषधयुक्तवर्तितूलादीनि । आचमनं क्वाथादिविहितकल्ककृतं योनिप्रक्षालनोदकम् (इति डल्हनः) ॥

मज्जतुल्ये तथार्त्तवे॥ पिबेद्भद्रश्रियः क्वाथं चंदनक्वाथमेव च ॥ १३ ॥ शुक्रदोषहराणां च यथा स्वमवचारणं॥ दोषाणां शुद्धिकरणं शेषास्वप्या र्तवार्तिषु ॥ १४ ॥ अन्नं शालियवं मद्यं हितं मांसं च पित्तलम्॥ १५॥

स्त्रियोंके वातज पित्तज कफज और रक्तज इन चारों प्रकारके आर्तव दोषमें स्नेहपान वमन विरेचन निरूहण अनुवासन और उत्तरबस्ति पर्यंत क्रिया करे फिर आर्तव शुद्धिके लिये यथायोग्य कल्कोंका उपचार करे तथा दोषोंके अनुसार औषधोंमें वस्त्र भिगोकर वर्त्ति बनाकर रक्खे या रूईका फोया औषधोंमें भिगोकर रक्खे इसे पिचु कहते हैं अथवा आचमन (अर्थात् उचित द्रव्योंके क्काथसे पिचकारी द्वारा या वैसेही योनि धोवे) और यथा योग्य पथ्य करे ॥ और जो आर्तवमें गांठें हो तौ पाठा त्र्यूषण (सोंठ मिरच पीपल) वृक्षक (कुडा)इनका क्काथ पीवै ॥ १२ ॥ जो आर्तवमें दुर्गंध हो या राध जैसा तथा मज्जा तुल्य आर्तव हो तो भद्रश्रिय (श्रीचं-दन) तथा चंदन (सुपेद चंदन) का क्काथ पीवे (गयदासाचार्य यहां गोरोचन का ग्रहण करते हैं) ॥ १३ ॥ इन ऊपर लिखे दोषोंके सिवाय आर्तवमें और दोष हों तो शुक्रके दोष दूर करणार्थ जो जो क्रिया लिखी हैं उन्हींका उपयोग करें ॥ १४॥

(पथ्य) शालि (चावल जो खाने और हितकारक यथोचित मदिरापीना तथा पित्त कारक मांस भोजन कराना ऐसे पथ्य करावे)॥ १५ ॥

शुद्ध शुक्रके लक्षण ।

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च॥ शुक्रमिच्छंति केचित्तु तैल क्षौद्रनिभं तथा ॥ १६ ॥

जो वीर्य सुपेद (बिल्लौरके समान) हो पतला चिकना मधुर (मीठा)हो तथा शहतकेसी सुगंधयुक्त हो तौ शुद्धशुक्र जानना तथा कई आचर्य तैल तथा शहतके-समान वीर्य शुद्ध होता है ऐसा कहते हैं ॥ १६ ॥

शुद्ध आर्तवके लक्षण ।

शशासृक्प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम्॥ तदार्तवं प्रशंसंति यद्वासो न विरंजयेत् ॥ १७ ॥

(श्लोक १३) भद्रश्रियं श्रीचंदनं गयीतु भद्रश्रियं श्वेतचंदनं चंदनं गोशीर्षाख्यंचंदनं पठति तस्य रक्तचंदनस्य [illegible] ॥

(श्लोक १६) तैलक्षौद्रनिभं शुद्धशुक्रमिति केचिदिच्छंति तत्रधन्वंतरेर्मतं धन्वंतरिमतेतुस्फटिकाभंद्रवस्निग्धं मधुरं मधुगंधि शुक्रमेवशुद्धं [illegible] ॥

(श्लोक १७) यद्वासो न विरंजयेत् इति यत् वस्त्रं रक्तवर्णादन्यथा विवर्णं नकुर्यात् अथवा आर्तववासंस्थितं [illegible] वासः न विरंजयेत् रागार्पितं न कुर्यात् तत्प्रशस्तंगर्भजननायेतिशेषः ॥

जो शश (खरगोश) के रुधिरके समान हो अथवा लाखके रंगके सदृश हो आर जिसमें रँगाहुवा वस्त्र सूखकर धोनेसे सुपेद हो जाय अथवा जिसका भराहुवा वस्त्र बदरंगा (पीला काला आदि) न हो किंतु सुरखही रहै तौ वह आर्तव शुद्ध (प्रशंसाके योग्य गर्भ धारण योग्य) कहाता है ॥ १७ ॥

असृग्दर (रक्तप्रदर)

तदेवातिप्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि॥असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥ १८ ॥ असृग्दरो भवेत्सर्वः सांगमर्दः सवेदनः ॥ तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा तमस्तृषा।दाहः प्रलापः पांडुत्वं तंद्रारोगाश्च वातजाः॥

वह आर्तव अधिक प्रवृत्त हो और मासिक समयसे अन्यथा प्रवृत्त हो और उपरोक्त शुद्ध आर्तवसे विपरीत वर्णवाला हो तौ उसे असृग्दर (रक्त प्रदर) जानना चाहिये ॥ १८ ॥ संपूर्ण असृग्दरोंमें अंगमर्द (अंग टूटनासा) और वेदना होती है और रक्तके अधिक जारी होनेमें दुबलापन भ्रम मूर्च्छा तम (अँधेरीसी आना) और प्यास विशेष लगना तथा दाह और प्रलाप (बकवास) तथा पांडुत्व (पीलापन) और तंद्रा (घुमेर) और वायुके रोग (जैसे कमर दूखना आदि) उपद्रव होते हैं ॥ १९ ॥

इसका यत्न ।

तरुण्यां हितसेविन्यास्तदल्पोपद्रवं भिषक्॥रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

जो यह तरुण अवस्थावाली हित पदार्थ सेवनवाली स्त्रीके हो और उसमें थोडे उपद्रव हों तौ उसे वैद्य रक्तपित्तके विधानसे यथोचित उपचार करे ॥ २० ॥

नष्टार्तव ।

दोषैरावृतमार्गत्वादार्तवं नश्यति स्त्रियाः ॥ तत्र मत्स्यकुलत्थाम्लतिलमाषसुराहिता ॥ पाने मूत्रमुदश्विच्च दधि शुक्तं च भोजनम् ॥ २१ ॥

वातादि दोषों करके जब रजो धर्मका मार्ग रुक जाताहै तब स्त्रियोंका आर्तव नष्ट होजाताहै अर्थात् मासिक रजो धर्म नहीं आता (दोषोंसे प्रयोजन यहां वायु

(श्लो०१९) असृग्दरमाह तदेवेति अतिप्रसंगेन अतिमैथुनेन अनृतावपि प्रवृत्तं अथवा अतिप्रसंगेन बाहुल्येन अनृतावपि प्रवृत्तम् । रक्तलक्षणात् शुद्धार्तवलक्षणादन्यत् तत् असृग्दरं विजानीयात् न तु रक्तपित्तम् ॥

(श्लो० २१) मूत्रं गोमूत्रं उदश्वित् अर्द्धोदकं तक्रम्।तथाचोक्तम् "तक्रं पादजलं प्रोक्तं उदश्विच्चार्द्धवारिकम्" (इति भावमिश्रः)।शुक्तं यथा कंदमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च यत्र द्रव्येऽभिषूयंते तच्छुक्तमभिधीयते इत्युक्तलक्षणविकारः सिरका इतिलोके इक्षुरसस्तु शुक्तं चुक्रमित्याह ॥

कफसेहै क्योंकि पित्तसे और रक्तसे आर्तव नष्ट नहीं होताहै) यदि आर्तव नष्ट होगया हो तौ मत्स्य मांस (मछली) कुलथी खट्टे पदार्थ तिल उड़द तथा सुरा (मदिरा) सेवन करना हितहै और गोमूत्र पान करना तथा उदश्वित् (दधिमें आधाजल मिला हुवा मट्ठा) तथा दही और शुक्त (सिरका) ये खाने चाहियें (डल्लन शुक्तका अर्थ चुक्र करतेहैं) ॥ २१ ॥

क्षीणं प्रागीरितं रक्तं सलक्षणचिकित्सितं ॥ तथाप्यत्र विधातव्यं विधानं नष्टरक्तवत् ॥ २२ ॥

रक्त क्षीण होनेके लक्षण और चिकित्सा पहले १५ पंदरहवीं आध्यायमें सूत्रस्थानमें वर्णन किया जाचुका है उसी प्रकार (स्वयोनिवर्द्धन पदार्थोंसे) यहांभी नष्ट रक्तकी विधिसे विधान करना चाहिये ॥ २२ ॥

एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्तवा ऋतौ प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवा स्वप्नांजनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यंगनखच्छेदन प्रधावन हसन कथनाति शब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत् ॥ २३ ॥

ऐसे उपरोक्त शुद्ध शुक्रवाला पुरुष और शुद्ध आर्तव वालीस्त्री (होनेसे सुंदर गर्भ होताहै) स्त्रीको चाहिये कि रजस्वला होनेके पहलेही दिनसे आदिले (रजस्वलाकी अवधितक) ब्रह्मचारिणी रहे और दिनमें सोना अंजन लगाना अश्रुपात करना (रोना स्नान करना चंदनादिलगाना या उबटन लगाना) तैलाभ्यंग करना नखून काटना दौड़के चलना हँसना बहुत बोलना तीक्ष्ण शब्द सुनना (अवलेखन कंघीसे बालपट्टी बनाना या जमीन खुरेदना) तेज हवा खाना परिश्रम करना इन सबको न करे किंतु त्यागदे ॥ २३ ॥

किंकारणम् । दिवास्वपंत्या स्वापशीलोऽञ्जनादंधो रोदनाद्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद्दुःखशीलस्तैलाभ्यंगात्कुष्ठी नखापकर्त्तनात् कुनखी प्रधावनाच्चंचलो हसनाच्छ्यावदंतौष्ठतालुजिह्वः प्रलापीचातिकथनादतिशब्दश्रवणाद्बधिरोऽवलेखनात्खलतिर्मारुतायाससेवनान्मत्तो गर्भोभवतीत्येवमेतान्परिहरेत् ॥ २४ ॥

उपरोक्त पथ्याचरणका कारण क्या है कि (यदि रजस्वला अवस्थाके तीन दिनोंमें

(गद्य २३) अवलेखनं कंकतिकादिना केशसंमार्जनं विलेखनं वा ॥

(गद्य २४) खलतिः खल्वाटः । मारुतायाससेवनादित्यत्र मारुतसेवनात् आयाससेवनाद्वा अथवा मारुतस्य। आयाससेवनात् मत्तो भवति अ पाठः [illegible] ॥

दिनमें सोवे तो (जो उसी ऋतुमें गर्भ रहे तौ) बालक स्वापशील (बहुत सोने वाला) पैदा हो और कज्जल लगानेसे अंधा रोनेसे (विकृत दृष्टि) (नेत्र विकार वाला) और स्नान तथा अनुलेपन करनेसे दुःखशील तैलाभ्यंग करनेसे कुष्ठी नखून कतरने से कुनखी (खराब नखूनवाला) दौड़कर चलने से चंचल हँसने से काले दांतों वाला काले होठ और तालु तथा जीभ वाला हो बहुत बोलने से प्रलापी (बकवादी) अतिशब्द सुनने से बहिरा होता है तथा अवलेखन (शिर के बालोंमें कंघी करने) से गंजा और हवा अधिक खाने कष्ट करने से मतवाला बालक पैदा होताहै इससे इन कामों को त्यागदे ॥ २४ ॥

दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमभोजनीं हविष्यं त्र्यहं भर्तुः संरक्षेत् ॥ २५ ॥ ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहन्यहतवाससमलंकृतां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां भर्तारं दर्शयेत् तत् कस्यहेतोः ॥ २६ ॥

रजस्वला स्त्रीको तीन दिन कुशाकी सज्जापर सोना और हथेली या मिट्टीके बरतन या पत्तोंकी पातल इनमें से किसीमें रखकर हविष्यान्न (जौ चांवल आदि) अन्न खाना चाहिये और पुरुषसे बहुतही बचा रखना (दर्शन तक भी नहीं कराना चाहिये ॥ २५ ॥ फिर चौथे दिन शुद्ध स्नान कराके अहत वस्त्र (साड़ी) पहन कर आभूषण धारण कराके मंगल पाठ स्वस्ति वाचन कराके वैद्य भर्ताका दर्शन करावे इसका कारण क्याहै ॥ २६ ॥ सो अगले श्लोक में कहते हैं ॥

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना॥ तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः २७

१ ऋतुस्नान करतेही पुरुषके दर्शन करनेका कारण कहतेहैं कि ऋतुसे शुद्ध स्नानकरके स्त्री जैसे पुरुषके पहले दर्शन करे उसके (यदि उस ऋतुमें गर्भ रहे तौ) वैसाही (उसकी ही आकृति) का पुत्र उत्पन्न होताहै इससे भर्ताके दर्शन कराने चाहिये और कई " भर्तारं दर्शयेदतः " इस पदकी जगह " ततः पश्येत्पतिं प्रियं " ऐसा पाठ मानतेहैं और इसका अभिप्राय यह है कि पतिके दर्शन करे अथवा " प्रियं " जैसी आकृति रूप आदि संतानका चाहिये वैसेही देवरादि या देवमूर्ति या सुंदर पुरुषके प्रथम दर्शन करने चाहिये(यूरोप और अमेरिकाके विद्वानभी इस बातको मानने लगेहैं और कईपर तजरुबा करनेसे सिद्ध पायाहै कि

(वाक्य० २५) हविष्यं सघृतशाल्योदनादिक्षीरसंस्कृतं यवान्नमित्येके इति डल्हनः । भर्तुः संरक्षेदिति भर्तुर्दर्शनमात्रमपि न कारयेत् वैद्य इतिशेषः ॥

(वाक्य २६) चतुर्थेहनिशुद्धस्नातां भर्तारंदर्शयेदिति तत्कस्यहेतोः इत्यत्र तत [illegible] कस्यहेतोः ॥

(श्लोक २७) भर्तारंदर्शयेदतः इत्यत्र भावमिश्रेण " ततःपश्येत्पतिंप्रियम् " इतिपाठपरिवर्तनंकृतम् ॥

दर्शन का प्रभाव अवश्य होताहै इसपर अमेरिकाके एक डाक्टर साहिबने स्त्री समाजमें इसपर बडा गंभीर व्याख्यान दियाथा और उसे छपाकरभी प्रसिद्ध कियाथा जिसका हिंदी अनुवाद (संतानके सुयोग्य करनेकी विधि इस नामसे) बाबू काशिनाथ सिरसा निवासीने किया है) ॥

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत् ॥ कर्मांते च क्रमं ह्यनेनारभेत विचक्षणः ॥ २८ ॥

तब उपाध्याय (पंडित) पुत्रकी कामनाके अर्थ विधान (पुत्रेष्टी यज्ञ) करावे और उस पुत्रेष्टी यज्ञके पीछे इस (वक्ष्यमाण) क्रमका (चतुर पुरुष) आरंभ करे ॥ २८ ॥

ततोऽपराह्ने पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः ॥ २९ ॥

पुत्रेष्टी यज्ञ करके अपराह्न कालमें महीने भरसे ब्रह्मचारी रहा हुवा पुरुष शरीरमें घृतका मर्दन करके घृत और दूधके संग शाली (चावलों) के भातका भोजन करके और महीने भरसे ब्रह्मचारिणी रही हुई स्त्री शरीरमें तैलका मर्दन करके तैल और माष (उड़द) प्रधान भोजन करा है जिसने ऐसी स्त्रीके समीप रात्रीमें गमन करे (अर्थात ऊपरके अनुसार पुरुष और स्त्री दोनो पथ्य करके प्रसंग करें) और पुरुष प्रेमके वचनोंसे स्त्रीकी तसल्ली करके विचारके रजस्वला होनेके दिनसे चौथी छठी आठवीं दशवी और बारहवीं रात्रीको (पुत्रकी इच्छा वाला पुरुष स्त्री संगकरे)२९॥

(श्लोक २८) तत उपाध्यायः पुत्रीयंविधानंसमाचरेत् (अनेनविधिनायथाह गयी) तत्राचार्यो ब्राह्मणप्रयुक्तोऽनुपहतश्वेतवस्त्रेण संवीतश्चार्षभेचर्मण्युपविष्टो राजन्यप्रयुक्तोवैय्याघ्रेआनडुहे वा वैश्यप्रयुक्तोरौरवे शूद्रप्रयुक्तो [illegible] वा चतुर्हस्तंस्थंडिलमुपलिप्योल्लिख्यदर्भैरास्तीर्य वेणुयूपंदक्षिणेन ब्राह्मणेऽव्यवस्थाप्य शुक्लकुसुमगंधबलिभि [illegible] समिद्भिरग्निमुपसमाधाय मंत्रोदकपूर्णपात्रमग्रेरग्रेस्थापयित्वा पुत्रजन्माशयाज्यंजुहुया [illegible] योषिच्चपुत्रार्थिनीसहभर्त्रापश्चिमतोग्नेः ऋत्विजोदक्षिणतः समुपविशेत् ततोऽस्याब्राह्मणः प्रजापतिमुद्दिश्य [illegible] संपादनायमनसायोनौ काम्यामिष्टिंनिर्वपेत अनयोर्विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशत्विति [illegible] त्रिर्जुहुयात् यथाम्नायं चोपमंत्रितमुदपात्रमस्मैदद्यात् सर्वानुदकार्थांकुरुष्वेतिततः समाप्ते कर्मणि पूर्वं दक्षिणपादमभिहरंती प्रदक्षिणमग्निमुपक्रमेत तत: परिक्रम्य ब्राह्मणान् स्वस्तिवाचयित्वासहभर्त्रा [illegible] पूर्वंपुमान् अनन्तरं स्त्री नचोच्छिष्टमवशेषयेदिति पुत्रीयविधानं कर्मांतेपुत्रीयविधानांते एवं क्रमं वक्ष्यमाणं आरभेत [illegible] कारयेत् पुत्रीयविधानम् (इति निबंधसंग्रहः) ॥

(गद्य २९) [illegible] आप्यायते तस्मात्तासुकुमारपुत्रस्य दुहितृश्चजन्म [illegible] विषमेष्वह:सुनोपेयात यदिस्वाहारानुरोधादयुग्माहुशुक्रस्याधिकतायुग्मासु [illegible] पुमान् [illegible] जायते स्त्रीचपुरुषाकृतिर्दुर्बलाहीनांगी वा(इतिवृद्धवाग्भटः)॥

(वक्तव्य) पुरुष घृत मर्दन करे और घृत युक्त आहार करे तथा स्त्री तैल मर्दन करे और तैल युक्त आहार करे इसका अभिप्राय यह है कि वीर्यका पोषक सौम्य पदार्थ घृतहै जो पुरुषको उपयोग करना चाहिये और रजकी पुष्टि करने वाला आग्नेय पदार्थ तैल है जिससे स्त्रीका शोणित पुष्ट होता है और सम विषम रात्रियोंका हेतु यहहै कि विषम रात्रियोंमें स्त्रीका आर्तव बलिष्ठ होता है इससे कन्या होती है और सम रात्रियोंमें सम तौ पुरुष के वीर्यकी उत्कर्षतासे पुत्र होता है देखो टिप्पणी ॥

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेवच॥प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलंचदिवसेषुवै ॥

इन चौथे छठे आठवें आदि दिनों में उत्तरोत्तर आयु आरोग्य सौभाग्य ऐश्वर्य तथा बल संतानमें होता है ऐसा जानना चाहिये (अर्थात् रजस्वला होनेके दिनसे जितना जितना पीछे गर्भ धारण होगा उतनाही उतना अधिक आयु आरोग्यता आदि संतानमें होगा) ॥ ३० ॥

अतः परं पंचम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकामः । त्रयोदशी प्रभृतयो निंद्याः ॥ ३१ ॥

इसके सिवाय जिसकी वांछा पुत्रीकी हो वह पांचवीं सातवीं नवीं और ग्यारहवीं रात्रीमें गमनकरै । और तेरहवीं रात्रीसे परे निंदित है (इनमें संग करना उचित नहीं) (कई ऐसाभी कहते हैं कि शुक्रकी अधिकतासे पुत्र हो और रजके आधिक्यसे पुत्री) ३१

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनादनायुष्यं पुंसां भवति यश्च तत्रा धीयते गर्भः संप्रसवमानो विमुच्यते द्वितीयेप्येवं सूतिकागृहेवा तृतीये प्येवमसंपूर्णांगोऽल्पायुर्वा भवति चतुर्थेतु संपूर्णांगो दीर्घायुश्च भवति ॥ ३२ ॥ नेच्च प्रवर्तमाने रक्तेबीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति यथा नद्यां प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रति निवर्तते नोर्द्ध्वं गच्छति तद्वदेवद्र ष्टव्यं तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत् अतःपरं मासादुपेयात ॥ ३३ ॥

(वाक्य ३१) एकादशीत्रयोदश्योस्तु नपुंसकं स्यात् । शुक्रस्य बाहुल्यात् पुमान् आर्तवस्य बाहुल्यात्स्त्री तयोः साम्येन नपुंसकमिति (वृ० वा०) ॥

(गद्य ३२) दिवसकथनादहोरात्रग्रहणम् । मैथुनगमनात् मैथुनार्थगमनात् मैथुनकरणादित्यर्थः । गर्भःप्रसव-मानोविमुच्यते इति प्रसवमानो प्राणैर्विमुच्यते प्राणैरितिशेषः ॥

(गद्य ३३) प्लाविद्रव्यं प्रतरणशीलं प्रतिनिवर्तते ऽधस्तु गच्छतीति क्रमः । अतःपरंमासादुपेयात् मासात् [illegible] ऊर्द्ध्वमितिशेषः अर्वाग्गमनम् गर्भद्वारविघट्टनेनस्थितमपि गर्भं न्यावयति इति गर्भधारणकालतः परंमासादूर्द्ध्वं उपेया-दित्यर्थः धृतगर्भायां तु मासादूर्द्ध्वमपि न गन्तव्यम् यदितस्मिन्मासे गर्भधारणं न भवेत्तदा मासादूर्द्ध्वं [illegible] भावार्थः केचिदित्याहुः अतःपरं दिनत्रयादूर्द्ध्वं मासात् मासपर्यन्तं गच्छेत् उचितासुरात्रिषु इति ॥

रजस्वला स्त्री जिस दिन हो उसी (प्रथम) दिन रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करनेमें पुरुषों की आयुका नाश होता है और यदि उस दिन गर्भ रहजावे तो जन्मतेही बालक प्राण छोड़ देताहै (अर्थात् मरजावे) और दूसरेदिन भी रजस्वला के संग मैथुन करनेसे पूर्वोक्त हानि (भर्ताकी आयुका नाश और जन्मतेही शिशुकी मृत्यु) (हो अथवा सूतिका गृहमें (दशही दिन भीतर) बालक मरजावे और तीसरे दिन रजस्वला गमन करने से भी पूर्वोक्त हानि होती है तथा अधूरे अंगका और अल्पायु बालक होताहै और चौथे दिन गमन करनेसे पूर्ण अंगोंवाला और दीर्घ आयु बालक उत्पन्न होताहै ॥ (वक्तव्य) रजस्वला गमनमें भर्ताकी आयुका क्षय और संतान की स्वल्पायु के सिवाय पतिको अनेक दारुण रोग भी होते हैं जैसे उपदंश (देखो निदान स्थान की १२ अध्याय उपदंश का कारण)(तथा रक्त विकार मूत्रकृच्छ्रादि) इसी लिये रजस्वला के लिये धर्मशास्त्र में यों लिखा है कि " प्रथमेहनिचांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी पुंसां यथा वर्ज्या तथांगना " ॥ ३२ ॥ रजस्वला समयमें रक्तका प्रवाह होताही है और रक्तके प्रवर्त होने में प्रविष्ट हुवा बीज (वीर्य) गुण कारक (शुद्ध गर्भ स्थिति कारक) नहीं होता जैसे नदीके बहतेहुवे जल में पडा हुवा द्रव्य बहजाता है तथा व्याघुटित होजाता है ऊपरको नहीं आता (ऊगकर उसका अंकुर ऊपरको नहीं आता) इसी तरह रजस्वलामें भी जानना चाहिये इस कारणसे नियमित तीन रात्र रजस्वलाको त्याग दे इससे पीछे १ मास तक यथोचित रात्रियों में गमन करे ॥ ३३ ॥

लब्धगर्भाका कृत्य ।

लब्धगर्भाया श्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणा वटशुंगा सहदेवा विश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरोवा बिंदून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तान्निष्ठीवेत् ॥ ३४ ॥

जब स्त्रीको गर्भ रहजावे तब इन दिनों में (तीन मास पहले) लक्ष्मणा और बडकी कोंपल सहदेवा (पीले फूलकी कंघी)और विश्वदेवा (गंगेरण)इनमेंसे किसीको

(मन्त्र ३४) लब्धगर्भायाएतेषुअहःसुस्थितगर्भायाश्च मासत्रयाल्पांतरे पुत्रापत्यजननार्थंलक्ष्मणादिनस्यदानं [illegible] अलब्धगर्भायास्तु सर्वथैवलक्ष्मणादिकानां नस्यंदेयमित्यर्थ " लक्ष्मणायाः लक्षणम् " यथा पुत्रकारक [illegible] । लक्ष्मणापुत्रजननी बस्तगंधाकृतिर्भवेत् इति " विधिः" शरत्काले पुष्पफलोपेता दृष्ट्वा [illegible] खदिरकीलकान्विस्थायापरेद्युर्हि मूलपुष्ययोगगते रविवारे मंत्रवद्गृहीत्वा समानवर्ण [illegible] दद्यात् इति डल्हनः । वटशुंगा वटप्ररोहः । सहदेवा बलाभेदः पीतपुष्पा कंगही इति [illegible] । विश्वदेवा गांगेरुकी । अभिषुत्यपेषयित्वा । " अलब्धगर्भायांयोजनविधिः " पूर्वमौषधं सहस्राभिहुतंकृत्वा [illegible] पेषयित्वा [illegible] बिंदून् दक्षिणेनासापुटे दद्यात् कंठप्राप्तान् ननिष्ठीवेत् सा पंचदिनादि पयसोदन [illegible] (नि० ०) ॥

(बछड़े वाली) गौके दूधमें घिसकर पुत्र चाहनेवाली स्त्रीके नासिकाके दाहने नथनेमें तीन या चार बूंदे डाले और उन्हे थूकनेनदे(अर्थात् स्त्रीसे कहदेकि थूकना नहीं

गर्भके चार हेतु ।

ध्रुवं चतुर्णां सांनिध्यात् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ॥ ऋतुक्षेत्रांबुबीजानां सामग्र्यादंकुरो यथा ॥ ३५॥ एवं जाता रूपवंतो महासत्वाश्चिरायुषः ॥ भवंत्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणेहिताः ॥ ३६ ॥

निश्चय चार पदार्थोंके संयोगसे विधि पूर्वक गर्भ होताहै जैसे ऋतु (फसल) और क्षेत्र (दोष रहित संस्कृत पृथ्वी) और जल (जितना और जैसा चाहिये तथा बीज)(निर्दोष बीज) इन चारों सामग्रियों के मिलनेसे जैसे अंकुर उत्पन्न होजाता है वैसेही ऋतु (गर्भका समय अर्थात् तरुण स्त्रीके रजस्वला होनेके दिनसे १६ दिनतक) और शुद्ध गर्भाशय तथा माताके भोजनका यथोचित रस और बीज शुद्ध शुक्र इनके संयोगसें गर्भ होता है ॥ ऐसे (यथा योग्य) चारों पदार्थोंके संयोग से रूपवान् गंभीर सत्त्ववाले दीर्घायु माता पिताके ऋणके भोगने वाले सत्पुत्र उत्पन्न होते हैं॥ ३५ ॥ ३६ ॥

शरीरके वर्णका कारण ।

तत्र तेजोधातुः सर्ववर्णानां प्रभवः सयदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति पृथिवीधातुप्रायः कृष्णं पृथिव्याकाशप्रायः कृष्ण श्यामं तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामम् ॥ ३७ ॥ यादृग्वर्णमाहार मुपसेवते गर्भिणी तादृग्वर्ण प्रसवा भवत्येके भाषंते ॥ ३८ ॥

तेज (अग्नि) धातु ही गौरादि संपूर्ण वर्णोंका उत्पन्न करनेवालाहै वह (शारीरक अथवा आर्तव अग्नि) यदि गर्भोत्पत्तिके समय जल धातुप्राय (अर्थात् जलके अधिकांश युक्त) हो तौ गौर वर्ण संतान उत्पन्न करताहै और यदि वह तेज धातु पृथ्वी धातुप्राय (पृथ्वीके अधिकांशयुक्त) हो तौ गर्भस्थ बालकका वर्ण काला कर देताहै और यदि पृथ्वी और आकाशके अधिकांश युक्त हो तो कृष्ण श्याम (कालापन लिये सांवला रंग) करताहै और जो जल और आकाशके अधिकांश हो तो गौर श्याम (गोरापन लिये हुवे सांवला रंग) करताहै ॥ ३७ ॥

(वक्तव्य) वायुधातुप्राय होतौ उसका वर्ण कैसा हो यह क्यों नहीं लिखा इसका

(गद्य ३७) वर्ण विषयेवृद्धवाग्भट इत्याह शुक्रेशुक्लघृतमंडाभे वा गर्भस्थस्तेन [illegible] मतत्वचस्तथा क्षीरादिमधुराहारोपयोगान्मातुरवदाताविहाराच्चगौरः [illegible]

उत्तर यह है कि जब गर्भस्थितिके समय तेज धातु वायुप्राय होताहै तब वायु चलनात्मक होनेसे गर्भ स्थितही नहीं होता इसीसे उसका वर्ण क्या लिखते " वर्णके होनेमें मतांतर " कोई ऐसाभी कहतेहैं कि गर्भिणी जैसे वर्णका आहार सेवनकरे वैसेही वर्ण (रंग) की संतान होती है ॥ ३८ ॥

नेत्रोंका वर्ण ।

तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यंधं करोति तदेव रक्तानुगं रक्ताक्षं पित्तानुगं पिंगाक्षं श्लेष्मानुगं शुक्लाक्षं वातानुगं विकृताक्षमिति ॥ ३९ ॥

गर्भ गत बालकके दृष्टि भागमें यदि तेज धातु पहुंचेही नहीं तो बालक जन्मांध होताहै और यदि रुधिरके अनुगत (संग) होकर दृष्टि भागमें जाताहै तो लाल नेत्र वाला (जिसमें सुरखी अधिक हो) बालक होताहै और पित्तके अनुगत होकर पहुँचे तो पीले नेत्रवाला हो और कफके अनुगत होकर पहुँचे तो सुपेद नेत्रवाला हो और वायुके अनुगत पहुँचे तो विकृताक्ष (चंचलाक्ष या नेत्रविकारवाला) होताहै [गर्भके चतुर्थमासमें दृष्टिकी उत्पत्ति होतीहै इससे चतुर्थ मासमें रूपेंद्रिय (दृष्टि) का हेतु तेजतत्व जिस प्रकार दृष्टि भागमें प्राप्त होता है वैसेही नेत्र होतेहैं] ॥ ३९ ॥

घृतपिंडो यथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते ॥ विसर्पत्यार्तवं नार्य्यास्तथा पुंसां समागमे ॥ ४० ॥

जैसे अग्निके आश्रित होनेसे (आगपर या आगके पास रखनेसे) घृतका जमा हुवा पिंडा घुल जाताहै वैसेही पुरुषोंके समागम होनेसे स्त्रियोंका आर्तव शोणितभी चलायमान हो (कर गर्भाशयमें प्राप्त होकर शुक्रसे मिलकर गर्भका कारण हो ताहै) ॥

वक्तव्य स्त्रियोंके मैथुन समय श्वेत वीर्यरूप द्रव पदार्थभी द्रव होताहै परंतु वह शुक्रसे मिलकर गर्भका हेतु नहीं होता जैसे यहां इसपर वृद्ध वाग्भटका श्लोक है कि " योषितोपि स्रवत्येव शुक्रं पुंसां समागमे" । तन्न गर्भस्य किंचित्तु करोतीतिन चिन्त्यते " ॥ ४० ॥

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ॥ यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ ४१ ॥

(वाक्य ३९) चतुर्थमासिकस्यचित् पूर्वकर्मवशात् दृष्टिभागं चक्षुरिंद्रियाधिष्ठानम् अप्रतिपन्नं अप्राप्तं तेजो जात्यंधं करोति (नि० सं०)

(श्लो० ४०) पुंसांसमागमे नार्याआर्तवंविसर्पतीति स्वाभाविकोधर्मः यथाघृतस्याग्नेःसंयोगात् द्रवत्वमिति ॥

(श्लो० ४१) शुक्रार्तवेऽनिलेनस्वबहुधाभिन्ने यथाविभागमपत्यानामुत्पत्तिरिति वृद्धवाग्भटः ॥

गर्भाशयमें प्राप्त हुवा वीर्य जब भीतरकी वायुसे भिन्न होकर दो भागमें विभक्त हो जाता है तब दो जीव (बालक) कुक्षिमें आजाते हैं (और उत्पन्न होते हैं) उन्हे यम वा यमल अर्थात् जोड़ला कहते हैं और वे धर्मेतर अर्थात् अधर्म पूर्वक होते हैं (यदि तीन या अधिक चार भागमें शुक्र विभक्त हो तो कदाचित् तीन या चार गर्भभी इकट्ठे हो सकते हैं परंतु पूर्णावकाशके अभावसे वे जीते नहीं रह सक्ते)॥ ४१

आसेक्यादिकी उत्पत्ति ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषोभवेत् ॥ सं शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ ४२ ॥ यः पूतियोनौ जायेत स सौगंधिक संज्ञितः ॥ सयोनिशेफसोर्गंधमाघ्राय लभते बलम् ॥ ४३ ॥ स्वे गुदे ब्रह्मचर्याय स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते॥ कुंभीकः स च विज्ञेयः ईर्षकं शृणुचापरम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ॥ ईर्षकः स च विज्ञेयः षंढकं शृणु पंचमम् ॥ ४५ ॥ यो भार्यायामृतौ मोहादंगनेव प्रवर्तते॥ तस्य स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षंडसंज्ञितः ॥ ४६ ॥ ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तेतांगना यदि॥ तस्य कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ४७ ॥

पिताका बहुतही अल्पवीर्य होतो उससे आसेक्य संज्ञिक (अत्यल्पवीर्य) पुरुष उत्पन्न होता है वह अन्याके शुक्रको पीनेसे निःसंदेह ध्वजोच्छ्राय (मेढ्रकी उत्थिति) को प्राप्त होता है कई शुक्रसे यहां गंध मार्जार वीर्य जो सुगंधित द्रव्य है उसके खानेसे पुरुषार्थी हो जाता है ऐसा समझते हैं और वास्तवमेंभी गंध मार्जार वीर्यका कर्ताहै और बहुतसे लोग " अंबर " नाम सुगंध द्रव्यको गंधमार्जार वीर्य मानते हैं और यथार्थमें अंबर अति पुरुषार्थ देनेवाला है भी ॥ ४२ ॥ जो दुर्गंधियोनिसे उत्पन्न होता है उसे सौगंधिक संज्ञिक (क्लीब) कहते हैं यह योनि और मेढ्रकी वास सूंघनेसे पुरुषार्थी होता है (स्त्रीके योग्य होता है अर्थात् सूंघकर बलन्यता होती है) ॥ ४३ ॥ जो पुरुष अब्रह्मचर्यसे निज गुदा मैथुन करानेपर स्त्रीयोंके संग मैथुनमें प्रवर्त होता है उसे " कुंभीक " कहते हैं वह माताकी विपरीत रति और पिताकी वीर्यकी दुर्बलतासे होता है ॥ ४४ ॥ जो औरोंको मैथुन करते देखकर मैथुन करने योग्य होता है उसे ईर्षक कहते हैं(यह गर्भोत्पत्तिके समय ईर्षायुक्त स्त्री पुरुषोंके संगसे होता है) ॥ ४५ ॥ जो ऋतुके समय मोह वश स्त्रीके नीचे हो विपरीत रतिकरे उसके स्त्रीकेसी चेष्टावाला (जनानियां जनखा) पुत्र होता है उसे षंड कहते है ॥ ४६ ॥ और जो ऋतुके समय बलवती स्त्री पुरुषके

तुल्य उपरिगामिनी होजावे तौ उसके पुरुषके (आकार दाढी मूछोंयुक्त और पुरुषकेसी चेष्टावाली कन्या उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥

आसेक्यश्च सुगंधीच कुंभीकश्चर्षकस्तथा ॥ सरेतसस्त्वमीज्ञेया अशुक्रः षंडसंज्ञितः ॥ ४८ ॥ अनयाविप्रकृत्यातुतेषांशुक्रवहाः शिराः ॥ हर्षात्स्फुटत्व मायांति ध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत् ॥ ४९ ॥

आसेक्य और सौगंधिक कुंभीक तथा ईर्षक ये तौ वीर्य युक्त होते है परंतुषण्ढ संज्ञित (जनखे) वीर्य रहित होते हैं ॥ ४८ ॥ इन आसेक्यादि चारोंमें वीर्य कुछ होताहै तौभी इन इन विक्रियाओं (जैसे वीर्य प्राशन लिंग भगका आघ्राण गुदमैथुन और पर मैथुन देखना) इत्यादिसे उनकी शुक्र वहा शिरा हर्षके कारण स्फुटताको प्राप्त होती है (फूलतीहै) तब लिंगेंद्रियमें चैतन्यता होती है (यही नपुंसकताहै ॥ ४९ ॥

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ॥ स्त्रीपुंसौसमुपेयातां तयोःपुत्रो पितादृशः ॥ ५० ॥ यदा नार्य्यावुपेयातां वृषस्यंत्यौ कथंचन॥ मुंचंत्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र जायते ॥ ५१ ॥

जैसे जैसे आहार और विहार और चेष्टाओंसे युक्त स्त्रीपुरुष संगम करें तौ वैसेही वैसे गुणवाला बालक उत्पन्न होताहै ॥ ५० ॥ यदि कदाचित् रतिकी इच्छा युक्त दोस्त्री आपसमें मैथुनकासा आचरण करें और परस्पर वीर्य पात करें (यदि उनमेंसे एकका सौम्य श्वेत वीर्य और दूसरीका शोणित मिलकर कोईसीके गर्भाशयमें प्रविष्ट होजाय तौ) उनसे अनास्थि (विना हड्डीका गर्भ होजाता है) जो पैतृक अस्थिवीर्यादि शून्य होनेसे सजीव नहीं होसक्ता डल्लन अनास्थिका अर्थ कोमल हड्डीवाला गर्भ होताहै ऐसा कहताहै ॥ ५१ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमाचरेत् ॥ आर्तववायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति नित्यं ॥ ५२ ॥ मासि मासि विवर्द्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् ॥ कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकै गुणैः ॥ ५३ ॥ सर्पवृश्चिक कूष्मांड विकृताकृतयश्च ये ॥ गर्भास्त्वेते स्त्रियाश्चैव ज्ञेयाः पापकृता भृशम् ॥ ५४ ॥

(श्लो० ५१) यदा देनार्य्यावेव वृषस्यंत्यौ सुरतार्थिन्यौ । उपेयातांपरस्परंयोनिसंघर्षणं कुर्य्यातां तदा अनस्थि जायते इति अस्थिरहितोगर्भः पिंडाकारोजायते इति अस्थ्न: पितृजत्वात् अन्नतदभावादनस्थिश्चैवजायते इति सौम्योर्थः डल्लनन्तु अनस्थि इति ईषदर्थनञ् तेनकोमलास्थिः इति तत्र पैतृकांशाभावात ॥

रजस्वला स्त्री शुद्ध स्नान करके यदि स्वप्नमें मैथुन करे तो वायु उसके आर्तव शोणितको ग्रहण करके कूखमें गर्भसा करदेतीहै ॥ ५२ ॥ वह गर्भिणीके गर्भमें गर्भकेसे चिन्ह पूर्वक मासके प्रति वृद्धिको प्राप्त होता है फिर पिताके गुणों (अस्थिकेशादि) से रहित कलल (पिंडासा) उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥ इनके सिया किसी २ स्त्रीके सर्पके आकार किसीके विच्छुके आकार किसीके कुष्मांडके आकार (पिंडासा) किसीके विकृत आकृतिवाले (शिरहीन दो शिर वाले न्यूनाधिक अंगवाले) गर्भ उत्पन्न होतेहैं वे स्त्रीके पाप (दुराचरण) के करनेसे प्रायः होतेहैं ५४

गर्भो वातप्रकोपेण दौहृदे चावमानिते॥ भवेत्कुब्जः कुणिःपंगुर्मूको मिण्मिण एवच॥५५॥मातापित्रोस्तु नास्तिक्या दशुभैश्च पुराकृतैः॥ वातादीनांच कोपेन गर्भोविकृतिमाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

वायुके कोपसे तथा दौहृदके न मिलने से गर्भ (गतबालक) कुबडा पांगा कुणि (लूला अर्थात् हाथोंमें विकार वाला) गूँगा तथा मिणमिणा होजाताहै ॥ ५५ ॥ माता पिताके नास्तिकत्व (शास्त्रोक्त शुभाचरणपर श्रद्धा नहीं रखकर दुराचरण करने से अथवा पूर्वकृत अशुभ कर्मोंसे तथा वातादिक के कोपसे गर्भगत बालक विकृति (अंगभंगता)) को प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

गर्भमें बालकके मलमूत्रादिनकरने और न रोनेका कारण ।

मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च॥ वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः करोति हि ॥५७॥जरायुणा मुखे छन्ने कंठे च कफवेष्टिते॥ वायोर्मार्ग निरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ ५८ ॥

मलके अति अल्प होनेसे तथा पक्वाशयकी वायुका योग (अतियोग) न होने से गर्भस्थ बालक अधोवायु और मल मूत्र नहीं करता ॥ ५७ ॥ जरायु (झिल्ली से मुँह ढका हुवा रहनेसे और कंठ कफाच्छादित होनेसे वायुका अधिक आने जानेका मार्ग रुका होनेसे गर्भस्थ बालक नहीं होसकता ॥ ५८ ॥

बालक गर्भमें श्वासादि कैसे लेताहै ।

निश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वमान् गर्भोधिगच्छति ॥ मातुर्निश्वसितोच्छ्वास-संक्षोभस्वमसंभवान् ॥ ५९ ॥

(श्लो० ५५) कुणिःविकृतपाणिः ॥

(श्लो०५६) मातापित्रोः नास्तिक्यात नास्तिक्यमिति न अस्तिपरलोक इत्यादिमतिर्येषांतेनास्तिकाः तेषां भावोनास्तिक्यमिति डल्हनः वाचस्पत्येतु शास्त्रोक्तेषु फलजनककर्मसु अफलताबुद्धिर्नास्तिक्यमिति ॥

(श्लो० ५७) पक्वाशयस्य वायोः अयोगात अल्पयोगात अधनऽर्हेत्यर्थ ॥

(श्लो० ५८) वायोर्मार्गनिरोधात् इति रोदनजनकस्यवायोर्मार्गनिरोधात् इत्यर्थः किंतुनिश्वासादिरूपस्यवायोस्तु निःसरणमार्गवत्त्यति यतस्तदभावेजीविताभाव एव भवतिगर्भस्याति (डल्हनः)

गर्भमें बालक श्वासलेना और श्वास बाहर को छोडना तथा चलनाफिरना और सोना इन सब कार्योंको माताके श्वास लेनें और छोडने चलने फिरनें तथा सोने आदिके अंतर्भावसे करताहै (अर्थात् जो शारीरोपयोगी आहार विहार चेष्टा आदिमाता करती है गर्भ भी उनको प्राप्त करता है) ॥ ५९ ॥

सन्निवेशः शरीराणां दंतानां पतनोद्भवौ ॥ तलेष्वसंभवोयश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः ॥ ६० ॥

शरीरोंका सन्निवेश अर्थात् अंग प्रत्यंगोंकी रचना और दातोंका टूटना और निकलना हाथोंकी हथेली और पावोंके तलवोंमें रोमों (बालों) का न होना यह सब स्वभावहीसे होजाताहै ॥ ६० ॥

भाविताः पूर्वदेहेषु सततं शास्त्रबुद्धयः ॥ भवंतिसत्वभूयिष्ठा पूर्वजातिस्मरा नराः ॥ ६१ ॥ कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे ॥ अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥ ६२ ॥

इति शारीरके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जिन्होंने पूर्व जन्ममें निरंतर शास्त्र चिन्तनमें बुद्धिभावित रक्खीहै वे मनुष्य सत्वगुण प्रधान होतेहैं और पूर्व जन्मकी स्मृति वाले होतेहैं (अर्थात् पूर्वाभ्यस्त विद्यादि उन्हे शीघ्रही थोडेसे पढाने मात्रसे आजाती है ॥ ६१ ॥ जैसे कर्म करके मनुष्य प्रेरण किया जाताहै (अर्थात् जैसे शुभाशुभ कर्म मनुष्य करताहै) उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें प्राप्त होता है और जो पूर्व जन्ममें अभ्यास किये हुवे गुण होते हैं उन्ही को दूसरे जन्ममें धारण करता है ॥ ६२ ॥

इति श्रीसुश्रुतटीकायां शारीरकस्थाने द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो गर्भावक्रांतिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाडी अब हम गर्भावक्रांति नाम (गर्भका गर्भाशयमें आना) तद्विषयक शारीरकका व्याख्यान करतेहैं ॥

सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सांनिध्यमस्त्यणुना विशेषेण परस्परोपकारात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च ॥ १ ॥

(व्याख्या १) गर्भावक्रांतिः गर्भावक्रमणं उपगमनमवतरणमितियावत् । इतरेषां पृथिवीवाय्वाकाशानांभूतानां [illegible] कुतः परस्परोपकारात् भूजलानलानिलाकाशानां धारणसंहननपरिणामव्यूहावकाशदाने । [illegible] ॥

गर्भोत्पत्तिमें वीर्य सौम्य और आर्तव आग्नेयहै (क्योंकि अग्निसोमात्मक जगत् है) और इनके सिवाय अन्य महाभूतों (पृथ्वी वायु और आकाश इन) का भी थोडे बहुत करके सांनिध्यहै क्योंकि ये सब आपसमें उपकारक होनेसे तथा एक दूसरेका अनुग्रह करतेहैं इससे तथा सब आपसमें एकदूसरेमें परमाणु रूपसे प्रविष्टहै इसकारण गर्भोत्पत्तिमें अग्नि और सोम तो मुख्य प्रधानहै और शेष अणु रूपसे व्याप्त और संमिलित होतेहैं ॥ १ ॥

तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद्वायुरुदीरयति ततस्तेजोनिलसंनिपातात् शुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्तवेन ततोऽग्निसोमसंयोगात् सृज्यमानो गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते ॥ २ ॥

तहां स्त्री पुरुषके संयोग होनेपर जो गरमाई उत्पन्न होती है वह शरीरमें वायुको उत्कट करती है फिर उस गरमाई और वायुके मिलनेसे पुरुषका वीर्य निकल कर स्त्रीकी योनिमें प्राप्त होता है और आर्तवके संग मिलता है फिर अग्नि (आर्तव) और सोम (वीर्य) का संयोग होनेसे उत्पन्न हुवा गर्भ गर्भाशयमें प्राप्त होता है २ ॥

क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गंता साक्षी धाता वक्ता योसावित्येवमादिभिः पर्य्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययो ऽचिंत्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्वरजस्तमोभिर्देवासुरैरपरैश्चभावैर्वायुना ऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ॥ ३ ॥

गर्भाशयमें शुक्र शोणितका संयोग होनेपर वह क्षेत्रज्ञ जाननेवाला (त्वगिंद्रियसे) स्पर्शका बोध करनेवाला (घ्राणसे) सूंघनेवाला चक्षुसे (देखनेवाला) कर्णेंद्रियसे (सुननेवाला) रसनासे (स्वाद लेनेवाला) पुरुष स्रष्टा गमन शील साक्षी धारण करनेवाला बोलनेवाला (जीवात्मा) जो क्षेत्रज्ञादि पर्याय वाची नामोंसे बोला जाता है दैव योगसे वही अव्यय (अविनाशी) अचिंत्य (जो चिंतवनमें नहीं आसके) भूतात्मा (सूक्ष्म लिंग शरीर) के साथ सत्व रज तम इन गुणों करके और देवता असुर आदि अनेक भावों करके युक्त तात्काल वायु करके प्रेरण किया हुवा गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर स्थित होता है (अर्थात कर्म वश वायुका प्रेरण किया हुवा गर्भ भावको प्राप्त होता है) ॥ ३ ॥

(गद्य ३) दैवयोगात् इतिपाकनजन्मकर्मणोधर्माधर्मोभिधानव्यसबंधात् । भूतात्मनासह इति [illegible] सूक्ष्मेनालिंगशरीरेणेत्यर्थः । अन्वक्षं तत्क्षणमेव । (इति वि० सं०) देवासुरैरपरैर्भावैरिति कदाचित्सुकर्मवशाद्देवो भूत्वाकदाचित्कुकर्मवशादसुरोभूत्वा कदाचित् कर्मवशात् मनुष्ययोनितिर्यग्योनिभावभूतैरपरैः ॥

तत्र शुक्रबाहुल्यात्पुमानार्तवबाहुल्यात्स्त्री साम्यादुभयोर्नपुंसकमिति॥४॥ ऋतुस्तुद्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तवः अदृष्टार्तवाप्यस्तीत्येके भाषंते।।५।।

वहां (गर्भाशयमें) शुक्रकी बाहुल्यता होनेसे लडका होता है और आर्तव शोणितकी बाहुल्यतासे लडकी होती है तथा दोनोंके बराबर होनेसे नपुंसक संतान होती है ॥ ४ ॥ जब रजस्वला होनेका दर्शन हो तभी बारह रात्री ऋतु (गर्भ स्थितिका समय) कहलाता है रजस्वला दर्शनसे १६ रात्री ऋतु कहाता है जिसमें आदिकी तीन और अंत्यकी एक त्याज्य है(तब बारह रहीं अथवा रजो दर्शनसे बारह रात्रीही ऋतु है क्यों कि पहले ऐसा कह आये हैं कि " त्रयोदशी प्रभृतयो निंद्याः ") और अदृष्टार्त्तवाकोभी कई ऋतुमती होती हैं ऐसा कहते हैं (अर्थात् कई ऐसा कहते हैं कि रजस्वला न होनेपरभी ऋतुकाल गर्भ स्थितिका समय कभी कभी हो जाता है जैसे बालक दूध पीता हो वह दूध छोड दे या दूध पीते बालककी मृत्यु हो जाय या बालक गोदमें हो और बहुत दिनसे पति संगकी वांछा हो इत्यादि मौकोंपर विना रजस्वला हुवेभी गर्भ स्थिति हो जाती है देश भाषामें ऐसे गर्भको इनामका गर्भ कहते हैं) ॥ ५ ॥

ऋतुमतीस्त्रीके लक्षण ।

भवंति चात्र।।पीनप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम्॥नरकामां प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम्।।६।।फुरद्भुजकुचश्रोणि नाभ्यूरुजघनस्फिचम् ॥ हर्षौत्सुक्यपरांचापि विद्यादृतुमतीमिति ।। ७ ।।

यहां इसमें श्लोकहैं कि अब जिसका मुख पुष्ट और प्रसन्नहो तथा शरीर मुख और दंतवेष्ट (मसूडे) क्लेदित (गलगलाये हुवेसे) हों और पुरुषकी अभिलाषा हो तथा मीठी प्यारी बातें करे और कुक्षि नेत्र और बाल ढीलसे होजांय ॥ ६ ॥ तथा हाथ कुचा कमर नाभि जानु जंघा और चूतड फडकने लगजांय तथा हर्ष और आनंदमें तत्पर हो तो ऐसी स्त्रीको (विना रजो दर्शनके भी) ऋतुमती जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

(वाक्य ४) शुक्रबाहुल्यादिति शुक्रं प्रसृतिमात्र आर्तवं चतुरंजलिप्रमाणच नैवयावन्मात्रमार्तवं गर्भाशयाव-[illegible] [illegible] [illegible] अथवा स्वमानापेक्षयाशुक्रशोणितयोर्बाहुल्यमत्राभिप्रेतं शुक्रंतु कदाचिदत्यंतम् [illegible] बहुत्वात् कदाचित्[illegible]मिति । अन्येत्वाचार्या एवंब्रुवंति शुक्रार्तवयोर्न्यूनाधिकसमत्वंचवीर्येणभवति इति (नि० सं०) ॥

(श्लो० ६ । ७) [illegible]पीनेत्यादि । प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजां इत्यत्रआत्मादेहः । द्विज [illegible] [illegible] अभिप्रेताः द्विजानांप्रक्लेदा संभवात् । (इति नि० सं०) ॥

नियतं दिवसेऽतीते संकुचत्यंबुजं यथा॥ ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ ८ ॥

जैसे दिनके व्यतीत होनेपर अवश्य कमल बंद हो जाता है इसी तरह ऋतु (सोलह रात्र) व्यतीत हो जानेपर स्त्रीकी योनि (गर्भाशयका मुख) बंद हो जावे है ॥ ८ ॥

मासेनोपचितंकाले धमनीभ्यांतदार्तवम्॥ ईषत्कृष्णं विगंधं च वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ ९॥ तद्वर्षात् द्वादशात्काले वर्तमानमसृक्पुनः॥ जरापक्वशरीराणां याति पंचाशतः क्षयम् ॥ १० ॥

वह आर्तव जब एक महीने भरसे इकट्ठा हो जाता है तब कुछ काला और दुर्गंध युक्त हुवा धमनियों करके योनिके मुखपर बाहर आजाता है (इसीको रजोदर्शन कहते हैं) ॥ ९ ॥ वह अनुमान १२ वर्षकी अवस्थासे पीछे स्त्रियोंके वर्तमान होता है और जब बुढापेसे शरीर पक जाता है तब पचास वर्षकी अवस्था हो जानेपर क्षय हो जाता है ॥ १० ॥

युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला॥ पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ ११ ॥

सम दिनोंमें (रजकी प्रबलता न होनेसे) पुत्र होता है और अन्यथा अर्थात विषम दिनोंमें (रज शोणितकी प्रबलता होनेसे) कन्या होती है इससे पुष्प काल (ऋतुकाल) में संतानकी इच्छावाला पुरुष पवित्र होकर स्त्री गमन करे ॥ ११ ॥

गर्भरहनेका तात्कालिक लक्षण ।

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिंगानि श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयोरवबंधः स्फुरणंचयोनेः ॥ १२ ॥

तत्कालही गर्भ धारण किये हुवे स्त्रीके ये चिह्न होतेहैं कि श्रम (थकान) और ग्लानि प्यास तथा साथलें थकी हुईसी होना और शुक्र शोणितका अवबंध (प्रवर्तन न होना) तथा योनिका फरकना ॥ १२ ॥

गर्भवती स्त्रीके लक्षण ।

स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा ॥ अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः संमील्यंते विशेषतः ॥ १३ ॥ अकामतश्छर्दयति गंधादुद्विजते शुभात् ॥ प्रसेकः सदनंचापि गर्भिण्या लिंगमुच्यते ॥ १४ ॥

(वाक्य १४) प्रसेकः थूकरणम् ॥

दोनों चूंचियोंके मुखपर कालापनहो रोमराजि (पेटपर बालोंकी सेली) उठीसी दीखे और नेत्रोंकी पलकें विशेष मिचें ॥ १३ ॥ तथा बिनाकारण वमनहो और सुगंधभी बुरीलगे मुहमें थूक अधिक आवे और थकानहो तो जानना चाहिये कि यह स्त्री गर्भवतीहै ॥ १४ ॥

तदाप्रभृत्येव व्यायामं व्यवायमतर्पणमतिकर्षणं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानावरोहणं भयमुत्कटकासनं चैकांततः स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं चाकाले वेगविधारणंच न सेवेत ॥ १५ ॥

जबसे गर्भवती मालूमहो तभीसे आदिले प्रसव पर्यंत व्यायाम अति परिश्रम बोझ उठाना आदि) मैथुन और अपतर्पण (जो तृप्ति कारक नहो किंतु दाहादि जनक पदार्थ) और अति कर्षण (तेज वमन विरेचन तथा कृश करने वाले आहार विहार) दिनको सोना रात्रिको जागना शोक (फिकर) सवारी पर बैठना डरना और उत्कटकासन अर्थात् जोरसे खांसना अथवा उत्कटक आसन (ऊंचेनीचे विशेष अंग करके या बहुत मोड तोड़के या विषम आसनमें बैठना) तथा अकाल नियमसे तैलाभ्यंगादि करना तथा फसद आदि रक्त निकलवाना और वेगोंको रोकना इन सब बातोंको स्त्री न करें (अकाल तैलाभ्यंगादि न करे किंतु अष्टम नवम मासमें तो तैलाभ्यंग योग्यही है)॥ १५ ॥

दोषाभिघातैर्गर्भिण्यां यो यो भागः प्रपीड्यते॥स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ १६ ॥

वातादि दोषों करके अथवा अभिघात आदिसे गर्भिणी स्त्रीके जिस २ भागको पीडा पहुंचे तो उससे गर्भगत बालककेभी उसी उस भागको पीडा पहुँचती है॥१६॥

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ॥ १७ ॥ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते यदि पिंडः पुमान् स्त्रीचेत्पेशी नपुंसकं चेदर्बुदमिति ॥ १८ ॥ तृतीये हस्तपादशिरसां पंचपिण्डका निर्वर्त्तंते अंगप्रत्यंगविभागश्च सूक्ष्मो भवति ॥ १९ ॥ चतुर्थे सर्वांगप्रत्यंगविभागः प्रव्यक्ततरो भवति गर्भहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति कस्मात्तत्स्थानत्वात्तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिंद्रियार्थेषु करोति द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनीमाचक्षते ॥ २० ॥

([illegible] १५) अत्र अकालशब्दः एतत् ज्ञापयति कालेअष्टमेमासि गर्भिण्याअपिस्नेहादिक्रियांतर्गते आस्था- [illegible] ([illegible]) ॥

उस गर्भका आकार पहले महीनेमें कलल (द्रवरूप सिंघाणक सा) होता है ॥ ॥ १७ ॥ फिर दूसरे महीनेमें शीत और उष्ण तथा वायुसे परिपाक हुये पृथिव्यादिक महाभूतोंका करड़ा संघात होकर पिंडासा हो जाता है तब यदि वह गोल पिंडासा होतो पुत्रका गर्भ समझना चाहिये और जो कन्या हो तब पेशी लंबी मुष्टीसी होती है और जो नपुंसक होतो अर्बुद (रसोलीसा जैसे गोलफल आधा किया हुवा हो ऐसा) होता है ॥ १८ ॥ तीसरे महीनेमें हाथ पांव और शिर इन पांचोंके पांच शाखासी निकलने लगती हैं और थोड़ा २ अंग प्रत्यंगका विभागसा प्रगट होने लगता है ॥ १९ ॥ और चौथे महीनेमें सारेअंग प्रत्यंगोंके विभाग फूट प्रगट होते हैं और गर्भस्थका हृदय प्रगट हो जानेसे चैतन्य धातु (क्षेत्रज्ञ जीव) भी प्रगट प्रतीत होजाता है क्योंकि हृदय चेतनाका स्थान है हृदय प्रगट होनेसे चेतना प्रगट हो जाती है इस कारणसे चौथे महीनेमें गर्भस्थ जीव इंद्रियोंके अर्थ (इंद्रियोंके भोगों) में रुचि करने लगता है (जो कि चौथे मास गर्भवती स्त्रीके दोहृदय होते हैं एक उस स्त्रीका हृदय दूसरे गर्भस्थ बालकका इससे उसे दौ हृदनी (दोहृदय वाली कहते हैं) ॥ २० ॥

दौहृद न मिलने मिलनेके हानि लाभ ।

दौहृदविमाननात्कुब्जं कुणिं खंजं जडं वामनं विकृताक्षं वा नारी सुतं जनयति तस्मात्सायद्यदिच्छेत्तत्तस्यै दापयेत् ॥ लब्धदौहृदा हि वीर्यवंतं चिरायुषं च पुत्रं जनयति ॥ २१ ॥

दौहृद (द्विहृदया स्त्रीका वांछित पदार्थ) उसे प्राप्त न होनेसे कुबड़ा टूंटा पांगला मूर्ख या बौना तथा विकारयुक्त नेत्रोंवाला बालक स्त्रीके पैदा होताहै इससे वह स्त्री जिस पदार्थकी इच्छा करे उसे वही वह पदार्थ अवश्य दिलवाना चाहिये (इस कारणसे कि) दौहृद प्राप्त होनेसे पराक्रमवाला दीर्घायु अच्छा बालक पैदा होता है ॥ २१ ॥

इंद्रियार्थांस्तु यान् यान्सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी। गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥२२॥ सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम्। अलब्धदौहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ २३ ॥ येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे वै विमानना॥प्रजायेत सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेंद्रिये ॥ २४

जिन जिन इंद्रियोंके अर्थों (शब्द स्पर्श रूप रस गंध आदि भोगों) को गर्भिणी स्त्री भोगनेकी इच्छा करे (उनके न मिलनेसे) गर्भमें बाधा होती है इस भयसे उन उन सब भोगोंको वैद्य दिलावे ॥२२॥ (क्योंकि) जब स्त्रीको दौहृद मिल

जाता है तौ गुणयुक्त पुत्र (या पुत्री) पैदा करती है और उसे दौहद न मिले तौ गर्भगत बालकको अथवा आप गर्भिणीको भय रहता है (कि कुछ उपाधि न हो जाय) ॥ २३ ॥ जिन जिन इंद्रियोंके भोगोंकी दौहदमें प्राप्ति न हो तौ बालकके उन्ही उन इंद्रियोंमें हानि होती है ॥ २४ ॥

दौहृदके फल ।

राजसंदर्शने यस्या दौहृदं जायते स्त्रियाः॥ अर्थवंतं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २५॥ दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौहृदात् ॥ अलंकारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीका दौहद (मन) राजाके दर्शनमें होता है तब उसके द्रव्यवान् बडे भागवाला लडका पैदा होता है ॥ २५ ॥ रेशमी पाटके और टसरके अच्छे २ वस्त्रों तथा आभूषणोंमें दौहद (मन) होनेसे अलंकार (शृंगार) चाहनेवाला ललित (शौकीन) पुत्र पैदा होता है ॥ २६ ॥

आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते॥ देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ २७॥ दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते॥ गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् ॥ २८ ॥

जिस स्त्रीका मन महात्माओंके आश्रम (और तीर्थादि) में हो उसके धर्मशील बालक होवे और जिसका चित्त देवताओंकी प्रतिमा (मंदिर आदिमें हो) उसके सत्पात्र पार्षद जैसा पुत्र होवे ॥ २७ ॥ तथा जिसका चित्त सर्पादि हिंसकजीवोंके देखनेका चाहे उसके हिंसक बालक पैदाहोवे और जिसका मन गोहका मांस खानेमें हो उसके निद्रालु धारण शील (दीर्घ सूत्री) बालक होवे ॥ २८ ॥

गवां मांसे च बलिनं सर्वक्लेशसहं तथा॥ माहिषे दौहृदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम् ॥ २९॥ वाराहमांसात्स्वप्नालुं शूरं संजनयेत्सुतम्॥ मार्गाद्विक्रांतजंघालं सदावनचरं सुतम्॥ सृमरादुद्विग्नमनसं नित्यभीतं च तैत्तिरात् ३०॥

गोमांसका दौहद होतो बलवान् और सब क्लेशोंका सहनेवाला बालकहो और महिषमांस पर दौहद हो तौ शूरवीर लाल नेत्रवाला रोमों युक्त बालक होवे ॥२९॥ वाराह (शूकर) के मांसपर दौहद हो तौ सोनेवाला और शूरवीर बालक पैदाहोवे तथा मार्ग चलने पर मन हो तौ बडी बडी जाँघों वाला और सदैव वनका विचरने वाला बालक होवे (अथवा " मार्गात् " मृग मांसपर दौहद होनेसे बडी जंघा वाला सदावनचारी बालक होवे) तथा सृमर (साबर) के मांसपर चित्त होतो

उद्विग्न मनवाला बालक हो और तीतरके मांसपर चित्त होनेसे सदा डरनेवाला बालक होवे (कई नित्य भीतकी जगह नित्यशील पाठ मानतेहैं कि तीतरके मांस पर मन होनेसे नित्य शीलवान् हो) ॥ ३० ॥

अतोनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौहृदम्। शरीराचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ ३१ ॥ कर्मणा चोदितं जंतोर्भवितव्यं पुनर्भवेत् ॥ यथा तथा दैवयोगाद्दौहृदं जनयेद्ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

इनके सिवा जो नहीं कहेहैं बहुतेरे उनपर दौहृद होवे तो उनके शरीर आचार और शीलके समान बालक पैदा होवे ऐसा जानना पहले मांसाशी वनवासी मनुष्य अधिकथे उनके अनुसारही सुश्रुत जीने दौहृद कह दिये परंतु अनेक व्यंजन और फलादि धान्यादि नहीं कहे उनके गुण और प्रकृति देखकर अबके वैद्योंको अब विचार लेना चाहिये) ॥ ३१ ॥ कर्मका प्रेरण किया हुवा और भवितव्य जैसा होताहै दैवयोगसे वैसा वैसाही दौहृद होताहै अर्थात् उसीके अनुसार स्त्रीका मन चलताहै ३२

पंचमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति षष्ठे बुद्धिः । सप्तमे सर्वांगप्रत्यंगविभागः प्रव्यक्ततरः ॥ ३३ ॥ अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागत्वाच्च ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत् ॥ ३४ ॥ नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोन्यथा विकारी भवति ॥ ३५ ॥

पांचवें महीनेमें मनमें अधिक चैतन्यता हो जाती है और छटे महीनेमें बुद्धि उत्पन्न होती है । तथा सातवेंमें संपूर्ण अंग और सब प्रत्यंग स्पष्टरूपसे स्फुट हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ आठवें महीनेमें ओजस्थिर नहीं होता इससे आठवें महीनेका पैदा हुवा बालक ओज रहित होनेके कारण और इन दिनो यह राक्षसोंका भाग होनेसे नहीं जीवता है इस लिये मांस चावल राक्षसोंको बलिदान करना ॥ ३४ ॥ और नवें तथा दशवेंमें और कभी कभी ग्यारहवे बारहवें महीनेमेंभी बालक जन्मता है और कदाचित् बारहवें महीनेसेभी अधिक व्यतीत होजाय तो इसे गर्भ क्या एक विकार है ऐसा जाने ॥ ३५ ॥

गर्भकी पुष्टि ।

मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाडी प्रतिबद्धा सास्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति ॥ ३६ ॥

(वाक्य ३६) अस्यबालस्य नाभिनाडी मातुः रसवहायां नाड्यां प्रतिबद्धा सा मातुराहाररसवीर्यमभिवहती- त्यन्वयः ॥

माताके रस (भोजनके रस) की बहनेवाली नाडीमें गर्भस्थ बालककी नाभि नाडी(नाल) बंधी हुई अर्थात् लगी हुई है वह माताके किये हुये आहारके रस और वीर्यको प्राप्तकरलेती है उसके सारभूत स्नेहसे गर्भस्थ बालककी वृद्धि होती है॥ ३६॥

असंजातांगप्रत्यंगविभागमानिषेकात्प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति ॥ ३७ ॥

और जबतक अंगप्रत्यंग नहीं पैदा होते हैं केवल कलल पिंडरूपही गर्भ होता है तथा गर्भके नाभि नाडीसी नहीं होती तब अर्थात् गर्भ स्थितिके समयहीसे लेकर उस अवस्थामें गर्भिणीके सारे शरीरके अनुसरण करनेवाली रस बहनेवाली तिर्यग्गमन करनेवाली धमनियोंका उपस्नेह (सारभूत द्रव) गर्भको जीवन (पोषण वर्द्धनादि) करता है ॥ ३७ ॥

गर्भका कौन अंग पहलेहो इसका विवेचन ।

गर्भस्य हि संभवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः शिरोमूलत्वाद्देहेन्द्रियाणाम् ॥ ३८ ॥ हृदयमिति कृतवीर्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात् ॥ ३९ ॥ नाभिरिति पराशर्यस्ततो हि वर्द्धते देहो देहिनः ॥ ४० ॥ पाणिपादमिति मार्कंडेयस्तन्मूलत्वाच्चेष्टायाः गर्भस्य ॥ ४१ ॥ मध्यशरीरमिति सुभूतिर्गौतमस्तन्निबद्धत्वात् सर्वगात्रसंभवस्य ॥ ४२ ॥

गर्भस्थ बालकके पहले शिर पैदा होता है ऐसे शौनक कहते हैं क्योंकि देह इंद्रियोंका मूल शिर है ॥ ३८ ॥ और कृतवीर्य ऐसा कहते हैं कि हृदय बुद्धि और मनका स्थान है इस कारणसे हृदयही पहले होता है ३९ और पराशरका ऐसा मत है कि नाभिसे प्राणियोंका देह बढता है (उसमेंही रस वहा शिरा द्वारा रस पहुँच कर शरीर बढता है) इससे नाभिही पहले होती है ॥ ४० ॥ मार्कंडेय ऋषि ऐसा कहतेहैं कि चेष्टाका मूल हाथ पाँव हैं और गर्भमें चेष्टा प्रकटही होती हैं इससे हाथ पाँव पहले होतेहैं ॥ ४१ ॥ सुभूति गौतम ऐसा कहतेहैं कि मध्य शरीरसेही सब गात्र संनिबद्ध हैं इससे मध्य शरीर (मंदला अर्थात् धड) ही पहले होताहै॥ ४२॥

तन्तु न सम्यक् । सर्वांगप्रत्यंगानि युगपत्संभवंतीत्याह धन्वंतरिर्गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यंते वंशांकुरवच्चूतफलवच्च । तद्यथा चूतफलेऽपरिपक्के केशरमांसास्थिमज्जा न पृथग् दृश्यंते कालप्रकर्षात्तान्येव तरुणेनोपलभ्यंते सूक्ष्मत्वात्तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति ।

एतेनैव वंशांकुरोपि व्याख्यातः एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वंगप्रत्यंगेषु सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवंति ४३

ऊपर कहे हुये सब ठीक नहीं ऐसा धन्वंतरिजी कहते हैं श्री धन्वंतरिजीका मत इस विषयमें यह है कि बालकके सब अंग प्रत्यंग संग एक वारही पैदा होते हैं व गर्भके सूक्ष्म होनेके कारणसे जाने नहीं जातेहैं जैसे बांसकी कोपल अथवा जैसे आँबका फल । वह यूँ हैं कि कच्चे (बहुत छोटे) आंबके फलमें केसरें (मृत) और मांस अर्थात् गूदा और आस्थि अर्थात् गुठली तथा मज्जा उसकी गिरी ये सूक्ष्म होनेसे न्यारे न्यारे नहीं मालूम होते और फिर कालके बढनेपर वही पकाव आनेसे प्रगट मालूम होने लगतेहैं और उन सूक्ष्म केसरें आदिहीकी समय प्रगटता कर देता है इसी तरह बांसके अंकुरमें भी समय पाकरही पोरी आदि सब स्फुट होते हैं इसी प्रकारसे छोटापनमे गर्भके संपूर्ण अंग प्रत्यंग उसमें हैं तौ भी सूक्ष्मताके कारण दिखाई नहीं देते और वेही फिर समयके बढनेसे स्फुट (प्रगट) हो जातेहैं ॥ ४३ ॥

गर्भके पितृज मातृज रसज आदि अंश ।

तत्र गर्भस्य पितृजमातृजरसजात्मजसत्वजसात्म्यजानि शरीरलक्षणानि व्याख्यास्यामः ॥ ४४ ॥

उस गर्भस्थमें पितृज (पैतृक भाग) कौन २ हैं तथा मातृज क्या क्या हैं रसज क्या हैं आत्मज क्या हैं सत्वज क्या हैं और सात्म्यज क्या २ भाग शरीरमें हैं इनके लक्षणोंकी व्याख्या करते हैं ॥ ४४ ॥

गर्भस्य केशश्मश्रुलोमास्थिनखदंतशिरास्नायुधमनीरेतःप्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि ॥ ४५ ॥

संतानके बाल डाढ़ी मूछें और रोम हाड नखून दांत शिरा (बारीक रंग) स्नायु (नसें) और धमनी (नाडी) तथा वीर्य आदि स्थिर पदार्थ पितृज हैं (पितासे उत्पन्न होते हैं अर्थात इनमें पैतृक अंश होता है) ॥ ४५ ॥

मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभीयकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि ॥

मांस रुधिर मेद मज्जा हृदय नाभि यकृत् (जिगर) प्लीहा (तिल्ली) और अंत्र (अंतडी) तथा गुदा आदि कोमल पदार्थ माताके अंशसे होते हैं ॥ ४६ ॥

शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि । इंद्रियाणि ज्ञानं

(वाक्य ४३) केशादिधमन्या न पृथक्दृश्यंते इत्यत्र [illegible] महानिधौ मज्जास्थीमसृज् आम्रष्ट अस्थिसारे । तानि केशरादीनि ॥

विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकं चात्मजानि । सत्वजान्युत्तरं वक्ष्यामः । वीर्यमारोग्यं बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि ॥ ४७ ॥

शरीरका मुटापा बलवर्ण स्थिति और हानि (क्षीणता) ये रससे (गर्भिणीके भोजनके रससे) होते हैं अर्थात् जैसा गर्भिणी भोजन करती है और जैसा उसका रस गर्भमें पहुंचता है वैसे होते हैं। इंद्रिय (ज्ञानेंद्रिय) तथा ज्ञान और विज्ञान आयुः सुख दुःख इत्यादिक आत्मज हैं (अर्थात् जीव जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्व जन्ममें करता है उसके अनुसार आत्माके सान्निध्यसे होते हैं)। सत्वसे होनेवाले भाग अगाडी कहेंगे। और वीर्य आरोग्यता बलवर्ण और मेधा ये सात्म्यज होते हैं (अपने अनुकूलतासे होते हैं) ॥ ४७ ॥

(शंका) इसमें यह है कि, वीर्य और बल वर्ण ये दो दो वार वर्णन क्यों किये तो (उत्तर) यह है कि, वीर्य पैतृक भागसे तो होताही है परंच सात्म्यसेभी होता है इसी तरह बल और वर्णभी गर्भिणीकि भोजनके रससे तो होतेही हैं पर सात्म्यसेभी होतें हैं) ॥

गर्भमें पुत्रपुत्री आदिकी परीक्षा।

तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति दक्षिणाक्षिमहत्वं च पूर्वं च दक्षिणसक्थ्युत्कर्षति बाहुल्याच पुन्नामधेयेषु द्रव्येषु दौहृदमभिध्यायति स्वप्नेषु चोपलभते पद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनि पुन्नामान्येवं प्रसन्नमुखवर्णा च भवति तां ब्रूयात् पुत्रमियं जनयिष्यतीति तद्विपर्यये कन्याम् ॥ ४८ ॥

जिस गर्भवतीके दाहने स्तनमें पहले दूध दिखलाई देवे और दाहनी आँख कुछ २ भारी मालूम पड़े पहले दाहनी साँथलमें भारापन हो विशेष पुरुषवाचक द्रव्यों को दौहृदमें चाहे और स्वप्नमें कमल कुमुद आमडा आदि पुरुष नाम वाले पदार्थोंको प्राप्त करे और मुख और रूप सुंदर हो तो कहना चाहिये कि,इसके पुत्र उत्पन्न होगा और जो इसके विपरीत हो तो कन्या होगी ऐसे कहना चाहिये ॥ ४८ ॥

यस्याः पार्श्वद्वयमुन्नतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहितलक्षणं च तस्य नपुंसकमिति विद्यात् ॥ ४९ ॥ यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीप्रभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूत इति ॥ ५० ॥

जिसके दोनों पँसवाड़े ऊँचे हों और पेट आगेको निकलासा हो तथा पूर्वोक्त दोनोंके मिले हुवेसे लक्षणहों तो उसके नपुंसक बालक होगा ऐसा जानना चाहिये

॥ ४९ ॥ और जिसके उदरमें बीचमें नीचापन और गोणकी भांत उदर दोनों तर-फसे उभराहो तौ उस स्त्रीके दो बालक जौड़ले होंगे ऐसा जानना चाहिये ॥ ५० ॥

गर्भके अंगप्रत्यंगोंकी सुंदरता असुंदरता ।

भवंति चात्र॥ देवताब्राह्मणपरा शौचाचारहिते रता ॥ महागुणान् प्रसू-यंते विपरीतांस्तु निर्गुणान् ॥ ५१ ॥ अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते॥अंगप्रत्यंगनिर्वृत्तौ ये भवंति गुणागुणाः॥ ते ते गर्भस्य विज्ञेयो धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ५२ ॥

इति शारीरके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

यहां श्लोक हैं कि, जो गर्भिणी स्त्री गर्भके समय देवता ब्राह्मणादिके सेवनादिमें तत्परहो तथा शौच आचार और परोपकारमें रत होतौ अच्छे गुणवाली संतान उत्पन्न होवे और इसके विपरीतहो अर्थात् देवता आदि की निंदा करे शौच नरकवे तो निगुर्ण (गुणोंसे रहित) संतान पैदा होवे ॥ ५१ ॥ अंग प्रत्यंगौका उत्पन्न होना यह स्वभावहीसे होताहै परंतु तौभी अंग प्रत्यंगके उत्पन्न होते समय जो जो गुण दोष गर्भिणी स्त्रीके होते हैं वेही वे धर्माधर्मके अनुकूल बालकके भी होतेही है अर्थात् जैसा धर्माधर्म जीवका होताहै उसके अनुसारही गर्भिणी स्त्री गर्भके अंग प्रत्यंग होते समय गुण अगुण करतीहै और उसीके अनुकूल बालकके पूर्ण अंग प्रत्यंग सुंदर होतेहैं या पंगु कूबड़ा आदि होताहै गर्भिणी शुभ गुणोंका आचरण करे तौ सुंदर अंग प्रत्यंग हों और अयोग्य आचरणोंसे विकारयुक्त अंग प्रत्यंग होतेहैं ॥ ५२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाः सान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्ट भाषाटीकायां शारीरस्थाने समाप्तम् ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो गर्भव्याकरणं नाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अगाड़ी गर्भके व्याकरण अर्थात् विवेचन नामक शारीरकका व्याख्यान करते हैं ॥

अग्निः सोमो वायुः सत्वं रजस्तमः पंचेंद्रियाणि भूतात्मेति प्राणाः ॥ १ ॥

अग्नि (पाचकादि रूप शारीरोष्मा (सोम) कफ रस शुक्रादि द्रवत्व [illegible] शीत) वायु (प्राणोदानादि भेदसे जो पांच प्रकारका है) तथा सत्व रज और तम दे

(वाक्य १) गर्भव्याकरणं गर्भविवरणमित्यर्थः । तत्राग्निस्ता[illegible] । सोमः [illegible] धातोरोजःप्रभृतेः पोषणेन । वायुश्चदोषधातुमलादीनां [illegible] । [illegible] परिणतभूतात्मनः शरीरांतरग्रहणमोक्षणे हेतुरिति तदपि प्राणयति । [illegible] प्राणयंति । एवंभूतात्मा पंचभूतात्मा कर्मपुरुष[illegible] प्राणयंति जीवयंतीति प्राणाः (इति डल्हनः) ॥

तीनो गुण और पांच इंद्रिय (श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा घ्राण) और भूतात्मा (पंच भूतात्मक जीवात्मा जो शुभाशुभ कर्मो करके ग्रहण किया हुवा कर्म पुरुष कहलाता है) ये सब प्राण अर्थात् जीव कहलातेहैं) अर्थात् प्राणोंको धारण पोषण करते हैं इससे ये प्राणही है)॥ १ ॥

त्वचाओंका वर्णन ।

तस्य खल्वेवं प्रवृत्तस्य शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य क्षीरस्येवं संतानिकाः सप्तत्वचो भवंति ॥ २ ॥

इस प्रकार (अग्नि सोमादिके संयोगसे) प्रवृत्त (भूतात्माधिष्ठित) शीतोष्ण वातादि करके पचायमान शुक्र शोणित (के संयोग रूपगर्भ) के सात त्वचा (चर्म) होतेहैं जैसे दूधके पकनेपर मलाई होती है ॥ २ ॥

तासां प्रथमावभासिनी नाम या सर्ववर्णानवभासयती पंचविधां च छायां प्रकाशयति सा व्रीहेरष्टादशभागप्रमाणा सिध्मपद्मकंटकाधिष्ठाना ॥ ३ ॥ द्वितीया लोहिता नाम षोडशभागप्रमाणा तिलकालकन्यच्छव्यंगाधिष्ठाना।

इनमेंसे प्रथम (सबसे ऊपरकी त्वचा) अव भासनी नामक है यह समस्त वर्णों कृष्णता गौरतादिको प्रकाश करती है और पांच प्रकारकी पांच भौतिक छाया (और चकारके ग्रहणसे प्रभा) को प्रकाश करती है यह व्रीहि (जौ) के वीसवें अठारह भागके समान मोटी है सीप और पद्म कंटक नाम चर्म रोगोंके होनेका स्थान यही है अर्थात् सीप पद्म कंटक इसी ऊपरकी त्वचामें होते है ॥ ३ ॥ दूसरी लोहिता नामकत्वचाहै । यह जौके सोलह भागके समान मोटी हैं और तिल न्यच्छ (चकदे) और व्यंग (झाँई) इनके होनेका स्थान हैं अर्थात् तिल चकदे और झांई ये दूसरी चर्ममेंहोते हैं ॥ ४ ॥

तृतीया श्वेता नाम द्वादशभागप्रमाणा चर्मदलाजगल्लिकामशकाधिष्ठाना ॥ ५ ॥ चतुर्थी ताम्रा नामाष्टभागप्रमाणा विविधकिलासकुष्ठाधिष्ठाना ६ पंचमी वेदिनी नाम व्रीहिपंचभागप्रमाणा कुष्ठविसर्पाधिष्ठाना ॥ ७ ॥ षष्ठी रोहिणी नाम व्रीहिप्रमाणा ग्रंथ्यपच्यर्बुदश्लीपदगलगंडाधिष्ठाना ८

(वाक्य २) प्रवृत्तस्य भूतात्माधिष्ठितस्य ॥

(वा० ३) वर्णान् गौरादीन् । अवभासयति भ्राजकेनाग्निनेति शेषः । पंचविधां पंचात्मिकां पंचभूतकृतत्वात् छायां [illegible] छाया प्रभा दूरात्प्रकाशते इतिनयोर्भेदः । तस्यास्त्वचः प्रमाणं व्रीहिविस्तारस्य [illegible] व्रीहिरवयवः (इति डल्हणोपाध्यायमिश्रः) ।

सप्तमी मांसधरा नाम व्रीहिद्वयप्रमाणा भगंदरविद्रध्यर्शोऽधिष्ठाना ॥ ९ ॥
यदेतत्प्रमाणं निर्दिष्टं तन्मांसलेष्ववकाशेषु न ललाटे सूक्ष्मांगुल्यादिषु
यतो वक्ष्यत्युदरेषु व्रीहिमुखेनांगुष्ठोदरप्रमाणमवगाढं विध्येदिति ॥ १० ॥

तीसरी श्वेतानाम (श्वेत) त्वचा है यह जौके बारह भाग जितनी मोटी है और
चर्मदल अजगल्लिका और मशक (मस्से) पैदा होनेका स्थान है ॥ ५ ॥ चौथी
ताम्रानाम (तांबेजैसी वर्णकी) त्वचा है यह जौके आठ भाग जितनी मोटी है और
इसमें अनेक प्रकारके किलास और कुष्ठ होते हैं ॥ ६ ॥ पाँचवीं वेदनी नामक त्वचा
जौके पांच भागके बराबर है और कुष्ठ और विसर्प इसीमें होते हैं ॥ ७ ॥ छटी रोहिणी
नामक त्वचा यवकी मुटाईके समान है ग्रंथि (गांठे) और अपची तथा अर्बुद
(रसोली) और श्लीपद (पीलपाया) तथा गलगंड ये इस छटी त्वचामें होते
हैं ॥ ८ ॥ सातवीं मांसधरा नामक त्वचा है यह दो जौकी मुटाईके समान है और
भगंदर और विद्रधि तथा बवासीरके मस्से इसीमें होते हैं ॥ ९ ॥ यह जो प्रमाण
कहा सो अति मांसवाले शरीरके स्थूल भागकी त्वचाओंमें होता है (जैसे जंघा
नितंबादि) और ललाट तथा छोटी अंगुली आदिमें नहीं होता क्योंकि अगाडी
उदर रोगोंकी शस्त्रचिकित्सामें ऐसा कहा है कि, व्रीहिमुख नामक शस्त्रसे अंगूठेके
उदर प्रमाण गहरा वेधन करे ॥ १० ॥

परिशिष्ट ।

त्वचायमखिलः कायः संवृतो विश्वकर्मणा ॥ बाह्योपद्रवसंघाताद्रक्षितः साधु-
तिष्ठति ॥ १ ॥ स्तरद्वयवतीयं त्वक् तद्बाह्यश्चर्म कथ्यते ॥ स्तरो नामा-
च्यतेंतस्त्वक् भूमिस्पर्शेंद्रियस्यसा ॥ २ ॥ उपर्युपरिविर्निर्माणस्तरसप्तक-
संहते ॥ एषा त्वगखिला जाता केश्चिदिति च मन्यते ॥ ३ ॥ तोयानिलादि
संकर्षः स्वेदस्य च विनिर्गमः ॥ दैहिकस्योष्मणो रक्षा त्वचा संपाद्यते ध्रुवम् ४ ॥

ग्रंथांतरमें त्वचाके विषयमें ऐसा लिखा है कि–

(अर्थ) विश्वकर्मा परमेश्वरने यह संपूर्ण शरीर त्वचासे ढका हुवा है इस लिये
कि, बाहरके उपद्रवों और आघातोंसे रक्षित हुवा शरीर सुख पूर्वक रहे ॥ १ ॥
यह त्वचा दो पुडतवाली है जिसमें बाहरके पुडतको चर्म (चमडी) कहते हैं
और भीतरके पुडतको स्तर (अस्तर) कहते हैं यह त्वचा स्पर्श इंद्रियका स्थान
है ॥ २ ॥ कइयोंका ऐसा मत है कि, इस त्वचामें ऊपर नीचे ऐसे सब मिलकर
सात अस्तर हैं और उन सात पुडतोंसेही यह सारी मोटी त्वचा बनी है ॥ ३ ॥

इस त्वचासे जल वायु आदिके परमाणु भींतरको आकर्षण होते हैं और स्वेद (पसीना) बाहर निकलता है और शारीरक अग्निकी यही त्वचा ठीक ठीक करती है ॥ ४ ॥

डाक्टरी मतसे त्वचाके दोही भाग हैं उनमेंसे ऊपरले भागको एपीडर मिस या क्यूटि किल (Epidermis or Cuticle) कहते हैं और नीचेके भागको डरमिस (Dermis) कहते हैं और इन दोनोंमेंसे भी प्रत्येकके दोदो भाग हैं इनमेंसे क्यूटी किलकी मुटाई कही एक इंचका २४ वां भागहै और कहीं कहीं चौवीसवां और कहीं बारहवाँ भागही है स्वेदजनक छिद्र सब शरीरपर प्रायः तीस लाखके अनुमान होते हैं एक इंचमें प्रायः तीन हजारके लगभग समझो देखो ईश्वरकी विचित्रता ॥

कलाओंका वर्णन ।

कला खल्वपि सप्त भवंति धात्वाशयांतरमर्यादाः ॥ ११ ॥ भवतश्चात्र ॥ यथा हि सारः काष्ठेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ तथा धातुर्हि मांसेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ १२ ॥ स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् संततांश्च जरायुणा ॥ श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान्विदुः ॥ १३ ॥

कलाभी सातहीहैं ये कला धातुवोंके आशयोंके बीचमें मर्यादा हैं ॥ ११ ॥ इसपर यहां दो श्लोकहैं कि, जैसे गीले काठको काटनेसे उसका सार द्रव स्नेह दिखाई देताहै वैसेही मांसके छेदन करनेसे धातु (रक्त आदि) दीखते हैं ॥ १२ ॥ स्नायु (नसों) से व्याप्त और जरायु (पतली झिल्ली) से आच्छादित तथा कफ करके वेष्टित कला भाग होतेहैं (इन्हेंकलाभाग जानो) ॥ १३ ॥

तासां प्रथमा मांसधरा नाम यस्यां मांसे शिरास्नायुधमनीस्रोतसां प्रताना भवंति ॥ १४ ॥ भवति चात्र ॥ यथा बिसमृणालानि विवर्धंते समंततः ॥ भूमौ पंकोदकस्थानि तथा मांसे शिरादयः ॥ १५ ॥

इनमें प्रथम मांसधरा कलाहै जिसमें मांसमें शिरा (रग) स्नायु (नसें) धमनी (नाडी) और स्रोत (छिद्र) इनका जालसा फैला हुवाहै ॥ १४ ॥ इसमें श्लोकहै कि, कीचडवाली पृथ्वीमें जैसे कमलकी जड और नाली व्याप्त हुवे

(कला० ११) धात्वाशयांतरमर्यादा इति धातुशब्देनात्र रक्तमांसमेदःशुक्रकफपित्तपुरीषाख्याः तेषामाशयाः [illegible] इति डल्हनः । कलारूपे वृद्धवाग्भट इत्याह " यस्तु धात्वाशयांतरेषु क्लेदोऽ[illegible] स्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्नकाष्ठइवसारो धातुरसशेषाल्पत्वात् कलासंज्ञः " इति । भाव-[illegible] " धात्वाशयांतरे धातोः क्लेदस्त्वभितिष्ठति ॥ देहोष्मणाभिपक्वश्च साकलेत्यभिधीयते " इति ॥

४३

(फैले हुवे) बढतेहैं तैसेही (मांसधरा कलाके) मांसमें रग और नसें आदि होतीहैं ॥ १५ ॥

द्वितीया रक्तधरा नाम मांसस्याभ्यंतरतस्तस्यां शोणितं विशेषतश्च शिरासु यकृत्प्लीह्नोश्च भवति ॥ १६ ॥ भवति चात्र ॥ वृक्षाद्यथाभिप्रहतात् क्षीरिणः क्षीरमावहेत् ॥ मांसादेवं क्षतात् क्षिप्रं शोणितं संप्रसिच्यते १७

दूसरीरक्त धरा नाम (रुधिरके धारण करनेवाली) कलाहै यह मांसके भीतरहै इसमें विशेष करके शिरा (रगों) में रक्त रहताहै तथा यकृत और प्लीहामें रक्त रहताहै ॥ १६ ॥ यहा दृष्टांत रूप श्लोकहै कि जैसे दूधवाले (अर्कादि) वृक्षके तोड़नेसे दूध टपकने लगताहै वैसेही मांसके कटनेपर तुरंत (रगोंसे) रुधिर टपकने लगताहै ॥ १७ ॥

तृतीया मेदोधरा नाम मेदो हि सर्वभूतानामुदरस्थमण्वस्थिषु च महत्सु च मज्जा भवति ॥ १८ ॥ भवति चात्र ॥ स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतराश्रितः ॥ इतरेषु च सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते ॥ शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ॥ १९ ॥

तीसरी मेदोधरा नामक (मेदके धारण करनेवाली) कला है मेद सब जीवोंके प्रायः उदरमें होता है और छोटे २ अस्थियोंमेंभी मेद होता है और बड़े अस्थियोंमें मज्जा होती है ॥ १८ ॥ इसमें श्लोक है कि ॥ मोटे अस्थियोंके भीतर विशेष करके मज्जा होती है तथा इतर सबमें रुधिर सहित मेदही होता है । और शुद्ध मांसका जो स्नेह (चिकनाई) है उसे वसा (चरबी) कहते हैं ॥ १९ ॥

चतुर्थी श्लेष्मधरा नाम सर्वसंधिषु प्राणभृतां भवति ॥ २० ॥ भवति चात्र ॥ स्नेहाभ्यक्ते यथा ह्यक्षे चक्रं साधु प्रवर्तते ॥ संधयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा ॥ २१ ॥

चौथी श्लेष्मधरा नाम (कफके धारण करनेवाली) कला है यह सब प्राणियोंके संधि (जोडों) में होती हैं ॥ २० ॥ इसपर दृष्टांतरूप एक श्लोक है कि ॥ जैसे रथके पहियेके धुरेपर चिकनाई लगी होनेसे पहिया ठीक २ फिरतारहता है उसी तरह कफसे लिपी हुई संधियां (हाथ पांव आदिके जोड़) अच्छीतरह फैल ॥ और सुकड़ जाती हैं ॥ २१ ॥

(वा० १८ । १९) तृतीयामेदोधरा मेदोहि [illegible] ॥ इति [illegible] (इति वृद्धवाग्भटः) ॥

(वा० २० । २१) अक्षं चक्रमध्यस्य केंद्रस्थानम् ॥

पंचमी पुरीषधरा नाम यान्तः कोष्ठे मलमभिविभजते पक्वाशयस्था २२ भवति चात्र॥ यकृत्समंतात् कोष्ठं च यथांत्राणि समाश्रिता॥उंडुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला ॥ २३ ॥

पांचवी पुरीषधरा नामक (मलके धारण करनेवाली) कला होती है यह पक्वाशयमें रहती है और भींतर कोठेमें मलको जुदा जुदा करती है यहां श्लोक है कि ॥ यह मलधरा कला यकृत्के आसपास और कोष्ठ और अंत्र (आंतडों) के आश्रय होकर (अर्थात् यकृत्के पास प्लीहा बस्ति पक्वाशय अग्न्याशय हृदय और आमाशय आदि कोष्ठ और अंत्र मोटे मलमूत्रके बहनेवाले अंत्र इन स्थानोंमें होकर) उंडुकस्थ (मोटे बडे मलाधार अँतडेमें स्थित) मल और मूत्र को पृथक् २ करती है ॥ २३ ॥

षष्ठी पित्तधरा नाम या चतुर्विधमन्नपानमुपयुक्तमामाशयात्प्रच्युतं पक्वाशयोपस्थितं धारयति ॥ २४ ॥ भवति चात्र ॥ अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम्॥तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा॥२५॥

छठी पित्तधरा नाम (पित्तके धारण करनेवाली) कला है (यही ग्रहणी है) यह चारों प्रकारके (चबाये खाये पीये और चाटे हुवे) पदार्थ जो आमाशयसे द्रवरूप नीचेको जातेहैं और पक्वाशयके ऊपर पकनेके लिये उपस्थित होतेहैं उन्हे यह पित्तधरा कला अर्थात् ग्रहणी धारण करती है ॥ २४ ॥ इसपर एक श्लोक है कि ॥ चबाया खाया पिया और चाटा हुवा जो आहार मनुष्योंके कोष्ठमें प्राप्त होता है उसे यही यथाकाल पित्तकी गरमाईसे शोणित करके पकाती है ॥ २५ ॥

सप्तमी शुक्रधरानाम या सर्वप्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी ॥ २६ ॥भवंति चात्र ॥ यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा॥शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः ॥ २७ ॥ द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य

(न्या० २२ । २३) यकृत्समंतादिति समंतात् सर्वतःयकृदादिकं यकृत्समीपानां हृदयादीनांचाप्यत्रग्रहणं उंडुक [illegible] गुदगृह्यते तेनोर्द्ध्वंयकृदादिव्यवस्थितं अधस्ताद्गुदपर्यंतंकोष्ठम् । उंडुकस्थंमलंविभजतीति उंडुकः [illegible] पुरीषोंडुकः प्रतिपादितः । मलंविभजते मूत्रपुरीषरूपतया विभागंकरोतीत्यर्थः । गयीतु [illegible] करोति इति व्याख्याति ॥

(श्लो० २४) [illegible] षष्ठीपित्तधरानामयाकलापरिकीर्तिता पक्वामाशयमध्यस्थाग्रहणी [illegible] पित्तचाग्नेयमग्निसंज्ञकम् । पक्वाशयोपस्थितं पक्वाशयगमनायोपस्थितम् । धारयति [illegible] ॥

(श्लो० २५) [illegible] आमाशयस्य[illegible] यथाकालं तीक्ष्णमध्यमंदाग्निक्रमेण [illegible] अंतराग्निनापरिपाचितं जीर्यतीति । पक्वंचपक्वाश- [illegible] ॥

चाप्यधः॥मूत्रस्रोतः यथा शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ २८ ॥ कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा॥स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्तते ॥ २९ ॥

सातवीं शुक्रधरा नाम (वीर्यके धारण करनेवाली) कला है यह प्राणियोंके समस्त शरीरमें व्याप्त रहती है ॥ २६ ॥ इसमें तीन श्लोकहैं कि ॥ जैसे दूधमें घृत और इक्षु (ऊष) में रस व्याप्त रहता है ऐसेही पुरुषोंके शरीरमें वैद्य वीर्यको जाने ॥ २७ ॥ " वीर्यके निकलने का मार्ग " वस्तिके द्वारसे नीचे दो अंगुल दाहनी तरफ होकर मूत्रके मार्ग (मूत्र निकलनेके छिद्र) ही से पुरुषोंका वीर्य निकलता है ॥ २८ ॥ संपूर्ण शरीरमें व्याप्त रहनेवाला शुक्र प्रसन्न चित्त स्त्री संगकी इच्छा वाले पुरुषको हर्षके कारण प्रवर्त होता है ॥ २९ ॥

गर्भवतियोंके रजस्वला नहोने और स्तनोंमे दूध होनेका हेतु ।

गृहीतगर्भाणामार्तववहानां स्रोतसां वर्त्मान्यवरुध्यंते गर्भेण तस्माद्गृहीत गर्भाणामार्तवं न दृश्यते ॥ ३० ॥ ततस्तदधः प्रतिहतमूर्द्धमागनमपरं चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते शेषं चोर्द्धतरमागतं पयोधरावभिप्रतिप- द्यते तस्माद्गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवंति ॥ ३१ ॥

गर्भवती स्त्रियोंके आर्तव रक्तके वहने वाले छिद्रोंको मार्ग गर्भसे रुक जाता है इससे गर्भ वतियोंका आर्तव (रजस्वला भाव नहीं दीखता (अर्थात् गर्भमें जबतक बालकहो रजस्वला नहीं होती ॥ ३० ॥ (अपरा) जरायु (की उत्पत्ति) गर्भवती स्त्रियोंका आर्तव रक्त जब नीचेको प्रवर्त नहीं होता और रुक जाता है तब ऊपरको (गर्भाशयमें) प्राप्त होजाता है फिर उसमें और कफादिक संचय होकर मिल जाते हैं वही अपरा (जरायु) अर्थात् जेर कहलाती है तथा रस आर्तवकाही शेष (द्रव) भाग अत्यंत ऊपर गमन करके स्तनों चूंचियोंमें प्राप्त होताहै जिससे गर्भिणी स्त्री पुष्ट ऊँचे दूधवाले स्तनोंको धारण करने वाली होती है (अर्थात् इसीसे गर्भवती स्त्रियोंकी चूंचियां पुष्ट ऊँची और दूधवाली होजाती है ॥ ३१ ॥

यकृत् प्लीहा फुप्फुस और उंडुककी उत्पत्ति ।

गर्भस्य यकृत्प्लीहानौ शोणितजौ शोणितफेनप्रभवः फुप्फुसः शोणित किट्टप्रभवः उंडुकः ॥ ३२ ॥

(वा० २६ से २९) सप्तमीशुक्रधरानामद्यंगुले दक्षिणेपार्श्वेबस्तिद्वारस्यचाधोमूत्रमार्गमाश्रिता सकलशरीर व्यापिनी शुक्रंप्रवर्तयतीति (वृद्धवाग्भटः) ॥

(गद्य ३१) अपराममलामित्याहुःस्त्रियः इति डल्हनः अपराजरायुर्नालसंबद्धइत्यन्ये ॥

(गद्य ३२) यकृत्प्लीहानावित्युपलक्षणं तेनक्लोमापिशोणितजः । उंडुकः पीड्लकः ॥

गर्भगत बालकके शरीरमें यकृत् (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) ये दोनों रुधिरसे बनते हैं और फुप्फुस (फेफड़ा) रुधिर झागोंसे बनता है तथा उंडुक (पुरीषांत्र अर्थात् मल धारण करने वाला मोटा अंतड़ा रुधिर किट्टसे बनता है ॥ ३२ ॥ इनका आकार आदि अगाडी परिशिष्ट में लिखेंगे ॥

अंत्रा (अंतडियोंकी) उत्पत्ति ।

असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः॥ तंपच्यमानं पित्तेन वायुश्चाप्यनु धावति ॥ ततोऽस्यांत्राणि जायंते गुदं बस्तिश्च देहिनः ३३

रक्त और कफका जो परम सार (प्रसाद) है जब वह पित्त करके पकता है और उसके अनुगत वायु गमन करता है तिससे गर्भमें मनुष्यके अंत्र (आंतडी) और गुदा तथा वस्ति (मसाना) ये बनते हैं अर्थात् रक्त और कफसे प्रसादको जब पित्त पकाता है उससे ये बनते हैं और वायु अनुगत होनेसे ये पोले अर्थात् थोथे होजाते हैं जैसे पिंघले काचमें वायु प्रविष्ट होनेसे शीशे नली आदि पोले पदार्थ बनजाते हैं) ॥ ३३ ॥

जिह्वाकी उत्पत्ति ।

उदरे पच्यमानानामाध्मानाद्रुक्मसारवत् ॥ कफशोणितमांसानां सारो जिह्वा प्रजायते ॥ ३४ ॥

उदरमें पचायमान हुये कफ रुधिर और मांसके सारसे जिह्वा उत्पन्न होतीहै जैसे सुवर्णके तपायमान होनेसे कुंदन बनताहै ॥ ३४ ॥

स्रोतों (द्वारों) और पेशियोंकी उत्पत्ति ।

यथार्थमुष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ॥ अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा ॥ ३५ ॥

यथार्थ उष्णतासे जब वायु मिलता है तब स्रोतों (मल मूत्रादिके बहने वाले द्वारों) को खोलताहै अर्थात् बनाताहै और उसीभांति मांसके अनुप्रवेश होकर पेशी (मांसकी झिलटियां) बना देताहै ॥ ३५ ॥

(श्लो० ३४) उदरे इत्यत्र हृदये इति वा पाठः (इतिगयः) ॥

(श्लो० ३५) यथार्थं यथायथोजनमित्यर्थः । ऊष्मणापित्तेनसहयुक्तोवायुः स्रोतांसिदारयेत् दारणं कुर्य्यात् । पेशीर्विभजते ॥

मेदसःस्नेहमादाय सिरा स्नायुत्वमाप्नुयात्॥शिराणां च मृदुः पाकः स्नायूनां च ततः खरः ॥ आशय्याभ्यासयोगेन करोत्याशयसंभवम् ॥ ३६ ॥

मेद (चरबी)का स्नेह लेकर वायु सिरा (रग) और स्नायु (नसें) बनाताहै उनमें सिरा (रगों) द्वारा नरम परिपाक होताहै और उससे तीक्ष्ण परिपाक स्नायु (नसों) द्वारा होताहै (बारीक रगोंको शिरा कहतेहैं और मोटीनसों तथा पट्टोंको स्नायु कहतेहैं) और स्थितिका योग करके वायु आशयोंका (वाताशय आदि) की उत्पत्ति करताहै ॥ ३६ ॥

वृक्कआदिकीउत्पत्ति ।

रक्तमेदः प्रसादाद्वृक्कौ मांसासृक् कफमेदःप्रसादाद्वृषणौ,शोणितकफप्रसादजं हृदयं,यदाश्रया हि धमन्यःप्राणवहाःतस्याधो वामतःप्लीहा फुप्फुसश्च दक्षिणतो यकृत् क्लोमच ॥ ३७ ॥

रक्त और मेदके प्रसाद (सार) से वृक्क (दोनों गुरदे) पैदा होते हैं मांस रुधिर कफ और मेदके सारसे वृषण (अंडकोश) बनतेहैं तथा रुधिर और कफके प्रसादसे हृदय (दिल) बनताहै और उस हृदयके आश्रय प्राणके बहनेवाली धमनी (नाडियां) हैं उसके नीचे बायें तरफ प्लीहा (तिल्ली होतीहै और फुप्फुस (फेफडा तथा दाहने तरफ यकृत् (जिगर) और क्लोम (पित्ता) होताहै ॥ ३७ ॥

निद्रा ।

तद्धृदयं विशेषेण चेतनास्थानमतस्तस्मिंस्तमसावृते सर्वप्राणिनः स्वपंति ॥ ३८ ॥ भवतिचात्र ॥ पुंडरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम् ॥ जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥ ३९ ॥

वह हृदय विशेष करके चेतनाका स्थान है इससे जब वह तमोगुणसे आच्छादित होता है तब प्राणी सोते हैं ॥ ३८ ॥ इसपर श्लोक है कि ॥ हृदयका आकार कम-

(श्लो० ३६) शिरा स्नायुत्वमाप्नुयात् इति सिराःस्नायूंश्चवायुःकुर्यादित्यर्थः । आशय्याभ्यासयोगेन वायुः[illegible]तिंकृत्वेत्यर्थः (इति निबंधसंग्रहः) ॥

(वा० ३७) प्रसादः सारः । वृक्कौ कुक्षिगोलकौ । इति डल्हनः) ॥

(वा० ३८ । ३९) हृदयस्यवर्णनं तंत्रांतरात् उरोमध्यगतकोष्ठः [illegible]फलवत्तुलः । रक्ताधार[illegible] व्यासमावृतः॥ १॥तिर्य्यक्स्योधमनीभूमिः फुफ्फुसहृदयशीर्षकः । स्फीत्याकुंचनशीलोसौ हृत्कोष्ठइतिकीर्तितः ॥ २ ॥ [illegible] स्फायतेकोष्ठः प्रकृत्यासंकुचत्यपि । आभूमिस्पर्शनाजन्मन्मृत्युः सर्वस्यदेहिनः ॥ ३॥ तदाकुंचनतो[illegible] प्रविशेद्धमनीमूलंततोभ्रमातिविग्रहम ॥ ४॥ स्फायनाकुंचनेतस्यानिरमेतांक्षणयादि[illegible] नुसर्वस्मिन्कालेस्फायनाकुंचनं तदाकथं जाग्रतस्ताद्विकसति स्वपतश्चनिमीलतीति तथाह [illegible] येपि स्फायनाकुंचनक्रियासंभवतीति सिद्धांतः ॥

छके सदृश नीचेको मुखवाला है जागनेकी अवस्थामें वह प्रायःखिला हुवासा रहता है और सोनेकी अवस्थामें भिचा हुवा बंध सा हो जाता है ॥ ३९ ॥

निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशंति सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति ॥ ४० ॥

निद्राको सर्व व्यापी विष्णुकी माया और पापमय वर्णन करते हैं वह स्वभावहीसे सब प्राणियोंको स्पर्श करती हैं (अर्थात् सबही प्राणी मात्रको यह निद्रा आती है) ॥ ४० ॥

तामसीनिद्रा ।

तत्र यदा संज्ञा वहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा सम्भवत्यनवबोधिनी सा प्रलयकाले ॥ ४१ ॥

जब संज्ञाके बहनेवाली नाडियोंके विषय तमोगुणकी बाहुल्यतावाला कफ प्राप्त हो जाता है तब बोधका नाश करनेवाली ऐसी तामसी नाम निद्रा होती है यह प्रलय कालमें होती है ॥ ४१ ॥

स्वाभाविकी निद्रा ।

तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति रजोभूयिष्ठानामनिमित्तम् सत्वभूयिष्ठानामर्द्धरात्रे ॥ ४२ ॥

तमो गुणकी बाहुल्यता वाले मनुष्योंको दिनमें भी निद्रा आती है और रात्रिमें भी अति निद्रा आती है तथा रजो गुणकी बाहुल्यता वालोंको वे नियम कभी २ दिनमें कभी रात्रिमें निद्रा आती है तथा सत्व गुणकी बाहुल्यता वालोंको अर्द्धरात्रके समय (थोडीसी निद्रा) आया करती है ॥ ४२ ॥

वैकारिकी निद्रा ।

क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलानां मनःशरीराभितापवतां च नैव सा वैकारिकी भवति ॥ ४३ ॥

(व्या० ४०) कृत्स्नशुभाशुभमार्गनिरोधात् पाप्मानमितिवदंति । यद्यपि तंत्रांतरेसप्तविधानिद्रापाठिता [illegible] त्रिविधैवतामसी स्वाभाविकीवैकारिकीचेति (नि० सं०) ॥

(व्या० ४१) अनवबोधिनी बोधप्रणाशिनी सुषुप्तिश्च साप्रलयकाले प्रलयशब्देनात्रकेचित् सुषुप्तिमिति [illegible] केचित् मृत्युमिति केचित् संसृतेर्नाशकालंचेति ॥

(व्या० ४२) यद्यपि सर्वासांनिद्राणां तमोहेतुस्तथापि प्रकृष्टतमस्त्वात् तामसीरूपाअतिनिद्राकथ्यते । अनिमित्तं अनियतकाले [illegible] कदाचिद्दिवाकदाचिद्रात्राविति [illegible] ॥

(व्या० ४३) [illegible] निद्रानैवभवति यदिकदाचिद्भवति तदासावैकारिकी नाम । ननु [illegible] तदाकथंनिद्रा समुपैति अत्रोच्यते मनसःश्रांतत्वाद्भूतात्मविषयनिवृत्तौ [illegible] कर्मात्मानः क्लमान्विताः विषयेभ्योनिवर्तते तदास्वपिति मानवः ([illegible]) ॥

जिनका कफ क्षीण हो जावे वायु बढ जावे अथवा मन या शरीर में संताप हो उन मनुष्योंको प्रायः निद्रा नहीं आती है उसे वैकारिकी कहते हैं ॥ ४३ ॥

भवंति चात्र॥हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम् ॥ तमोभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनाम् ॥ ४४ ॥ निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते॥स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्तितः ॥४५॥ पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः॥रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥ ४६ ॥ करणानां तु वैकल्ये तमसाभिप्रवर्द्धिते ॥ अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥ ४७ ॥

यहां श्लोक हैं कि धन्वंतरिजी कहते हैं हे सुश्रुत सब प्राणियोंका चेतनास्थान हृदय ही है जब उसमें तमोगुण व्याप्त होता है तब प्राणियोंको निद्रा आती है ॥ ॥ ४४ ॥ निद्रा अवस्थाका हेतु तमोगुण है और (जाग्रत) बोध अवस्थाका हेतु सत्वगुण कहा है अथवा स्वभावही इन दोनोंका उत्कृष्ट हेतु कहा जाता है ॥ ४५ ॥ पूर्वजन्म वा इसी जन्म के दृष्टश्रुत शुभाशुभ अर्थ उनको रजोगुण युक्त मनसे सोता हुवा जो क्षेत्रज्ञ जीव ग्रहण करता (उसे स्वप्न कहते हैं) (और इसका हेतु रजोगुण है) ॥ ४६ ॥ जब तमोगुण बढकर इंद्रियोंमें बिकलता (यथोचित ज्ञानकी अशक्ति) हो तब जागता हुवाभी जीवात्मा सोता हुवासा प्रतीत होता है ॥ ४७ ॥

दिनमें सोनेकी विधि और निषेध ।

सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात् ॥४८ ॥ प्रतिषिद्धेष्वपि तु वालवृद्धस्त्रीकर्षितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रांतानाम भुक्तवतां मेदः स्वेदकफरसरक्तक्षीणानामजीर्णिनां च मुहूर्तं दिवास्वपनमप्रतिषिद्धम् ॥ ४९ ॥ रात्रावपि जागरितवतां जागरितकालादर्द्धमिष्यते दिवास्वप्नः ॥ ५० ॥

दिनमें सोना ग्रीष्म ऋतु (गरमी) के सिवाय सब ऋतुओंमें निषिद्ध है ॥ ४८ ॥ परंच निषिद्ध ऋतुओंमेंभी बालक वृद्ध मैथुनसे थके हुवे उरक्षत रोगवाले क्षीण नित्य मद्य पीनेवाले सवारी मार्ग और कामसे थके हुवे भोजन न करनेवाले तथा जिनके मेद पसीना कफ रस और रुधिर ये क्षीण हो गये हों तथा अजीर्णवाले ऐसे मनुष्योंको

(वा० ४६) पूर्वदेहानुभूतांस्त्विति एतच्चोपलक्षणमतोऽनेनापि देहेनानुभूतान् । [illegible] देहस्य प्रभुः क्षेत्रज्ञः रजोयुक्तेन मनसा अव्यवस्थितान् शुभाशुभानर्थान् गृह्णातीतिभावः ॥

(गद्य ४९) प्रतिषिद्धेषु ऋतुषु । मद्यनित्ययान इत्यत्र नित्यमद्यपान इति वा पाठः ॥

दो घडी दिनमें सोना निषिद्ध नहीं ॥ ४९ ॥ और जो रातको जागे हों तो जितने समय रातको जागे हों उससे आधे समय दिनमें सो लेना चाहिये ॥५०॥

दिनमें सोनेसे हानि ।

विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोषप्रकोपश्च तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवांगमर्दाऽरोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवंति ॥ ५१ ॥

दिनका सोना विकृति (विकार) (है अर्थात् ईश्वरके नियमसे विरुद्ध है) इससे दिनमें सोने वालोंको अधर्म होता है तथा सब दोषों (वातपित्त कफ रक्त) का प्रकोपभी हो जाता है उस प्रकोपसे खांसी श्वास जुखाम शिरका भारीपन अंगोंका टूटनासा अरुचि ज्वर और मंदाग्नि ये विकार होते हैं ॥ ५१ ॥

रातमें अधिक जागनेकी हानि ।

रात्रावपि जागरितवतां वातपित्तनिमित्तास्तएवोपद्रवाः भवंति ॥ ५२ ॥

रात्रिमें अति जागनेवालोंकोभी वायु पित्तके रोग और उनके उपद्रव हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

तस्मान्न जागृयाद्रात्रौ दिवा स्वप्नं च वर्जयेत् ॥ ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नमात्मनं चरेत् ॥५३॥ अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो वृषः॥ नातिस्थूलकृशः श्रीमान्नरो जीवेत् समाः शतम् ॥ ५४ ॥ निद्रा सात्म्याकृता यैस्तु रात्रौ च यदि वा दिवा॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां वा विधीयते ॥ ५५ ॥

दिनमें सोने और रातमें अधिक जागनेसे विकार होता है इस कारण बुद्धिमान् न रात्रिमें जागे और न दिनमें सोवे इन दोनोंको विकारकारक जानके यथोचित सोने (और जागने) का आचरण करे ॥ ५३ ॥ ऐसा करनेसे निरोग प्रसन्नचित्त बलवर्ण (रूप) युक्त पुरुषार्थी होते हैं न अधिक मोटे होते हैं न बहुत दुबले किंतु शोभायमान होकर सौ वर्ष मनुष्य जीते हैं ॥ ५४ ॥ जिन्होंने इच्छापूर्वक निद्राका अभ्यास किया हो (या जिनको जैसा माफकत हो) उनको रात्रि या दिनमें कभी सोने तथा जागनेका दोष नहीं ॥ ५५ ॥

(सूत्र ५१) सर्वदोष इत्यत्र सर्वशब्देन रक्तमपि गृह्यते ॥

निद्रानाशका हेतु और यत्न।

निद्रानाशोऽनिलात् पित्तात् मनस्तापात्क्षयादपि ॥ संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥५६॥ निद्रानाशेऽभ्यंगयोगो मूर्ध्नि तैलनिषेवणम् ॥ गात्रस्योद्वर्तनं चैव हितं संवाहनानिच ॥ ५७ ॥ शालिगोधूमपिष्टान्न भक्ष्यैरैक्षवसंस्कृतैः ॥ भोजनं मधुरं स्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः ॥५८॥ रसैर्बिलेशयानां च विष्किराणां तथैव च ॥ द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणामुपयोगो भवेन्निशि ॥५९ ॥ शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनिच ॥ निद्रानाशे तु कुर्वीत तथान्यान्यपि बुद्धिमान् ॥ ६० ॥

वायु और पित्तसे मनके संतापसे तथा क्षयसे और चोट आदिकी पीडासे निद्राका नाश होजाताहै और इनके विपरीत भावोंसे निद्रानाशकी शांति होती है ॥ ५६ ॥ यदि निद्रानाश होतो शरीरपर तैल मलके उबटन करना और स्नान करना चाहिये तथा शिरपर तैलका मर्दन करना और धीरे धीरे हाथ पाव और शरीर दबवाना चाहिये ॥ ५७ ॥ शालि चावल गेहूं पिष्ट अन्न (पिट्ठीके पदार्थ) और शर्करा (खांड) के बने मधुर चिकने दूध या मांसरस (शोरवे) के साथमें उमदा भोजन करने चाहियें ॥ ५८ ॥ बिलमें रहनेवाले जीवों (शल्लकी मूषक आदि) तथा विष्किरों (मुरगे) आदि के रस (शोरवे) के संग तथा दाख मिश्री ईखके गन्ने आदिका उपयोग रातको करे ॥ ५९ ॥ उत्तम नरम शय्या साफ बिछोना या मुलायम गद्दी तथा सुंदर मृदुपालकी जैसी सवारी इत्यादि पदार्थोंका उपयोग बुद्धिमान्को निद्रा नाश होनेकी व्याधिमें करना हितकारक होताहै ॥ ६० ॥

अतिनिद्राका प्रतिकार।

वमनन्निद्रातियोगे तु कुर्य्यात्संशोधनानि च ॥ लंघनं रक्तमोक्षं च मनोव्याकुलनानि च ॥६१ ॥

यदि निद्रा अधिक आती हो तो वमन करावे तथा विरेचनादि द्वारा शोधन करे लंघन करावे और रक्तमोक्ष (फस्द) करावे तथा मनके व्याकुल करनेवाले आचरण करावे ॥ ६१ ॥

(श्लो० ५७) संवाहनं मृदुमर्दनम् ॥

(श्लो० ६०) अन्यानिप्रावरणपुष्पमालादीनि ॥

(श्लो० ६१) संशोधनादेव वमनेलब्धेयद्वमनस्य पृथगुपादानंतद्विशेषेण ॥

रातमेंजागना तथा दिनमें सोना किनको हितहै ।

कफमेदोविषार्तानां रात्रौजागरणं हितम् । दिवास्वप्नश्च तृट्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥६२॥

जिनके शरीरमें कफ तथा मेद बढगये हों अथवा जो विषसे व्याप्तहो ऐसे मनुष्योंको रातमें भी जागना हितहै ॥ और जिन्हे तृषा शूल हिचकी अजीर्ण और अतिसार ये रोगहों उन्हे दिनमेंभी सोना अच्छाहै ॥ ६२ ॥

तंद्राका लक्षण ।

इंद्रियार्थेष्वसंप्राप्तिं गौरवं जृंभणं क्लमः॥निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तंद्रा विनिर्दिशेत् ॥ ६३ ॥

इंद्रियां अपने २ अर्थोंमें ठीक प्राप्त नही शरीर भारी हो जमाही आवे थकानसीहो और निद्रायुक्तकेसी जिसकी चेष्टा हो उसे " तंद्रा " कहते हैं ॥६३॥

जृंभा ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टन् विवृताननः॥यन्मुंचति सनेत्राश्रुं स जृंभ इति संज्ञितः ॥ ६४ ॥

जब मनुष्य ऊपरको मुँह पसार कर एक लंबी सांस खेंचता है और फिर मुख भिचते २ कभी आखोंमें आँसू भरकर सांस छोडता है तो उस अवस्थाको " जृंभ " (जमाही) कहते हैं ॥ ६४ ॥

क्लम ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः क्लमः ॥ स इति विज्ञेयः इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ ६५ ॥

जिसमें अनायास (बेपरिश्रम किये) ही शरीरमें थकानसी हो परंतु श्रमके पीछे श्वास बढजाता और इसमें नहीं बढता और इंद्रियोंकी अपने २ विषयमें कुछ अज्ञानता हो उसे "क्लम" कहते हैं ॥ ६५ ॥

आलस्य ।

सुखस्पर्शप्रसंगित्वं दुःखद्वेषणलोलता॥शक्तस्याचाप्यनुत्साहः कर्मस्वालस्यमुच्यते ॥ ६६ ॥

जिस अवस्थामें सुखके स्पर्शकी लालसा रहे और दुःख (श्रमादि) दूर रहनेकी इच्छा हो तथा शक्ति होनेपरभी कार्योंमें उत्साह नही तो उसे " आलस्य "कहतेहैं ६६

उत्क्लेश ।

उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत् प्रसेकष्ठीवनेरितम् ॥ हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ६७ ॥

पेटका अन्न ऊपर ऊपरको आवे (जी मिचलावे) और अन्नादि बाहर न निकले (वमन हो नहीं) तथा हृदयमें दुःख हो तो उसे उत्क्लेश (हुड्डीक) कहतेहैं ॥६७॥

ग्लानि ।

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः ॥ न चान्नमभिकांक्षेत तस्य ग्लानिं विनिर्दिशेत् ॥ ६८ ॥

मुहमें मीठापन हो तंद्राहो हृदयमें उचेडसी हो भ्रमहो अन्नपर रुचि न हो तो उसको ग्लानि कहते हैं ॥ ६८ ॥

गौरव ।

आर्द्रचर्मावनद्धं हि यो गात्रमभिमन्यते ॥ तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥ ६९ ॥

जब मनुष्य अपने शरीरको गीले चर्मसे ढका हुवासा (गलगलायासा) जाने और शरीर भारी और शिर अति भारी हो तो उसे गौरव कहते हैं ॥ ६९ ॥

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ॥ तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ ७० ॥

मूर्च्छा (बेहोश दंडाकारसा गिरे और जैसेहो वैसेही पडा रहै यह) पित्त और तमोगुणकी प्रधानतासे हो और भ्रम (अचेतहो कभी अस्त व्यस्त कहना या करना यह) रजोगुण और पित्त वायुकी प्रधानतासे होता है तथा तंद्रा (घुमेर) तमोगुण और वायु कफसे होती है तथा निद्रा कफ और तमोगुणसे होती है ॥ ७० ॥

गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्मानिमित्ता च परिवृद्धिर्भवति ॥ ७१ ॥

भवन्ति चात्र ॥ तस्यांतरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ॥ तदा धमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ ७२ ॥ उष्मणासहितश्चापि दारयत्यस्य

(श्लो० ६९) हि स्थाने वा इति पाठांतरः ॥

(वाक्य ७१) रसनिमित्ता मातुराहारजन्यरसकृता । " मारुताध्मानिमित्ता " आध्मानमाटोपपूरणं तदेव निमित्तंयस्याः । पूर्वोक्तस्पष्टतयाद[illegible]तस्यांतरेणेति ॥

(श्लो० ७२) नाभेरंतरेण नाभिमध्ये । अंतरेण मध्यार्थे (इति [illegible]) ज्योतिःस्थानं अग्निस्थानम् । ध्रुवंनिश्चलम् । तच्चवायुराधमति ॥

मारुतः॥ ऊर्द्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा ॥ ७३ ॥ दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्द्धंते कदाचन॥ ध्रुवाण्येतानि मर्त्यानामिति धन्वंतरेर्मतम् ॥ ७४ ॥ शरीरे क्षीयमाणेपि वर्द्धेते द्वाविमौ सदा ॥ स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ ७५ ॥

गर्भकी वृद्धि माताके रससेभी होतीहै और पवनके आध्मान (धमने) सेभी होती है॥७१॥ इसी विषयपर श्लोक है कि ॥ नाभिस्थानमें ध्रुव (निश्चल) ज्योतिः प्रकाशक अग्निका स्थान है वहां वायु धमन करता है उससे शरीर बढता है ॥ ७२ ॥ जब वह वायु गरमीसे मिलता है तब बल करके ऊपर तिरछे और नीचेको जहाँ जहाँ यथा योग्य है वहाँ स्रोत धमनी द्वारोंको खोलता है (वैसेही शरीर बढता जाता है) ॥ ७३ ॥ दृष्टि (नेत्रोंके तिल) और रोम कूप (रोम छिद्र) ये शरीर वृद्धिके साथ २ कभीभी नहीं बढते किंतु मनुष्योंके ये स्थिरहैं धन्वंतरिजीका यह मत है॥७४॥ और शरीर क्षीण होनेपर (बुढापेमें) भी स्वभावकी प्रकृतिसे नखून और बाल ये दो वस्तु सदा बढतेहीहैं ॥ ७५ ॥

प्रकृति ।

सप्त प्रकृतयो भवंति दोषैः पृथक् द्विशः समस्तैश्च ॥ ७६ ॥ शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः॥ प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ७७॥

प्रकृति (तासीर मिजाज या खासियत) सात प्रकारकी होतीहै तीनों दोषोंसे पृथक् २ तीन जैसे वात प्रकृति पित्त प्रकृति और कफ प्रकृति तथा दो दो दोषोंकी तीन जैसे वात पित्त प्रकृति वात कफ प्रकृति और कफ पित्त प्रकृति तथा एक तीनोंसे मिलकर त्रिदोष प्रकृति ऐसे ७ प्रकारकी प्रकृति होतीहैं ॥ ७६ ॥ गर्भाधानके समय पिताके शुक्र और माताके शोणितके संयोगमें जौनसा दोष प्रधान उत्कट होताहै उसीसे वही प्रकृति मनुष्यकी होतीहै उसके पृथक् २ लक्षण श्रवण करो ॥ ७७ ॥

(श्लो० ७३) ज्योतिःस्थानाध्मानेनमध्यस्रोतोवृद्धौ कथंसर्वतोवृद्धिरित्याह ऊष्मणेति यथातथाशब्दो अत्रांतर्भूत [illegible] तेनोष्मणासहितोऽनिलः यथाऊर्द्ध्वं तिर्यक् अधस्ताच्च स्रोतांसिदारयति तथा तथा देहो वर्द्धते इति पूर्ववाक्यात् [illegible] (इति नि० सं०)

(श्लो० ७४) दृष्टिः नेत्रांतर्गततिलमानम् ॥

(श्लो० ७५) स्वभावप्रकृतिं कृत्वा स्वभावंकारणंकृत्वेत्यर्थः ॥

(श्लो० ७६) [illegible] प्रकृतीनामनेकप्रकारत्वेपि मुख्यतया सप्तैव ॥

(श्लो० ७७) वातादिपु [illegible] उत्कटः तेन सा एवप्रकृतिर्भवति । उत्कटस्तु स्वभावस्थितो नतुप्रकुपितः [illegible] प्राकृता वैकृताश्च तत्र प्राकृतोत्कटैः सप्तविधाप्रकृतिः वैकृतैस्तु गर्भव्यापत्तिरितिसिद्धांतः । [illegible] ॥ तस्माद्दोषोधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता १ ॥

वातप्रकृतिः ।

तत्र जागरूकः शीतद्वेषी दुर्भगः स्तेनो मत्सर्यनार्यो गांधर्वचित्तः स्फुटित करचरणोऽतिरूक्षश्मश्रुनखकेशः क्रोधी दंतनखखादी च भवति ॥ ७८ ॥ अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपरुषो धमनी ततः प्रलापी द्रुतगतिरटनो नवस्थितात्मा वियद्दपि गच्छति संभ्रमेण सुप्तः ॥ ७९ ॥ अव्यवस्थितमतिश्चलदृष्टिर्मंदरत्नधनसंचयमित्रः किंचिदेव विलपत्यनवद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ॥ ८० ॥ वातिकाश्वानगोमायुशशाखूष्ट्रशुनां तथा ॥ गृध्रकाकखरादीनामनूकैः कीर्तिता नराः ॥ ८१ ॥

बहुत जागनेवाला शीतका द्वेषी और दुर्भग (बुरीचेष्टा वाला) जिसमें चोरीकी लतहो मत्सरता युक्त हो अनार्थ हो गंधर्वोंकेसा जिसका चित (गानेका प्रेमी) है हाथ पैर बहुत फटतेहों जिसके डाढी मूछ नखून और बाल अति रूखेहों क्रोधी हो और दांतो और नखोंको चबानेवाला हो ॥ ७८ ॥ धैर्य रहित हो दृढ प्रेम न करे कृतघ्नहो (किसीका गुणनमाने) दुबला हो शरीर खुरदराहो शीघ्र २ श्वास लेनेवाला हो (अथवा जिसके शीघ्र सांस चढआवे) बहुत बोले जलदी २ चले बहुत फिरे चलचित्तहो सोते हुवे स्वप्नमें आकाश चारीहो ॥ ७९ ॥ बुद्धि स्थिर नहो चंचल दृष्टिहो रत्नादि धन संचय और मित्र जिसके अधिक न हों कभी कभी कोई बात अस्त व्यस्तभी कह उठे ऐसे मनुष्यको वात प्रकृति (सौदायी)जानना ॥८०॥ बकरा गीदड सुसा चूहा ऊंट और कुत्ता गीध काक और गधा ये जंतुभी वात प्रधान होतेहैं तौ वात प्रकृति मनुष्यभी कुछ २ इनके स्वभावसे मिलते हुए होतेहैं८१

पित्तप्रकृतिः ।

स्वेदनो दुर्गन्धः पीतशिथिलांगस्ताम्रनखनयनतालुजिह्वोष्ठपाणिपादतलो दुर्भगो वलीपलितखालित्यजुष्टो बहुभुगुष्णद्वेषी क्षिप्रकोपप्रसादो मध्यमबलो मध्यमायुश्च भवति ॥ ८२ ॥ मेधावी निपुणमतिर्विगृह्य वक्ता तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः॥ सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान्

(श्लो० ७९) दुर्भगःअमनोहराकारः कुचेष्टश्च । स्तेनः चौरः । मत्सरी परशुभासहनशीलः । अनार्य असत्पुरुषः (नि० सं०) ॥

(श्लो०८१) अनूकः अनूकशब्दः गतजन्मनि कुलेशीले च (इति शब्दस्तोमः) ॥

(वा० ८२) ताम्रःअरुणवर्णः (इति शब्दस्तोमः) ॥

संपश्येदपि च हुताशविद्युदुल्काः ॥ ८३ ॥ न भयात् प्रणमेदनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरुचिः ॥ भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवे दिह पित्तकृतप्रकृतिः ॥ ८४ ॥ भुजंगोलूकगंधर्वयक्षमार्जारवानरैः व्याघ्रर्क्षनकुलानूकैः पैत्तिकास्तु नरा मताः ॥ ८५ ॥

जिसको पसीना बहुत आवे (देहमें या पसीनेमें) दुर्गंध हो शरीर पीला और शिथिल हो नखून नेत्र तालु वा जिह्वा हथेली और तलवे विशेष लाल हों लावण्य से रहित हों शरीरमें थोडी अवस्थाहीमें झरी पडजाय और बाल सुपेद हो जांय शिरके बाल उडजांय बहुत भोजनकरे उष्णताका द्वेषी हो (धूप गरमी नहीं सुहावे) शीघ्रही क्रोध हो जाय और शीघ्रही प्रसन्न हो जाय बल, और आयु मध्यम हो ॥ ८२ ॥ बुद्धिमान् हो चतुराई युक्त हो वातको सोच समझकर कहे तेजस्वी हो संग्राममें रुके नहीं (सूर वीरहो) सोते हुये स्वप्नमें सुवर्णके सूके फूल सुरख कनेरके फूल आग बिजली प्रकाश इत्यादि विशेष देखे ॥ ८३ ॥ भय दिखानेपरभी नरम न हो और जो अपनेसे नहीं नवे उससे आपभी करडा रहे और जो आपसे नवे उससे शांति करे बल्कि कुछ दे देनेकी रुचि करे मुँहकी गति सदाही प्रायः व्यथित रहे (मुंह आया रहे) ऐसा मनुष्य पित्त प्रकृति (सफरावी गरम तासीर वाला) होता है ॥ ८४ ॥ सर्प उल्लू गंधर्व यक्ष मार्जार वानर व्याघ्र रीछ नकुल येभी पित्त प्रधान होते हैं इससे पित्त प्रकृति मनुष्योंका स्वभाव (आदत) प्रायः इनके सदृश होता है ॥ ८५ ॥

[illegible]दीवरनिस्त्रिंशार्द्रारिष्टशरकांडानामन्यतमवर्णः सुभगः प्रियदर्शनो मधुरप्रियः कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णुरलोलुपो बलवांश्चिरग्राही दृढवैरश्च भवति ॥ ८६ ॥ शुक्लाक्षः स्थिरकुटिलातिनीलकेशो लक्ष्मीवान् जलदमृदंगसिंहघोषः ॥ सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयान् मनोज्ञान् ॥ ८७ ॥ रक्तांतनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः

(श्लो० ८३ । ८४) "मेधावी" मेधाविद्यतेयस्यसामेधा धारणावतीबुद्धिः । निपुणाक्रियासुदक्षामतिर्यस्य । [illegible] "अथवा परवाक्यमुच्छिद्यवचनशील: इति डल्हनः" । समितिषु संग्रामेषु । सांत्वनं [illegible] व्यथितमुखः मुखपाकत्वात इति डल्हनः । अन्येतु व्यथितास्यगतिरिति अस्यगतिर्व्यथिता [illegible] ॥

(श्लो० ८५) भुजंगोलूकगंधर्व इत्यत्र गंधर्वः पठितः तथा च वातप्रकृतावपि गांधर्वचित इति पठिततनत्र- [illegible] क्रोधेपित्तप्रकृतिकः संयोन्य गंधर्वेषुकेशाधिक्यमपि ॥

(श्लो० ८६) इंदीवरं नीलोत्पलम् । निस्त्रिंशः निर्गतस्त्रिंशद्भ्योंऽगुलीभ्य इति निस्त्रिंशः खड्गः त्रिंशदंगुल्य- [illegible] (इति वाचस्पतिः) । अरिष्टः निंबः तथा च रीठाइति फलविशेषः ॥

सत्वगुणोपपन्नः॥ क्लेशक्षमो मानयिता गुरूणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥८८॥ दृढशास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगण्य चिरात् प्रददाति बहु॥ परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च भवेत् स सदा८९ब्रह्मरुद्रेंद्रव-रुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः॥तार्क्ष्यहंसैः समानूकाः श्लेष्मप्रकृतयो नराः९० ॥

जिसका वर्ण दूर्वा इंदीवर (नील कमल) निस्त्रिंश (खड्ग) आर्द्रारिष्ट (स्निग्ध नीबके पत्ते) अथवा (ताजा रीठे) तथा शरकांड (सरकंडा) इनमेंसे किसीके समान (साँवला) हो सुभग (सुंदर) और दीखनेमें मनोहर हो मीठा भोजन जिसे अच्छा लगे कृतज्ञहो (किसीके गुण भूले नहीं) धैर्यवान् हो शीत उष्ण सुख दुःख परि-श्रमादिका सहनेवाला हो जितेंद्रियहो बलवान् हो देरसे हरेक बातको मंजूर करे तथा दृढ वैर रखनेवाला हो अर्थात् किसी वैरीसे शीघ्र प्रसन्ननहो ॥ ८६ ॥ आंखे सुफेद हों गहरे घुघराले अत्यंत काले बालहों धनवान् हो (अर्थात् फिजूल खर्च नहो) और मेघ मृदंग तथा सिंहके समान गंभीर शब्द बोले सोतेमें कमल हंस और चक्रवाकों सहित मनोहर जलाशयों (तालाव नदियों) को देखे ॥ ८७ ॥ जिसकी आखोंके कोने लालहों सब शरीर सुडौल हो शरीरपर स्निग्ध कांतिहो (स्निग्ध शरीरहो) और सत्वगुणसे संयुक्त हो क्लेश सहनेकी शक्ति हो बडे लोगोंका मान सत्कार करनेवाला हो ऐसा मनुष्य कफ प्रकृति जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ जिसकी बुद्धि शास्त्रमें स्थिर हो और मित्रों और धनको स्थिर रखनेवाला हो देरसे सोच सँभाल कर बहुत देनेवालाहो बातको निश्चय विचार कर कहे और पांवको जमा जमा कर धीरे धीरे धरे और प्रायः गुमान विशेष करनेवालाहो ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा शिव इंद्र वरुण सिंह अश्व हाथी गौ और वृषभ तथा गरुड और हंस ये कफ प्रकृति हैं इससे इनके स्वभावके समान प्रायः कफ प्रकृतियोंका स्वभाव होताहै ९०

द्वयोर्वा तिसृणां वापि प्रकृतीनां तु लक्षणैः॥ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्यः प्रकृती रभिनिर्दिशेत् ॥ ९१ ॥

जिनमें दो प्रकृतियोंके कुछ कुछ लक्षण मिले हुये जांने जायँ उन्हे द्वंद्वज प्रकृति जानना चाहिये (जैसे किसीमें कुछ वात प्रकृतिके लक्षण पाये जांय और कुछ पित्त

(श्लो०८८) कुटिलोनकः ॥

(श्लो० ८९) पदशब्देनात्र सुप्तिङन्तरूपकस्य वर्णसमुदायस्य तथा च चरणस्य वा ग्रहणम् । केचित् वातादिप्रकृतिषु वातिकाश्वगजगोमायुरिति तथा भुजंगोलूकगंधर्व इति तथा दृढशास्त्रमति तथा ब्रह्मेन्द्ररुद्रवरुणैरिति चतुस्संख्यकान् श्लोकान् न पठंति किंतु इति वदंति प्रक्षेपकाः । तार्क्ष्यहंसैः समानूका इत्यत्र तार्क्ष्यहंससमानूका इति वा समस्तः पाठः ॥

प्रकृतिके तो उसे वात पित्त प्रकृति जानना और जिसमें वात और कफके कुछ २ लक्षण हों उसे वात कफ प्रकृति और जिस किसीमें कफ और पित्तके लक्षण हों उसे कफ पित्त प्रकृति जानना) और जिसमें तीनोंके कुछ २ लक्षण हों उसे त्रिदोष प्रकृति जानना चाहिये ॥ ९१ ॥

प्रकोपो वान्यथाभावः क्षयो वा नोपजायते। प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ९२ ॥ विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते॥ तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवंति न बाधितुम् ॥ ९३ ॥

स्वभाव हीसे प्रकृतियोंका प्रकोप और अन्यथा भाव (पलट जाना) तथा क्षय नहीं होताहै यदि किसीको होजाय तो उसे गतायुः(आसन्न मृत्यु)समझना चाहिये(जैसे वात प्रकृति मनुष्यको वायुका कोप या पित्त प्रकृति कफ प्रकृति होजाना या वायुका विशेष क्षय होजाय तो उसे मृत्यु कारक जानो) क्योंकि प्रकृतिके दोषका कोप तथा पलटा अथवा क्षय मृत्युके समीपही होताहै ॥ ९२ ॥ विषका पैदा हुवा कीडा जैसे विषसे व्याधित नहीं होता वैसेही प्रकृतिके वातादि दोष भी मनुष्यको विशेष बाधा नहीं करते ॥ ९३ ॥

प्रकारांतर ।

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः । स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः ॥ ९४ ॥

कोई ऐसा कहतेहैं कि मनुष्योंकी प्रकृति पांच प्रकारकी पंच भूतात्मक पृथिवी प्रधान जल प्रधान तेज प्रधान वायु प्रधान तथा आकाश प्रधानऐसे होती हैं तौ उनमें वात प्रकृति वायु प्रधान पित्त प्रकृति तेज प्रधान और कफ प्रकृति जलप्रधान जाननी चाहिये सो इन तीनोंके लक्षण हम कहचुके(शेष रही दो) उनमेंसे जिस्का शरीर स्थिरहो बडा (विशाल) हो क्षमा युक्तहो उसे पार्थिव (पृथ्वी प्रधान प्रकृति) जानो और जो बहुत पवित्र रहै चिरजीवी हो जिसके नाक कान आदिके छिद्र बडे चौडेहों (और हलकाहो) वह नाभस आकाश प्रधान जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

(प्रकारांतर) से सात्विक राज तामस प्रकृति—

सात्विक ७ प्रकारकी प्रकृति ।

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम् ॥ प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम् ॥ ९५ ॥ माहात्म्यं शौर्यमाज्ञा च शततं शास्त्रबुद्धि

(श्लो० ९३) शक्नुवंति न बाधितुं इत्यत्र प्रत्नू ईषदर्थे तेन किंचित् बाधितुंशक्नुवंतिनतुभृशं(इति डल्हणः) ॥

ता ॥ भृत्यानां भरणं चापि माहेन्द्रं कायलक्षणम् ॥ ९६ ॥ शीतसेवासहि
ष्णुत्वं पैंगल्यं हरिकेशता ॥ प्रियवादित्वमित्येतद्वारुणं कायलक्षणम् ९७ ॥

जिसमें पवित्रता हो आस्तिकता हो वेदादि शास्त्रोंमें अभ्यास हो गुरु पूजनमें नेष्ठा हो आये हुवे अतिथि (अभ्यागत तथा मेहमान) प्यारे लगें यज्ञादिमें प्रीति हो तो ये ब्रह्म सत्ववाले शरीरके लक्षण हैं ॥ ९५ ॥ जिसमें महात्म्य (महाशयत्व) हो शूरता हो आज्ञाशक्ति हो निरंतर शास्त्रमें बुद्धि हो भृत्योंका भरण करे वह महेंद्रकाय अर्थात् महेंद्र सत्व शरीर होता है ॥ ९६ ॥ शीतल पदार्थोंका विशेष सेवन करे सुखदुःखादिको सहसके नेत्र पीले हों तथा बालभी भूरे भूरे हों प्यारे वचन बोले वह वरुणसत्व शरीर मनुष्य होता है ॥ ९७ ॥

मध्यस्थता सहिष्णुत्वमर्थस्यागमसंचयौ ॥ महाप्रसवशक्तित्वं कौबेरं कायलक्षणम् ॥ ९८ ॥ गंधमाल्यप्रियत्वं च नृत्यवादित्रकामिता ॥ विहारशीलता चैव गांधर्वं कायलक्षणम् ॥ ९९ ॥ प्राप्तकारी दृढोत्थानो निर्भयः स्मृतिमान् शुचिः ॥ रागमोहभयद्वेषैर्वर्जितो याम्यसत्ववान् ॥ १०० ॥ जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेविनम् ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्न मृषिसत्वं नरं विदुः ॥ १०१ ॥ सप्तैते सात्विकाः कार्या राजसांस्तु निबोध मे ॥ १०२ ॥

जिसका स्वभाव मध्यस्थ होनेका हो (हरकके बीचमें पड उनका झगडा मिटावे) सहन शीलता हो जिसके धनका आगमभी बहुत हो और संचयभी हो बहुत संतान पैदा करनेकी शक्ति हो यह कुबेर सत्व शरीरके लक्षण हैं ॥ ९८ ॥ जिसे सुगंध माला प्रिय हो नाच गानेका शौक हो विहार (सैल तमाशे) का शौकीन हो यह गंधर्व सत्व कायके लक्षण हैं ॥ ९९ ॥ कामोंको युक्ततासे करे और दृढतासे कामका आरंभ करे भय रहित हो स्मृति बहुत हो अर्थात् भूले नहीं पवित्र रहै तथा प्रेम मोह भय और द्वेष इनसे वर्जित हो ये यम सत्व शरीरके लक्षण हैं ॥ १०० ॥ जो प्रायः जप व्रत ब्रह्मचर्य होम और पठन पाठनमें विशेष रहै ज्ञान और विज्ञानसे युक्त हो उसे ऋषि सत्व मनुष्य जानो ॥ १०१ ॥ ये उपरोक्त सात प्रकृति सात्विक सत्वगुण प्रधान शरीरोंकी होती हैं इसके अगाडी रजोगुण प्रधान प्रकृति शरीरोंके लक्षण श्रवण करो ॥ १०२ ॥

(श्लो० ९६) माहात्म्यं माहाशयत्वम् ॥

(श्लो० ९७) पैंगल्यं पिंगाक्षता । हरिकेशता कपिलकेशता ॥

(श्लो० ९९) नृत्यवादित्रकामिता नृत्यवाद्यप्रियत्वम् ॥

(श्लो० १००) प्राप्तकारी युक्तकारी । दृढोत्थानः दृढारंभः (इति डल्हनः) ॥

ऐश्वर्यवंतं रौद्रं च शूरं चंडमसूयकम्॥एकाशिनं चौदरिकमासुरं सत्वमी दृशम् ॥ १०३॥ तीक्ष्णमायासिनं भीरुं चंडं मायान्वितं तथा ॥ विहारा-हारचपलं सर्पसत्वं विदुर्नरम् ॥ १०४ ॥ प्रवृद्धकामसेवी चाप्यजस्रा हार एव च ॥ अमर्षणोऽनवस्थायी शाकुनं कायलक्षणम् ॥ १०५ ॥

जो ऐश्वर्यवाला हो भयानक हो शूरवीरहो प्रचंड (अतिकोपवान्) हो पराई निंदा करे आप अकेलाही अकेला खावे और औदरिक (पेटभरा अर्थात् बहुत खाने वाला) हो तौ उसे असुर सत्व मनुष्य कहतेहैं ॥ १०३ ॥ जो तीव्रस्वभाव वाला हो परिश्रमी हो तथा डरपोंक (या क्रोध रहित) हो चंड (कोप युक्तहो) मायावी हो विहार और आचारमें चपल हो तो ऐसे मनुष्यको सर्प सत्व जानो॥१०४॥जो अति-कामी हो तथा सदा खाताही रहे क्रोधीहो और एक जगह जिसका चित्त न लगे(अर्थात भ्रमणशीलहो) तो वह शाकुनसत्व होताहै ॥ १०५ ॥

एकांतग्राहिता रौद्रमसूया धर्मबाह्यता॥भृशमात्रं तमश्चापि राक्षसं काय लक्षणम् ॥ १०६॥ उच्छिष्टाहारता तैक्ष्ण्यं साहसप्रियता तथा॥ स्त्रीलो लुपत्वं नैर्लज्यं पैशाचं कायलक्षणम् ॥१०७॥ असंविभागमलसं दुःख शीलमसूयकम्॥लोलुपं चाप्यदातारं प्रेतसत्वं विदुर्नरम्॥१०८॥षडेते राजसाः कायास्तामसांस्तु निबोध मे ॥ १०९ ॥

जो प्रायः एकांत रहना ग्रहण करे भयानक हो पर निंदाकरे और धर्म विरुद्ध हो अति तमोगुणी हो तौ यह राक्षस सत्वकायाके लक्षणहैं ॥१०६॥ जो उच्छिष्ट भोजन करे तीक्ष्णहो साहसके साथ काम करे स्त्रीका लोलुप हो (स्त्री संगकी अति इच्छा करे) और निर्बल हो ये पिशाचसत्वके लक्षण हैं ॥ १०७ ॥ जो ठीक २ विभाग न करे (या जिसके शरीरके अंगोंके ठीक भागनहों) आलसी हो दुःख शीलहो निंदक हो लोलुपहो दातार न हो उस मनुष्यको प्रेत सत्व कहतेहैं ॥१०८॥ ये छःप्रकारके राजस रजो गुण प्रधान प्रकृतिके मनुष्य होतेहैं इनसे अगाडी तामस तमो गुण प्रधान प्रकृति) मनुष्योंके लक्षण श्रवण करो ॥ १०९॥

(श्लो० १०३) रौद्रं भयानकम् । चंडं तीव्रकोपम् । असूयकं परगुणेषु मत्सरिणम् । एकाशिनं एकाकी एव [illegible] औदरिकं [illegible] औदारिकमित्यत्र औपधिकमिति पठति औपाधिकं छद्मपरमितिच [illegible] ॥

(श्लो० १०४) [illegible] विहाराचारचपलं इति वा पाठः । भीरुंचंडमिति परस्परं विरोधोस्ति [illegible] कौचंडमित्यर्थः ॥

श्लो० १०५) [illegible] ॥(इति नि० सं०) अमर्षणः क्रोधने असहने च (इतिशब्दस्तोमः) ॥

दुर्मेधस्त्वं मंदता च स्वप्ने मैथुननित्यता ॥ निराकरिष्णुता चैव विज्ञेयाः पाशवा गुणाः ॥ ११० ॥ अनवस्थितता मौर्ख्यं भीरुत्वं सलिलार्थिता ॥ परस्पराभिमर्षश्च मत्स्यसत्वस्य लक्षणम् ॥ १११ ॥ एकस्थानेरतिर्नित्यमाहारे केवले रतः ॥ वानस्पत्यो नरः सत्वधर्मकामार्थवर्जितः ॥ ११२ ॥ इत्येते त्रिविधाः कायाः प्रोक्ता वैतामसास्तथा कायानां प्रकृतीर्ज्ञात्वा त्वनुरूपां क्रियां चरेत् ॥ ११३ ॥

दुष्ट बुद्धिता और मंदता हो नित्य स्वप्नमें मैथुन करे किसी कार्य करनेकी बुद्धि न हो ये पशुसत्व मनुष्योंके गुण हैं ॥ ११० ॥ किसी कार्यमें चित्त स्थिर न होना मूर्खता डर पोकपना और जलकी विशेष अभिलाषा रहना और आपसमें एक दूसरेसे द्वेष रखना ये मत्स्य सत्व मनुष्योंके लक्षण हैं ॥ १११ ॥ जो विशेष एकही जगह सदा पडा रहे और केवल भोजनही करनेमें रुचि रक्खे वह सत्वगुण धर्म अर्थ और कामसे वर्जित वानस्पत्य वनस्पति सत्व मनुष्य होता है॥ १०२॥ इस प्रकार ये तीन भांतिके तमोगुण प्रधान प्रकृतिके मनुष्य देह वर्णन किये अब इसमें वैद्योंको चाहिये कि शरीरोंकी प्रकृतिको विचारकर उसके अनुसारही क्रिया करें ॥ ११३ ॥

महाप्रकृतयस्त्वेता रजःसत्वतमःकृताः॥ प्रोक्ता लक्षणतः सम्यक् भिषक् तांश्च विभावयेत् ॥ ११४ ॥

इति शारीरे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण करके करी हुई ये महाप्रकृति लक्षण पूर्वक वर्णन करी हैं इनको (और वातादि प्रकृतियोंको) वैद्य लक्षणोंसे भले प्रकार विचारकर फिर चिकित्सादि विधान करें ॥ ११४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां शारीरकस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥

गर्भकी विवेचनाके पीछे अब शरीरके अंग प्रत्यंगके विवरण विषयक शारीरकका व्याख्यान करतेहैं ॥

शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं गर्भ इत्युच्यते १ तं च चेतनावस्थितं वायुर्विभजाति तेज एनं पचति आपः क्लेदयन्ति

(वा० १) शरीरसंख्याव्याकरणमिति गर्भव्याकरणानंतरमुत्पन्नस्य [illegible] शरीरा-वयवानां संख्यां कर्तुं युज्यते पंचमहाभूतशरीरिसमवायः शरीरं तस्य संख्या [illegible] विवरणम् ॥

पृथिवी संहंति आकाशं विवर्द्धयति एवं विवर्द्धितः स यदा हस्तपादजिह्वाघ्राणकर्णनितंबादिभिरंगैरुपेतस्तदा शरीरमिति संज्ञां लभते तच्च षडंगं शाखाश्चतस्रो मध्यं पंचमं षष्ठं शिर इति ॥ २ ॥

माताके गर्भाशयमें जो क्षेत्रज्ञ (जीव) और प्रकृति (प्रधानादि) तथा, विकार (पंच महाभूत और एकादश इंद्रिय) इनसे मिश्रित शुक्र और शोणितका घनीभूत आकार वह गर्भ कहलाताहै ॥ १ ॥ उस चेतनायुक्त गर्भको वायु विभाग करताहै अर्थात् दोष धातु मल और अंग प्रत्यंगोंको जुदा जुदा यथावस्थित करताहै और तेज (अग्नितत्व) उसे पकाताहै तथा जलतत्व क्लेदन (आर्द्रता) करताहै और पृथिवी तत्व उसे करडा (मूर्तिमान्) कर देताहै तथा आकाश उसे बढाताहै जब इस प्रकारसे बढा हुवा गर्भ हाथ पाव जिह्वा नासिका कर्ण औ नितंब(चूतड) आदि अंगोंसे उपयुक्त होजाताहै तब यह शरीर संज्ञाको प्राप्त होताहै वह शरीर छः अंगोंवाला होताहै जिनमें चार अंग तौ चारों शाखा अर्थात् दो हाथ और दो पाव और पाचवां अंग मध्यभाग अर्थात् धड और छठा अंग शिर कहलाताहै (यूनानी वाले अंडकोश और लिंगको सातवां अंग मानतेहैं ऐसे वे इस शरीरको " हफ्त अंदाम " अर्थात् सात अंग वाला शरीर कहतेहैं) ॥ २ ॥

प्रत्यंग ।

अतः परं प्रत्यंगानि वक्ष्यंते ॥ मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकबस्तिग्रीवा इत्येता एकैकाः कर्णनेत्रनासाभ्रूशंखांसगंडकक्षस्तनवृषणपार्श्वस्फिक्जानुबाहूरुप्रभृतयो द्वे द्वे विंशतिरंगुलयः स्रोतांसि च वक्ष्यमाणानि एषः प्रत्यंगविभाग उक्तः ॥ ३ ॥

इससे अगाडी प्रत्यंगोंको कहते हैं ॥ मस्तक पेट पीठ नाभि ललाट नाक ठोडी बस्ति और ग्रीवा (गरदन) ये एक एक होतेहैं और कान आंख नाकके नथने भ्रुकुटी शंख(कनपटी) अंस (खांदे) गंड (गाल) काख चुंची वृषण (अंड) पंसवाडे स्फिक (कूले) घुटने हाथ और साथल (और प्रभृति शब्दसे होठ और सृक्किणी आदि) ये दोदो होतेहैं और बीस अंगुली तथा स्रोत (मुख लिंग गुदादि) जो अगाडी कहे जावेंगे ये सब प्रत्यंग विभाग कहाहै (अर्थात् ऊपर छःअंग कहे और ये प्रत्यंग कहेहैं ॥ ३ ॥

शरीरके अवयवोंका संक्षिप्त वर्णन ।

तस्य पुनः संख्यानं त्वचः कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहानौ

फुंप्फुस उंडुको हृदयमाशया अंत्राणि वृक्कौ स्रोतांसि कंडरा जालानि कूर्चा रज्जवः सेवन्यः संघाताः सीमंता अस्थीनि संधयः स्नायवः पेश्यो मर्माणि सिरा धमन्यो योगवहानि स्रोतांसि च ॥ ४ ॥

शरीरके अवयव संक्षिप्ततासे इसप्रकार हैं कि त्वचा (चर्म)कला (झिल्लिका) धातु (रस रक्त मांस मेद आदि) मल (विष्ठा मूत्रादि) दोष (वात पित्त कफ) यकृत् (जिगर) प्लीहा (तिल्ली) फुप्फुस (फेफडा) उंडुक (मला धार मांटा अंतडा) हृदय (हृत्कमल दिल) आशय (आमाशय अर्थात् भोजन जाकर ठैरने और पकनेकी जगह जिसे यूनानी हकीम मेदा कहतेहैं इत्यादि) अंत्र (अंत-डियां) वृक्क (गुरदे) स्रोत (द्वार) कंडरा (मोटीनसें) जाल (मांसादिका जाल) कूर्च (कुंचले) रज्जु (बंधनी मांसरज्जू) सेवनी (सीवन) संघात(अस्थि शृंगाटक) सीमंत केश अस्थि (हाड) संधि (जोड) स्नायु (नसें) पेशी (गिलटियां) मर्म (मर्मस्थान) सिरा (बारीकरगें) धमनी (नाडी) और योगवाही स्रोतस (अन्न उदकादिके वहने वाले स्रोत इसप्रकार शरीरमें अवयवहैं) (और चकार शब्दसे और अन्यभी जानने)॥ ४ ॥

त्वचः सप्त, कलाः सप्त, आशयाः सप्त, धातवः सप्त, सप्तसिराशतानि, पंचपेशीशतानि, नवस्नायुशतानि, त्रीण्यस्थिशतानि, द्वे दशोत्तरे संधि-शते, सप्तोत्तरं मर्मशतं, चतुर्विंशतिर्धमन्यः, त्रयो दोषाः, त्रयोमलाः, नव स्रोतांसीति समासः ॥ ५ ॥

त्वचा सात हैं (इनका वर्णन पहलेकर चुके हैं) कलाभी सात हैं (इन्हेंभी कह चुके हैं) और आशय (वाताशय आमाशयादि) येभी सात हैं और धातु (रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र ये) भी सात हैं तथा शिरा (रग) सातसौ ७०० हैं और पेशी (गिलटियां) पाचसौ ५०० है और स्नायु नौसौ ९०० हैं और हड्डियां तीनसौ ३०० हैं और दोसो दस २१० संधि हैं और एकसौ सात १०७ मर्म हैं तथा चौवीस धमनी हैं और दोष तीन हैं और मल तीन हैं तथा नौ स्रोत (द्वार) हैं यह संक्षिप्त वर्णन है ॥ ५ ॥

विस्तारोऽत ऊर्ध्वम् । त्वचोऽभिहिताः कला धातवो मला दोषा यकृत् प्लीहानौ फुप्फुस उंडुको हृदयं वृक्कौ च ॥ ६ ॥

(इससे अगाडी विस्तार कहते हैं) जिसमेंसे त्वचा कला धातु मल दोष यकृत् प्लीहा फुप्फुस उंडुक हृदय और वृक्क इनको बता चुके हैं (निदर्शन मात्र कर चुके हैं) इनका विस्तृत वर्णन हम ग्रंथांतर और मतांतरसे अन्यत्र करेंगे ॥ ६ ॥

आशय ।

आशयास्तु वाताशयः पित्ताशयः श्लेष्माशयो रक्ताशय आमाशयपक्वाशयो मूत्राशयः स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम इति ॥ ७ ॥

आशय इस प्रकारसे हैं कि १ वाताशय (नाभिसे दो अंगुल नीचे) २ पित्ताशय (यही अग्न्याशय है यह नाभिसे कुछ ऊपर है इसेही पित्ता कहते हैं) ३ कफाशय (यह छातीके नीचे आमाशयके ऊपर है) ४ रक्ताशय (छातीमें हृदयके पास है) ५ आमाशय (यह नाभिसे स्तन पर्यंत है इसे मेदा कहते हैं) ६ पक्वाशय (यह वाताशयके नीचे है इसीका अधो भाग मलाशय कहाता है) ७ मूत्राशय (यही बस्ति अर्थात् मसाना कहाता है यह नाभिसे नीचे लिंगके मूलतक है) और स्त्रियोंके आठवां गर्भाशय होता है (यह पक्वाशय और पित्ताशयके मध्यमें होता है) ॥ ७ ॥

अंत्रप्रमाण ।

सार्द्धत्रिव्यामान्यंत्राणि पुंसां स्त्रीणामर्द्धव्यामहीनानि ॥ ८ ॥

पुरुषोंकी अंत्र (आंत) साढे तीन व्याम लंबी होतीहैं " और स्त्रियोंकी आंत उससे आधा व्याम कम अर्थात् तीन व्याम लंबी होती हैं-- " एक व्यामका प्रमाण " पसवाडोंके तरफ तिरछे दोनो हाथ फैलानेसे उनका अंतर व्याम कहलाताहै ॥ ८ ॥

स्रोत (द्वार)

श्रवणनयनवदनघ्राणगुदमेढ्राणि नव स्रोतांसि नराणां बहिर्मुखान्येतान्येव स्त्रीणामपराणि च त्रीणि द्वे स्तनयोरधस्ताद्रक्तवहं च ॥ ९ ॥

दो कर्ण दो नेत्र एक मुख दो नासिकाके छिद्र एक गुदा एक लिंग इस प्रकार बाहरको मुखवाले ये नौ द्वार पुरुषोंके शरीरमें होते हैं और स्त्रियोंके इनसे अधिक तीन और द्वार होतेहैं दो स्तन (चूंची) और एक आर्तवका मार्ग गर्भाशय होताहै ॥ ९ ॥

(व्या० ७) आशयक्रमो भावमिश्रेणेवमुक्तः उरो रक्ताशयस्तस्मादधः श्लेष्माशयः स्मृतः । आमाशयस्तु तदधः [illegible] नाभिस्तनांतरे जंतोराहुरामाशयं बुधाः " आमाशयादधः पक्वाशयादूर्द्ध्वं तु या कला ग्रहणीनामिका सैव कथिता पाचकाशयः ऊर्द्ध्वमग्न्याशयो नाभिर्मध्यभागे व्यवस्थितः तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः पक्वाशयस्तु तदधः स एव तु मलाशयः तदधः कथितो बस्तिः स हि मूत्राशयो मतः इति आशयाः वाग्भटेनोक्ताः रक्तस्याद्यः क्रमादन्ये कफामपित्तवातानामाशयाः मलमूत्रयोः स्त्रीणां गर्भाशयः प्रोक्तः पित्तपक्वाशयांतरे इति । रक्ताशयो यकृत् प्लीहानाविति केचित् ॥

(व्या० ८) व्यामः तिर्यक्पार्श्वतो विस्तृतयोर्बाह्वोरंतरालपरिमाणम् (इति शब्दस्तोमः) ॥

(व्या० ९) [illegible] मस्तके [illegible] नृणां [illegible] भावमिश्रः ॥

कंडरा ।

षोडश कंडराः ॥ तासां चतस्रः पादयोस्तावत्यो हस्तग्रीवापृष्ठेषु तत्र हस्तपादगतानां कंडराणां नखाः प्ररोहाः ग्रीवाहृदयनिबंधिनीनामधोभाग-गतानां मेढ्रं श्रोणिपृष्ठनिबंधिनीनामधोभागगतानांबिंबः मूर्द्धोरुवक्षोक्ष-पिंडादीनां च ॥ १० ॥

कंडरा (मोटी नसें) सोलह होतीहैं उनमेंसे ४ दोनों पावोंमें तथा चारही दोनों हाथोंमें और ४ ग्रीवामें और चारही पीठमें होतीहैं जिनमें हाथ और पावोंकी कंडरा नीचेको जातीहैं तौ उनके अग्रभाग (अंगुलियोंके) नख होतेहैं (अर्थात् नख पर्यंत जाकर हाथ पावोंकी कंडरा समाप्त होतीहैं) ग्रीवा और हृदयके बांधनेवाली जो चार कंडराहैं नीचे जाकर उनका अग्रभाग मेढ़ होताहै (अर्थात् ये मेढ़ पर समाप्त होतीहैं) और पीठको कमरसे बांधनेवाली जो चार कंडराहैं नीचे जाकर उनका अग्रभाग नितंब बिंब (चूँतड़) है (अर्थात् ये चूँतडोंपर्यंत जाकर समाप्त होतीहैं) इसी प्रकार मूर्द्धा उर वक्षस्थल नेत्र पिंडादिके मंडलभी (इन्हीं कंडराओंके ऊपरिगत अग्रभाग हैं ऐसा) जानना ॥ १० ॥

जाल ।

मांसशिरास्नाय्वस्थिजालानि प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि तानि मणिबंधगु-ल्फसंश्रितानि परस्परनिबद्धानि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षितानि चेति [११]यैर्गवाक्षितमिदं शरीरम् ॥ ११ ॥

मांस शिरा (रग) स्नायु (नस) तथा हड्डियां इनमेंसे प्रत्येक २ के चार चार जाल हैं वे जाल दोनो मणिबंधों (पहुचों) में और दोनों गुल्फ (पावके टकनों) में ऐसे इन चारों स्थानोंमें चारों प्रकारके जाल हैं वे परस्पर बंधे हुवे और पर-स्पर मिले (लिपटे) हुवे तथा परस्पर जालीके समान हैं इसीसे इस शरीरको गवाक्षित अर्थात् झरोखे युक्त कहते हैं ॥ ११ ॥

कूर्च ।

षट् कूर्चास्ते हस्तपादग्रीवामेढ्रेषु हस्तयोर्द्वौ पादयोर्द्वौ ग्रीवामेढ्रयो रेकैकः ॥ १२ ॥

(वा० १०) कंडराप्रयोजनमाह भावमिश्रः महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः कंडरास्तास्तु षोडश । प्रसारणाकुंचनयो-र्दृष्टं ताभ्यां प्रयोजनम् ॥

(वा० ११) मणिबंधः मणिर्बध्यतेऽत्र इति मणिबंधः प्रकोष्ठपाण्योर्मध्यस्थे करसंधौ (कान्दरतोंमः) गुल्फ-पादसंधौ ॥

(वा० १२) कूर्चाः इति कूर्चः भ्रुवोर्मध्यं स्थिते, लोमोच्चये, श्मश्रुणि(इति श० स्तो०) भावमिश्रस्तु । कूर्चा अपिशिरास्नायुमांसास्थिप्रभवाःस्मृता इति ॥

कूर्च अथात् कूंचले जो कूंचीके तुल्य होते हैं वे छह हैं हाथों पावों ग्रीवा और लिंग इनके मूलमें हैं हाथोंके मूलमें दो (दो जगह) इसी भांति पावोंके मूलमेंभी दो और ग्रीवामें एक (जगह) और मेढ्रके मूलमें एक जगह हैं (कूर्चेके तुल्य छोटे और करड़े केशोंको कूर्च कहते हैं और कई मांस और शिरा स्नायु आदिके अंकुरित पदार्थको कूर्च बतलाते हैं) ॥ १२ ॥

मांसरज्जु ।

महत्यो मांसरज्जवश्चतस्रः पृष्ठवंशमुभयतः पेशीनिबंधनार्थं द्वे बाह्ये आभ्यंतरे च द्वे ॥ १३ ॥

बडी मोटी मांसकी रज्जु (रस्से सदृश) चार है वे पीठक बाँसके दोनों तरफ पेशियोंके बांधनेके निमित्त हैं जिनमेंसे दो बाहरकी तरफ दोनों ओर हैं और दो भीतरकी दोनों तरफ हैं ॥ १३ ॥

सेवनी ।

सप्त सेवन्यः शिरसि विभक्ताः पंच जिह्वाशेफसोरेकैका ताः परिहर्तव्याः शस्त्रेण ॥ १४ ॥

सेवन (सीवन) शरीरमें सात हैं पांच जगहतो शिरमें हैं और एक जिह्वामें और एक लिंगेंद्रियके नीचे ये सीवनें शस्त्रसे बचानी चाहियें (यदिनश्तर लगानेका काम पडेतो इन्हे बँचाकर लगाना चाहिये) ॥ १४ ॥

अस्थिसंघात ।

चतुर्दशास्थ्नां संघाताः तेषां त्रयो गुल्फजानु वंक्षणेषु एतेनेतरसक्थि-बाहू च व्याख्यातौ त्रिकशिरसोरेकैकः ॥ १५ ॥

अस्थिसंघात (हड्डिके शृंगाटक) चौदह इस शरीरमें हैं उनमें से तीन एक पावमें ऐसे हैं कि एकतो टकनेमें एक घुटनेमें और एक जंघाके मूलमें इसी प्रकार तीन दूसरे पांवमें और तीन एक हाथमें इसी भांतिके एक पहुँचेमें एक कोहनीमें एक मोढेमें ऐसेही तीन दूसरे हाथमें ये बारह हुवे और एक त्रिकस्थानमें और एक शिरमें ऐसे सब १४ हुवे (किसी किसीके मतसे ये अस्थिसंघात १८ होतेहैं जो १४ तो उपरोक्त और १ छातीमें जिसे कौडी कहतेहैं तथा १ दोनो नितंबोके बचि जिसे दुट्टी कहते हैं और दो दोनों अंसकूटपर ऐसे १८ हुवे) ॥ १५ ॥

(सू० १३) गयी तु । महत्यो मांसरज्जवश्चतस्रः पृष्ठवंशमुभयत इत्यष्टौ प्रतिपादयति (इति निबंधसंग्रहः)॥
(सू० १५) अन्ये तु त्रिकप्रदेश बाहुग्रीवास्थिसंघात उच्यते ॥

सीमंत ।

चतुर्दशैव सीमंतास्ते चास्थिसंघातवद्गणनीयाः यतस्तैर्युक्ता अस्थिसंघाताः । ये ह्युक्ताः संघातास्तु खल्वष्टादशैकेषाम् ॥ १६ ॥

सीमंत मनुष्यशरीरमें १४ हैं वे अस्थिसंघातके भांतिही गिनने चाहियें क्योंकि आस्थिसंघात सीमंतोंसे मिले हुवेहैं (सीमंत अवयवकी सीमाके अंतको कहतेहैं) और जो ऊपर १४ अस्थिसंघात कहेहैं किसीके मतसे वे १८ होते हैं जिनको ऊपरके वाक्यकी टीकामें हम गिनाचुके हैं ॥ १६ ॥

अस्थिसंख्या ।

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषंते । शल्यतंत्रे तु त्रीण्येव शतानि, तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु, सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं त्रिषष्टिः एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यंते॥ १७॥

इस मनुष्यशरीरमें वेदवादी विद्वान् तीनसौ साठ (३६०) हड्डियां कहते हैं परंतु शल्य तंत्र (चीरफाड़की विद्या) से केवल तीनसौ (३००) ही प्रतीत होते हैं जिनमेंसे एकसौ वीस (१२०) हड्डियां तौ चारों हाथ पैरोंमें हैं और एकसौ सतरह (११७) कमर पँसवाड़े पीठ उदर और छातीमें हैं तथा तिरसठ (६३) हड्डियां ग्रीवासे ऊपर चेहरेमें हैं ऐसे सब मिलकर पूरी तीनसौ हुई ॥ १७ ॥

पृथक् पृथक् गणना ।

एकैकस्यां तु पादांगुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंचदश तलकूर्चगुल्फसंश्रितानि दश, पार्ष्ण्यामेकं, जंघायां द्वे, जानुन्येकं, एकमुराविति, त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवंति, एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ, श्रोण्यां पंच तेषां गुदभगनितंबेषु चत्वारि त्रिकसंश्रितमेकं, पार्श्वे षट्त्रिंशदेवमेकस्मिन्, द्वितीयेप्येवं, पृष्ठे त्रिंशत्, अष्टावुरसि द्वे अक्षकसंज्ञे ग्रीवायां नवकं कंठनाड्यां चत्वारि द्वे हन्वोः दंता द्वात्रिंशत् नासायां त्रीणि एकं तालुनि गंडकर्णशंखेष्वेकैकं षट् शिरसि ॥ १८ ॥

एक एक पांवकी अंगुलीमें तीन तीन हड्डियां हैं ऐसे पांच अंगुलियोंमें १५ हुई और तलवे पंजे और टकनेमें १० (इस भांति कि अंगुलियोंकी सीवमें ५ इनके जोड़में १ कूर्चमें २ और टकनेमें दो ऐसे १० हुई) एडीमें १ जंघामें २

(वा० १६) चतुर्दशैव सीमंताः कथिता मुनिपुंगवैः।संघाताः सीमितायेन्तु सीमंतास्ते प्रकीर्तिताः (भा०प्र०)॥

जानु (घुटने) में १ और साथलमें १ ऐसे सब एक पाँवमें तीस हड्डी हुई इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें ३० और दोनों हाथोंमें ६० बस चारों हाथ पावोंमें १२० होगई ॥ और कमरमें ५ उनमें गुदापर एक भग या लिंगके ऊपर १ दोनों चूँतडोंमें२और त्रिक संधिमें १ (ऐसे ५ हुई) एक पसवाड़ेमें ३६ और दूसरे पसवाड़े-मेंभी ३६ तथा पीठमें ३० और उर (छाती) में ८ और अक्षक संज्ञ (हंसली) की २ ऐसे धड़में सब ११७ हुई ॥ ग्रीवामें ९ और कंठ नाडीमें ४ और ठोडीमें २ और दांत ३२ नासिकामें ३ तालूमें १ गलोथे कान और कनपटीमें एक एक दोनों तरफ ६ हुई और शिरमें ६ हड्डियां हैं ऐसे चेहरेकी सब ६३ हुई (इन सबको मिलाया तौ हाथ पांवोंकी १२० धड़की ११७ और चेहरेकी ६३ सब ३०० पूरी हुई) ॥ १८ ॥

एतानि पंचविधानि भवंति तद्यथा कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञानि तेषां जानुनितंबांसगंडतालुशंखशिरःसु कपालानि दशनास्तु रुचकानि घ्राणकर्णग्रीवाक्षिकोषेषु तरुणानि पाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरस्सु वलयानि शेषाणि नलकसंज्ञानि ॥ १९ ॥

ये उपरोक्त सब अस्थि पांच प्रकारके हैं यथा कपाल संज्ञक रुचक सं० तरुण सं० वलय सं० और नलक संज्ञक इनमेंसे घुटने चूतड़ खोंदे गलोंथे तालु कनपटी और शिरमें कपाल संज्ञक (सरावाकृति) अस्थिहैं । और दांत रुचक (कीलसरीखे)हैं और नाक कान ग्रीवा नेत्र कोष इनमें तरुण (कोमल)अस्थिहैं और हाथपांव पँसवांडे पीठ पेट वक्षस्थल (छाती) इनमें वलय संज्ञक (गुंफित और खमदारसे) अस्थिहैं शेष अंगुलियों बाहु जंघा आदिमें नलक संज्ञक (नलकाके आकार बीचसे खाली) अस्थियां हैं ॥ १९ ॥

भवन्ति चात्र॥ अभ्यंतरगतैः सारैर्यथा तिष्ठंति भूरुहाः॥ अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियंते देहिनां ध्रुवम्॥ २०॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्। अस्थीनि न विनश्यंति साराण्येतानि देहिनाम्। २१। मांसान्यत्र निबद्धानि सिराभिः स्नायुभिस्तथा॥ अस्थीन्यालंबनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतंति वा २२

यहांपर श्लोकहैं कि जैसे भीतरके सार पदार्थसे वृक्षादि स्थित रहतेहैं उसी प्रकार अस्थिके सारसे मनुष्योंके शरीर धारण किये हुवे स्थित रहते हैं ॥ २० ॥ इसी कारणसे यदि कभी त्वचा मांसादि चिरविनष्ट हो जाय घट जाय सूख जाय क्षय हो जाय तौभी अस्थी नष्ट नहीं होते (नहीं घटते) इसीसे ये देहीके सारहैं॥२१॥

इन अस्थियोंमें शिरा और स्नायुवोंसे मांस बँधा हुवा है और अस्थियोंका आलंबन करके मजबूत किये हुवे हैं इस कारणसे ये अस्थि न तो बिखरतेहैं और न गिरतेहैं॥२२॥

संधि।

संधयस्तु द्विविधाश्चेष्टावंतः स्थिराश्च ॥२३॥शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावंतस्तु संधयः॥शेषास्तु संधयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः॥२४॥

मनुष्य शरीरमें संधि दो प्रकारकी होती हैं १ चेष्टावाली (जिनमें पसारने सुकोड़ने या मुड़नेकी शक्ति हो) दूसरे स्थिर जो पसारी सकोड़ी न जावें॥२३॥ जिनमें शाखा (हाथपैरों) और हनु (ठोडी) तथा कमर इन स्थानोंमें चेष्टावाली (चलायमान) संधियां होतीहैं और शेष सब स्थिर संधियां हैं ॥ २४ ॥

संख्यातस्तु दशोत्तरे द्वे शते तेषां शाखास्वष्टषष्टिरेकोनषष्टिः कोष्ठे ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं त्र्यशीतिः ॥२५॥ एकैकस्यां पादांगुल्यां त्रयस्त्रयो द्वावंगुष्ठे ते चतुर्दशजानुगुल्फवंक्षणेष्वेकैकः एवं सप्तदशैकस्मिन् सक्थ्नि भवंति एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ २६ ॥ त्रयः कटीकपालेषु चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे तावंत एव पार्श्वयोः उरस्यष्टौ तावंत एव ग्रीवायां त्रयः कंठे नाडीषु हृदयक्लोमनिबद्धासु अष्टादश दंतपरिमाणा दंतमूलेषु एकः काकलके नासायां च द्वौ वर्त्ममंडलजौ नेत्राश्रयौ गंडकर्णशंखेष्वेकैकः द्वौ हनुसंधी द्वावुपरिष्टाद्भ्रुवोः शंखयोश्च पंच शिरःकपालेष्वेको मूर्ध्नि२७॥

संख्यामें सब संधि दोसौ दश (२१०) हैं उनमेंसे हाथ पांवोंमें ६८ और धड़में ५९ और ग्रीवासे ऊपर ८३ संधियांहैं ॥ २५ ॥ एक एक पांवकी अंगुलीमें तीन तीन और अँगुठेमें २ ये सब १४ हुई और टकनेमें १ घुटनेमें १ और कूलेमें १ ऐसे एक पावमें सब १७ संधियां हुई फिर इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें १७ और हाथमें १७ फिर दूसरे हाथमें ऐसे चारों हाथ पैरोंमें सब ६८ संधियां हुई ॥ २६ ॥ कमर और कपालिकास्थिके बीचमें ३ संधिहैं और पीठके बांसमें २४ और पँसवाडोंमेंभी२४छातीमें ८ और ग्रीवामेंभी ८ और कंठमें ३ तथा हृदय और क्लोमसे बँधी हुई नाडी (नलका) में १८ और दांतोंके मूलमें ३२ और घंटिकामें १ नासिकामेंभी १ नेत्रोंके वर्त्म मंडलमें २ गलोंथा कर्ण और कनपटियोंमें एक एक ये ६ ठोडीमें २ भ्रुकुटीके ऊपर शंखमें दो दो शिरके कपालमें ५ और मूर्द्धामें १ इस प्रकार सब संधि २१० होगई ॥ २७ ॥

त एते संधयोऽष्टविधाः कोरोदूखलसामुद्गप्रतरतुन्नसेवनीवायसतुंडमंडल-शंखावर्ताः तेषामंगुलिमणिबंधजानुगुल्फकूर्परेषु कोराः संधयः कक्षवंक्षण-दशनेषु दूखला अंसपीठगुदपादनितंबेषु सामुद्गा ग्रीवापृष्ठवंशयोः प्रतराः शिरःकटिकपालेषु तुन्नसेवनी हन्वोरुभयतस्तु वायसतुंडाः कंठहृदयनेत्र-क्लोमनाडीषु मंडलाःश्रोत्रशृंगाटकेषु शंखावर्ताः ॥ २८ ॥

ये उक्त सब संधियां आठ प्रकारकी हैं १ कोर (कलिकावत्) २ उदूखल (ऊखल जैसी) ३ सामुद्ग (संपुटवत्) ४ प्रतर (डोंगे सदृश) ५ तुन्नसेवनी (सींवनके सदृश) ६ वायसतुंड (काककी चोंचके सदृश) ७ मंडल (गोल) ८ शंखावर्त (शंखकी आँटीके सदृश) इनमेंसे अँगुली पहुँचा घुटना टकना और कोहनी इनमें कोर संज्ञक संधि हैं काँख वंक्षण (कूले) और दातोंमें उदूखल सदृश संधियां हैं अंस (खोदे) पीठ गुदा पैर और चूतड इनमें सामुद्ग संज्ञक संधि है ग्रीवा और पीठके वांसमें प्रतर संज्ञक संधि हैं शिर और कमर कपाल में तुन्नसेवनी संधि हैं ठोडीके दोनों तरफ वायस तुंड संज्ञक संधि हैं कंठ हृदय नेत्र और क्लोम नाडी (नलका) इनमें मंडलाकार संधि हैं और कान शृंगाटकोंमें शंखावर्तके तुल्य संधि हैं ॥ २८ ॥

अस्थ्नां तु संधयो ह्येते केवलाः परिकीर्तिताः॥पेशीस्नायुशिराणां तु संधि-संख्या न विद्यते ॥ २९ ॥

ये जो ऊपर वर्णनकी गई हैं वे केवल हड्डियोंकी संधियां हैं और पेशी स्नायु और शिरा इनकी संधियोंकी संख्या नहीं होसकती अर्थात् पेशी (गिलटी पट्टे) और नसों और शिरा (रगों) की संधियां अनंत हैं ॥ २९ ॥

स्नायुः ।

नव स्नायुशतानि तासां शाखासु षट्शतानि द्वे शते त्रिंशच्च कोष्ठे ग्रीवां प्रत्यूर्द्ध्वं सप्ततिः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां तु पादांगुल्यां षट् निचितास्ता-स्त्रिंशत् तावत्य एव तलकूर्चगुल्फेषु तावत्य एव जंघायां दश जानुनि चत्वारिंशदूरौ दश वंक्षणे शतमभ्यर्द्धमेवमेकस्मिन्सक्थ्नि भवंति एते-

(व्या० २८) कोरो नाम मर्मस्तदाकृतयः कोराः कोरः कलिका तदाकृतय इत्यन्ये । उदूखलः तंडुलखंडनो पलोमी तदाकृतयस्तदूखला । समुद्गः संपुटस्तदाकृतयः सामुद्गाः । प्रतरः प्रतरंत्यनेनेति प्रतरः भेलकस्तदाकृतयः प्रतराः । तुन्नसेवनी तुन्नाभिसासेवनी यत्र तन्नसेवनीवदित्यर्थः । वायसतुंडाःकाकतुंडाकृतयः । मंडलाकृतयो मंडलाः । शंखस्यावर्तेन शंखावर्ता इति ॥

नेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ३१ ॥ षष्टिः कट्यां अशीतिः पृष्ठे पार्श्वयोः षष्टिः उरसि त्रिंशत् षट्त्रिंशद् ग्रीवायां मूर्ध्नि चतुस्त्रिंशत् एवं नव स्नायुशतानि व्याख्यातानि ॥ ३२ ॥

मनुष्यके शरीरमें नौसौ (९००) स्नायु अर्थात् नसें हैं जिनमेंसे ६०० तो शाखा अर्थात् चारों हाथ पैरोंमें हैं और २३० धड़में हैं और ग्रीवासे ऊपर चेहरेमें ७० नसें हैं ३० एक एक पांवकी अंगुलीमें छः छः नसेंहैं पांचों अंगुलियोंकी मिल-कर ३० हुईं और ३० ही तलवे पंजे और टकनेमें हैं और ३० ही जंघा अर्थात् पिंडलीमें हैं तथा दश घुटनेमें और ४० साथलमें और १० वंक्षण (कूले) में ऐसे सब एक पावमें १५०नसें हुईं फिर इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें १५०तथा एक हाथमें १५० और दूसरे हाथमेंभी १५० इस भांति चारों हाथ पैरोंमें सब ६०० नसेंहैं॥ ३१ ॥कम-रमें ६० नसें हैं और पीटमें ८० पँसवाडोंमें ६० और वक्षस्थलमें ३० हैं ऐसे सब धड़की २३० नसें हुईं फिर ग्रीवामें ३६ और मूर्द्धा (चेहरे) में ३४ ऐसे ग्रीवासे ऊपर ७० नसें होगई और सब मिलकर ९०० होगईं ॥ ३२ ॥

भवंति चात्र ॥ स्नायुश्चतुर्विधाः विद्यात्तास्तु सर्वा निबोध मे ॥ प्रतानवत्यो-वृत्ताश्च पृथुलाः सुषिरास्तथा ॥ ३३ ॥ प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसंधि-षु चाप्यथ वृत्तास्तु कंडराः सर्वाः ॥ ज्ञेयाः कुशलैरिह ॥ ३४ ॥ आमपक्वा-शयांतेषु वस्तौ च सुषिराः खलु ॥ पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च शिरस्यथ

यहां पर श्लोक हैं कि ॥ स्नायु चार प्रकारकी होती हैं जिन्हें मुझसे सुनो १ प्रतानवती २ वृत्त ३ पृथुल ४ सुषिर॥ ३३ ॥हाथ पैरोंमें प्रतानवती (बेलकी तरह फैली हुई) नसेंहैं और संधियोंमें भी प्रतानवतीही नसेंहैं तथा जो नसें गोल हैं उन्हेंही कंडरा जानना इन्हें पहले बता चुकेहैं (मोटे स्नायु जो गोलहों वे कंडरा कहातीहैं) ॥ ३४ ॥आमाशय और पक्काशयमें तथा बस्तिमें सुषिर (पैनी) स्नायु हैं और पँसवाड़े छाती पीठ तथा शिर इनमें पृथुला चौड़ी फैलवां नसें हैं ॥ ३५ ॥

नौर्यथा फलकास्तीर्णा बंधनैर्बहुभिर्युता ॥ भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुस-माहिता ॥ ३६ ॥ एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावंतः संधयः स्मृताः ॥ स्नायुभि-र्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥ ३७ ॥ न ह्यस्थीनि न वा पेश्यो न शिरा न च संधयः ॥ व्यापादितास्तथा हन्युर्यथा स्नायुः शरीरिणम् ॥ ॥ ३८ ॥ यः स्नायूः प्रविजानाति बाह्याश्चाभ्यंतरास्तथा ॥ स गूढं शल्य-माहर्तुं देहाच्छक्नोति देहिनाम् ॥ ३९ ॥

जैसे नौका अनेक काष्ठ फलकोंसे व्याप्त बहुत बंधनोंसे बंधी हुई बोझा सहनेको समर्थ होती हैं और मनुष्योंसमेत जलमें तरनेका साधन होती है उसी प्रकार इस शरीरमें जितनी संधियां है सब बहुतसी नसोंसे बंधी हुई हैं इसीसे मनुष्य बोझेको सहता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अस्थि अथवा पेशी अथवा शिरा अथवा संधि विदीर्ण हो जावें तौ इतना शरीरका नाश नहीं करे जितना स्नायुके विदीर्ण होने (कटने) से मनुष्यका नाशकर देवे ॥ ३८ ॥ इससे जो वैद्य बाहरकी तथा भीतरकी संपूर्ण स्नायुवोंको भले प्रकार जानता है वही शरीरके गूढ शल्यको ठीक ठीक निकाल सकता है अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥

परिशिष्ट ।

स्नायवः सूत्रवत्सूक्ष्माः शुभ्रानिखिलदेहगाः॥ कारणानि चेतनानां सदाचै तन्यसाधने॥ १ ॥ सुखदुःखाववबोधे च प्रवृत्तौ चनिवर्तने॥ रूपगंधरसस्पर्श शब्दज्ञाने च हेतवः॥ २ ॥ निखिलास्ताश्चसंजाता मस्तिष्कात्पृष्ठमज्जतः॥ शिरोमंडलमेवाद्याः शेषाः शेषांगमाश्रिताः॥ ३ ॥ तेषुतेषुच भावेषु देहमात्तेषु वस्नसाः॥ कंपमानाः कंपयंतेमस्तुलुंगंचतत्क्षणात् ॥ ४ ॥ तस्यप्रकंपभेदेन ज्ञानभेदोभवेद्बहुः ॥ अतोमस्तिष्कमेवैको ज्ञानहेतुःप्रकीर्तितः॥ ५ ॥ स्नायु नाशोभवेद्यस्मिन्नंगेतत्स्यान्मृतोपमम् ॥ पक्षाघातादिरोगेषु कारणंत द्विधंमतम् ॥ ६ ॥

"अर्थ" स्नायु सूत्रके तुल्य बारीक और सुपेद सब देहमें व्याप्त हैं और चैतन्यताका कारण और सदैव चैतन्यत्वका साधन हैं (सर्वत्र रक्तकी गति इन्हींसे है)॥ ॥ १ ॥ सुख दुःखके ज्ञानमें तथा सुख दुःखकी निवृत्ति और प्रवृतिमें येही कारण हैं और रूप रस गंध स्पर्श और शब्द इनके ग्रहणमें और ज्ञानमें यही हेतु हैं ॥ २ ॥ ये सब मस्तिष्क (दिमाग) से तथा पृष्ठ वंशकी मज्जासे उपजती हैं जिनमेंसे जो मस्तिष्कसे उपजी हैं वे तौ मस्तिष्कमेंही गमन करती हैं और शेष शेष सब अंगमें व्याप्त होती हैं ॥ ३ ॥ जो भाव शरीरमें उत्पन्न होते हैं उनसे उनके संबंध रखने वाली स्नायु कंपायमान होती हैं फिर उस कंपासे मस्तिष्कको सूक्ष्म कंपा पहुँचाती है उसी कंपासे मस्तिष्कको सब ज्ञान होता है इससे मस्तिष्क दिमागही ज्ञानका हेतु है जैसे किसी वस्तुके प्रतिबिंबसे नेत्र गतरूप वहां स्नायु कंपायमान होकर उस प्रभावको मस्तिष्क (दिमाग) में पहुँचावे जिससे रूपका ज्ञान हो ऐसेही रसादिकका ज्ञानभी जानो ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस अंगकी स्नायु नाश होजाय या निकम्मी हो जाय वह अंग मृतकके तुल्य हो जाता है इससे पक्षाघातादि रोगोंकाभी येही कारण है ६

पेशी ।

पंच पेशीशतानि भवन्ति तासां चत्वारि शतानि शाखासु कोष्ठे षट्-षष्टिः ग्रीवांप्रत्यूर्द्ध्वं चतुस्त्रिंशत् ॥ ४० ॥

मनुष्यके शरीरमें पांचसौ (५००) पेशी (मांसकी गिलटियां) हैं उनमेंसे शाखा (चारों हाथ पैरों) में ४०० पेशीहैं और धडमें ६६ तथा ग्रीवासे ऊपर ३४ पेशियां हैं ॥ ४० ॥

पेशियोंकी पृथक् पृथक् गणना ।

एकैकस्यां तु पादांगुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पंचदश दश प्रपदे पादोपरि कूर्चसन्निविष्टास्तावत्य एव दश गुल्फतलयोः गुल्फजान्वंतरे विंशतिः पंच जानुनि विंशतिरूरौ दश वंक्षणे शतमेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ४१ ॥

एक एक पांवकी अंगुलियोंमें तीन तीन पेशी होतीहैं सब पांचों अंगुलियोंकी १५ हुई दश पंजेमें और पंजेके ऊपर कूर्चसे मिली हुईभी १० और टकने और तलवेमें दस तथा टकने और घुटनेके बीचमें २० तथा घुटनेमें ५ और साथलमें २० और वंक्षण (साथलके ऊपले जोड़) में १० इस प्रकार एक पांवमें १०० पेशियां हैं फिर इसी हिसाबसे दूसरे पांवमें भी १०० और एक हाथमें १०० और दूसरे हाथमें भी १०० ऐसे चारों हाथ पैरोंकी सब ४०० पेशियां हुई ॥ ४१ ॥

तिस्रः पायौ, एका मेढ्रे, सेवन्यां चापरा, द्वे वृषणयोः, स्फिचोः पंच पंच, द्वे बस्तिशिरसि, पंचोदरे, नाभ्यामेका, पृष्टोर्द्ध्वसंन्निविष्टाः, पंच पंच दीर्घाः, षट् पार्श्वयोः, दश वक्षसि, अक्षकांसौ, प्रति समंतात् सप्त, द्वे हृदयामाशययोः, षट् यकृत्प्लीहोंडुकेषु ॥ ४२ ॥ ग्रीवायां चतस्रः, अष्टौ हन्वोः, एकैका काकलकगलयोः, द्वे तालुनि, एका जिह्वायां, ओष्ठयोर्द्वे, नासायां द्वे द्वे नेत्रयोः, गंडयोश्चतस्रः, कर्णयोर्द्वे, चतस्रो ललाटे, एका शिरसि, इत्येवमेतानि पंच पेशीशतानि ॥ ४३ ॥

(वा० ४३) वाग्भटस्तु पेशीसंख्यायामित्याह यथा पंच पेशीशतानि तासां चत्वारि शतानि शाखासु षष्टिरंतराधौ चत्वारिंशदूर्द्ध तत्र शाखासु विरोधो नास्ति कोष्ठे षष्टिर्यथा एकैका मेढ्रसेवन्योः द्वे वृषणयोः स्फिजोः तिस्रो गुदे तास्तु वलीसंज्ञाः द्वे वस्तिशिरसि चतस्र उदरे नाभ्यामेका द्वे हृदि आमाशये च षट् यकृत्प्लीहोंडुकेषु पृष्ठे पंचोर्ध्वसंनिविष्टा दश दीर्घाःपार्श्वयोः दश वक्षसि तिस्रोंसाक्षकोपरितः एवं मध्यभागे ६० षष्टिः ऊर्द्ध चत्वारिंशत् यथा दश ग्रीवायां अष्टौ गंडयोः अष्टौ हन्वोः एकैका गलकाकलजिह्वामूर्द्धसु द्वे द्वे तालुललाटयोः नासौष्ठकर्णेषु चेति (वृ० वाग्भटः) ॥

गुदामें ३ पेशीहैं (यही त्रिबली कहलातीहैं) लिंगमें १ पेशीहै सीवनमें १ वृषणोंमें २ दोनों चूतडोंमें पांच पांच अर्थात् १० हैं बस्तिके शिरपर २ और उदरमें ५ नाभिमें १ पीठके ऊपर संनिविष्ट पांच पांच बडी पेशियांहैं पँसवाडोंमें ६ छातीमें १० खोदे और हँसलीके आसपास ७ हृदय और आमाशयमें २ यकृत् प्लीहा और उंडुक इनमें ६ ये सब मिलाके मध्य भागकी ६६ पेशियां हुईं ॥ ४२ ॥ ग्रीवामें ४ ठोडी (जबडों) में ८ काकलक (काक) में १ और गलमें १ तालुमें २ जिह्वामें १ होठोंमें २ नासिकामें २ नेत्रोंमें २ गलोथोंमें ४ कानोंमें २ ललाटमें ४ शिरमें १ ऐसे ये ग्रीवासे ऊपरकी सब ३४ पेशियां हुईं और तीनों जगहकी सब मिलकर ५०० पेशियां हुईं (परंतु गयदासाचार्य वाग्भटके मतसे मध्य भागमें ६० और ग्रीवासे ऊपर ४० पेशी मानतेहैं) ॥ ४३ ॥

शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि संधयश्च शरीरिणाम् ॥ पेशीभिः संवृतान्यत्र बलवन्ति भवंत्यतः ॥ ४४ ॥

शिरा स्नायु और अस्थियोंके जोड़ तथा देहकी संधियां ये सब पेशियोंसे आच्छादित (मढे हुवे) हैं इसीसे बलवान् (मजबूत) रहतेहैं ॥ ४४ ॥

स्त्रियोंके अधिक पेशी ।

स्त्रीणां तु विंशतिरधिका दश तासां स्तनयोरेकैकस्मिन् पंच पंच यौवने तासां परिवृद्धिः । अपत्यपथे चतस्रस्तासां प्रसृतेऽभ्यंतरते द्वे मुखाश्रिते बाह्ये च प्रवृते द्वे गर्भछिद्रसंश्रितास्तिस्रः शुक्रार्तवप्रवेशिन्यस्तिस्र एव पित्तपक्वाशयमध्ये गर्भाशयो यत्र गर्भस्तिष्ठति ॥ ४५ ॥

स्त्रियोंके देहमें २० पेशी अधिक होतीहैं जिनमें पांच पांच दोनों चूचियोंमें ऐसे १० तो ये हुईं ये चूचियोंके पेशी तरुण (युवा) अवस्थामें बढतीहैं । और योनिमें ४ पेशी है इनमेंसे २ पेशी तो योनिके अंतर्गत बली पै और २ योनिके मुखपर बाहर होतीहैं और गर्भछिद्रके आश्रयमें ३ और वीर्य और आर्तव शोणितके गर्भाशयमें प्रवेश करनेवालीभी ३ ही हैं (ऐसे सब २० हुईं) पित्ताशय और पक्वाशयके मध्यमें गर्भाशय है यहां ही गर्भ स्थित होताहै॥ ४५ ॥

पेशियोंके स्वरूप ।

तासां बहलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशभावाः संध्यस्थिशिरास्नायुप्रच्छादका यथादेशं स्वभावत एव भवंति ॥ ४६ ॥

उन पेशियोंमेंसे कोई बहुल (जादा) कोई पेलव (थोडी) कोई स्थूल (मोटी) कोई अणु (पतली) कोई पृथु (फैली हुई) कोई वृत्त (गोल) कोई ह्रस्व(छोटी)

कोई दीर्घ (लंबी) कोई स्थिर कोई मृदु (कोमल) कोई श्लक्ष्ण (लजलजी) कोई कर्कश (कठोर) हैं ये पेशी संधि अस्थि शिरा और स्नायुको उस स्थानके अनुसार स्वभावहीसे आच्छादन करे हुवे रहतीहैं ॥ ४६ ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता लक्षणमुष्कजाः ॥ स्त्रीणामावृत्य तिष्ठंति फलमंतर्गतं हि ताः ॥४७॥

पुरुषोंके शरीरमें जो पेशियां पहले वर्णन करीं उनमेंसे तीन पेशी (१ लिंगमें और २ वृषणोंमें)वे स्त्रियोंके योनिमें भीतर आच्छादित रहती है (गयदासाचार्य इस श्लोकको क्षेपक मानकर प्रमाण नहीं करते वे कहतेहैं कि "पुंसां" अर्थात् पुरुषोंके ५०० पेशी हैं स्त्रियोंके नहीं किंतु स्त्रियोंके तीन न्यून पांचसौ तौ ये और बीस अधिक सब ५१७ होती हैं)॥ ४७ ॥

मर्मशिराधमनीस्रोतसामन्यत्र प्रविभागः ॥ ४८ ॥

मर्म शिरा धमनी और स्रोतोंका वर्णन, और जगहपर किया है ॥ ४८ ॥

गर्भशय्याका वर्णन ।

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्त्तिता ॥ तस्यास्तृतीयेत्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता॥४९॥ यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः॥ तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ५० ॥ आभुग्नोभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः॥ स योनिं शिरसा याति स्वभावात्प्रसवं प्रति ॥ ५१ ॥

स्त्रियोंकी योनि शंखकी नाभिके आकार तीन आंटेवाली होती है उसके तीसरे आँटेमें गर्भशय्या होतीहै ॥ ४९ ॥ जैसे रोहित मछलीके मुखका स्वरूप होताहै वैसाही स्थान और रूप गर्भशय्याका होता है ऐसा वैद्य कहतेहैं ॥ ५० ॥ आभुग्न (मुकड़ा हुवा) और सन्मुख गर्भशय्या (गर्भाशय) में गर्भ शयन करताहै अर्थात् बालक रहता है वह प्रसवके समय स्वभावहीसे शिरके बल योनिद्वारपर प्राप्त होताहै ॥५१॥

मृत शरीर चीरकर देखनेकी विधि ।

त्वक्पर्यंतस्य देहस्य यो यमंगाविनिश्चयः ॥ शल्यज्ञानादृतेनैव वर्ण्यतेंगेषु केषु चित्॥ ५२॥ तस्मान्निःसंशयज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वांच्छता॥ शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योंगविनिश्चयः ॥ ५३ ॥ प्रत्यक्षतो हि यं दृष्टं शास्त्रदृष्टं च यद्भवेत्॥समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम्॥५४॥

त्वचापर्यंत जो जो शरीरके अंगविभाग हैं उनका ठीक निश्चय कहीं कहीं शल्यज्ञान (चीर फाड कर देखने) के विना नहीं कहा जासकता ॥ ५२ ॥ इसलिये निस्संदेह ज्ञानकी वांच्छा करनेवाले वैद्य (सर्जन) को चाहिये कि मृत (मुरदे) की लाशको सम्यक् प्रकारसे शोधना (चीर फाडकर) अंगोंको निश्चय देखे ५३ ॥ क्योंकि जो जो प्रत्यक्ष देखा जाता है और शास्त्रमेंभी देखा जाता है फिर दोनों बार २ मिलानेसे ज्ञानकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतकं निसृष्टांत्रपुरीषं पुरुषमवहंत्यामापगायां निबद्धं पंजरस्थं मुंजवल्कलकुशशणादीनामन्यतमेनावेष्टितांगमप्रकाशे देशे कोथयेत् । सम्यक् प्रकुथितं चोद्धृत्य ततो देहं सप्तरात्रादुशीरवालवेणुवल्कलकूर्चीनामन्यतमेन शनैः शनैरवघर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यंतरांगप्रत्यंगविशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा ॥ ५५ ॥

चीरकर देखनेके वास्ते ऐसे मुरदेको लेवे जिसके सब अंग पूरे हों और जो विषसे (जहरसे) न मरा हो तथा जो लंबी व्याधिसे पीडित न रहा हो तथा जो सौ बर्षका अर्थात् बहुत वृद्ध न हो ऐसे ताजा मुरदेको लेकर उसके आंतडे और विष्ठा मूत्रादि मल निकालकर उसके सब अंगोंको मूंज या वक्कल या कुशा या शण इनमेंसे किसीमें लपेटकर झरोखेदार संदूक या पिंजरेमें रखकर कम वहनेवाली नदीके गुप्त स्थानमें (जलमें) डालदे और फूलकर गलगला होने दे और जब ठीक २ गलकर फूल जावे तब उस मृत शरीरको जलसे निकालकर खस बाल वास या वक्कलकी कूची या फरचटसे धीरे धीरे त्वचादिको कुरेद २ (हटा २) कर सब बाहर भीतरके अंग प्रत्यंग हड्डी पँसली स्नायु शिरा आदि जैसेके तैसे अपने नेत्रोंसे देख लेवे ॥ ५५ ॥

भवतश्चात्र ॥ न शक्यश्चक्षुषा द्रष्टुं देहे सूक्ष्मतमो विभुः ॥ दृश्यते ज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेव च ॥ ५६ ॥ शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः ॥ दृष्टश्रुताभ्यां संदेहमवापोह्याचरेत् क्रियाः ॥ ५७ ॥

इति शारीरके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यहांपर दो श्लोक हैं कि इस शरीरमें व्याप्त परम सूक्ष्म जो जीवात्मा है वह नेत्रोंसे नहीं दीख सकता किंतु वह ज्ञानके नेत्रोंसे तथा तपके नेत्रोंसे दीखताहै॥ ५६॥ शरीरमें (चीरकर) और शास्त्रमें लिखे हुवे देखनेसे मनुष्य विशारद हो जाता है इससे शरीरमें देखने और शास्त्रमें सुननेसे संदेह निवर्त्त करके चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥

इतिश्रीसुश्रुतसंहितायाटीकायां शारीरके पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

१ क्षिप्र २ तल हृदय ३ कूर्च ४ कूर्च शिर ५ गुल्फ ६ इंद्रबस्ति ७ जानु ८ आणि ९ ऊर्वी १० लोहिताक्ष ११ विटप इनके स्थान और लक्षणादि अगाड़ी स्वयं ग्रंथकार वर्णन करेंगे इससे इनका यहां विशेष विवेचन नहीं किया ॥ ४ ॥

उदरोरसोस्तु गुदबस्तिनाभिहृदयस्तनरोहितापलापान्पपस्तम्भौ चेति ॥ ५ ॥ पृष्ठमर्माणि तु कटीकतरुणकुंदरनितंबपार्श्वसंधिबृहत्यंसफलाकान्यंसौ चेति ॥ ६ ॥ बाहुमर्माणि तु क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्चशिरोमणिबंधेन्द्रबस्तिकूर्पराण्यूर्वीलोहिताक्षाणि कक्षधरं चेति एतेनेतरो बाहुर्व्याख्यातः ॥ ७ ॥

पेट और छातीके मर्म (अर्थात् धडके मर्म) येहैं गुदा बास्ति नाभि हृदय स्तनमूल २ स्तनरोहित ५ अपलाप २ और अपस्तंभभी २ (ऐसे १२ हुवे)॥५॥ " पीठके मर्म " कटीक तरुण कुकुंदर नितंब पार्श्वसंधि बृहती अंस फलक और अंस ये सब और दोदो हैं ऐसे ये पीठके मर्म १४ हुवे॥६॥ " भुजाके मर्म " क्षिप्र तल हृदय कूर्च कूर्च शिर मणिबंध इंद्रबस्ति कूर्पर आणि ऊर्वी लोहिताक्ष और कक्षधर ये ११ भुजा(एक हाथ)के मर्म हैं इसी प्रकार दूसरे हाथमें ११ समझे ॥ ७ ॥

जत्रूर्द्ध्वं मर्माणि चतस्रो धमन्योऽष्टौ मातृका द्वे कृकाटिके द्वे विधुरे द्वौ फणौ द्वावपांगौ द्वावावर्त्तौ द्वाउत्क्षेपौ द्वौ शंखौ एका स्थपनी पंच सीमंताश्चत्वारि शृंगाटकानि एकोऽधिपतिरिति ॥ ८ ॥

" ग्रीवासे ऊपरके मर्म " चार धमनी आठ मात्रिका दो कृकाटिका दो विधुर दो फणा दोअपांग दोआवर्त्त दोउत्क्षेप दोशंख एक स्थपनी पांच सीमंत चार शृंगाटक और एक अधिपति ऐसे ये ग्रीवासे ऊपर ३७ मर्म हुये(इन सबका वर्णन अगाड़ी होगा)॥८॥

मांसादि भेदसे मर्म ।

तत्र तलहृदयेंद्रबस्तिगुदस्तनरोहितानि मांसमर्माणि ॥ ९ ॥ नीलधमनीमातृकाशृंगाटकापांगस्थपनीफणस्तनमूलापलापापस्तंभहृदयनाभिपार्श्वसंधिबृहतीलोहिताक्षोर्व्यः शिरामर्माणि ॥ १० ॥ आणिविटपकक्षधरकूर्चकूर्चशिरोबस्तिक्षिप्रांसविधुरोत्क्षेपाः स्नायुमर्माणि ॥ ११ ॥ कटीकतरुणनितंबांसफलकशंखास्त्वस्थिमर्माणि ॥ १२ ॥ जानुकूर्परसीमंताधिपतिगुल्फमणिबंधकुकुंदरावर्त्तकृकाटिकाश्चेति संधिमर्माणि ॥ १३ ॥

इन १०७ मर्मोंमेंसे तल हृदय इंद्रबस्ति गुदा स्तन रोहित ये मांस मर्म हैं (अर्थात् इतनी जगह मांस गत मर्म जानना) ॥ ९ ॥ नील धमनी मातृका शृंगाटक अपांग स्थपनी फण स्तनमूल अपलाप अपस्तंभ हृदय नाभि पार्श्वसंधि बृहती लोहिताक्ष और ऊर्वी ये शिरामर्म हैं॥१०॥आणि विटप कक्षधर कूर्च कूर्चशिर बस्ति क्षिप्र अंस विधुर उत्क्षेप ये स्नायु मर्म हैं ॥ ११ ॥ कटीक तरुण नितंब अंसफलक और शंख ये अस्थि मर्म हैं ॥ १२ ॥ जानु कूपर सीमंत अधिपति गुल्फ मणिबंध कुकुंदर आवर्त और कृकाटिका ये संधिमर्म हैं ॥ १३ ॥

पांच प्रकारके मर्म ।

तान्येतानि पंचविकल्पानि मर्माणि भवंति तद्यथा । सद्यः प्राणहराणि कालांतरप्राणहराणि विशल्यघ्नानि वैकल्यकराणि रुजाकराणीति।१४॥ तत्र सद्यःप्राणहराण्येकोनविंशतिः कालांतरप्राणहराणि त्रयस्त्रिंशत् त्रीणि विशल्यघ्नानि चतुश्चत्वारिंशद्वैकल्यकराणि अष्टौ रुजाकराणीति ॥

ये समस्त १०७ मर्म फिर पांच प्रकारके होतेहैं जैसे कोई तत्काल प्राण हरनेवाले (अर्थात् उनपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्युहो) और कोई कालांतरमें प्राण हरनेवाले होतेहैं कोई विशल्यघ्न अर्थात् शल्य निकालतेही प्राण हरनेवाले होतेहैं कोई विकलता करनेवाले होतेहैं और कोई अतिपीडा करनेवाले होते हैं ॥ १४ ॥ जिनमें १९ सद्यःप्राणहर हैं तथा ३३ कालांतरमें प्राणनाशक हैं तीन विशल्यघ्न हैं ४४ विकलता करनेवालेहैं और ८ अति क्लेशदायकहैं ॥ १५ ॥

सद्यःप्राणहर मर्म ।

भवंति चात्र॥शृंगाटकान्यधिपतिः शंखौ कंठः शिरो गुदम्॥हृदयं बस्तिर्नाभिश्च घ्नंति सद्यो हतानि तु ॥ १६ ॥

शृंगाटक ४ अधिपत्ति १ शंख २ कंठकी शिरा ८ गुदा १ हृदय १ बस्ति १ और नाभि १ ये १९ मर्म सद्यःप्राणनाशक हैं अर्थात् इनपर विशेष जरब आनेसे मनुष्य तत्काल मरजाताहै ॥ १६ ॥

कालांतर प्राणहर और विशल्यघ्न मर्म ।

वक्षोमर्माणि सीमंत तलक्षिप्रेंद्रबस्तयः ॥ कटीकतरुणे संधी पार्श्वजौ

(वा० १४) विशल्यघ्नानि इति विगतशल्यत्वेन मारकाणीत्यर्थः ॥

(श्लोक १६) कंठशिरा ८ मातृकाः ॥

बृहती च या ॥ १७ ॥ नितंबाविति चैतानि कालांतरहराणि तु ॥ उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नानि निर्दिशेत् ॥ १८ ॥

वक्षस्थलके मर्म ८ सीमंत ५ तलहृदय ४ क्षिप्र ४ इंद्रबस्ति ४ कटीकतरुण २ पार्श्वसंधि २ बृहती २ नितंब २ ऐसे ये ३३ मर्म कालांतरसे प्राणनाशक हैं ॥ १७ ॥ उत्क्षेप २ और स्थपनी १ ये ३ मर्म विशल्यघ्न हैं अर्थात इनमें जब तक शल्य रहे तब तक तौ मनुष्य जीवे और शल्य निकालतेही मरजावे ॥ १८ ॥

वैकल्यकर मर्म ।

लोहिताक्षाणि जानूर्वी कूर्चा विटपकूर्परा ॥ कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके ॥ १९ ॥ अंसांसफलकापांगा नीले मन्ये फणौ तथा ॥ वैकल्यकरणान्याहुरावर्त्तौ द्वौ तथैव च ॥ २० ॥

वैकल्यकर ४४ मर्म इस प्रकारहैं कि लोहिताक्ष ४ आणि ४ जानु २ ऊर्वी ४ कूर्च ४ विटप २ कूर्पर २ कुकुंदर २ कक्षधर २ विधुर २ कृकाटिका २ अंस २ अंसफलक २ अपांग २ नीलधमनी २ मन्या २ फण २ तथा आवर्त २ ऐसे ये ४४ विकलता कारक मर्महैं ॥ १९ ॥ २० ॥

रुजाकर मर्म ।

गुल्फौ द्वौ मणिबंधौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरांसि च ॥ रुजाकराणि जानीयादष्टावेतानि बुद्धिमान् ॥ २१ ॥ क्षिप्राणि विद्धमात्राणि घ्नंति कालांतरेण च २२

दो गुल्फ दो मणिबंध हाथ पांवोंके दो दो कूर्च शिर ऐसे ये ८ मर्म रुजाकर (अतिकष्ट दायक) हैं इन्हे बुद्धिमान् जान लेवे ॥ २१ ॥

तथा क्षिप्र विद्धमात्रही कालांतरमें प्राणनाशक होते हैं इससे प्रयोजन यह है कि अन्य मर्म तो छेदन होनेसे प्राणहर होते हैं और ये क्षिप्र विंधजाने मात्रसे कालांतरमें प्राणहर हो जाते हैं अथवा ये मर्म जो सद्यःप्राणहर हैं वे थोडेसे विद्ध मात्र हों तो कालांतरसे मृत्युकारक होते हैं ॥ २२ ॥

मर्मस्थानोंमें प्राणोंकी स्थिति ।

मर्माणि नाम मांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिसंनिपातास्तेषु स्वभावतएव विशेषेण प्राणांस्तिष्ठंति तस्मान्मर्मस्वभिहतास्तांस्तान् भावानापद्यन्ते ॥ २३ ॥

(श्लो० १७) वक्षोमर्माणीति स्तनमूले २ स्तनरोहिते २ अपलापौ २ अपस्तंभौ २ इत्यष्टौ वक्षोमर्माणीति ॥

(वा० २३) संनिपातः संश्लेषः अत्यंतमिश्रीभाव इति । प्राणाः अग्न्यादयः । तांस्तानिति इंद्रियार्थेष्वसंप्राप्तिः मनो बुद्धिविपर्यय इत्यादिकानत्रैवोक्तान् अन्येतु भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोह इत्यादिकान् सूत्रस्थानोक्तानाहुः (इति डल्हणः) केचित्तु तांस्तान् भावानिति सद्यः प्राणहरत्व कालान्तरप्राणहरत्व विशल्यघ्नत्ववैकल्यकरत्वरुजाकरत्वान् भावानापद्यते इति मन्यंते ॥

मर्म स्थानोंमें प्रायः मांस शिरा स्नायु अस्थि और संधि इनका संनिपात (मेल) होता है तौ उस जगह स्वभावहीसे विशेष करके प्राण रहते हैं इसी हेतुसे मर्ममें चोट लगनेसे उनही उपरोक्त (सद्यःप्राण हरत्व आदि)भावोंको मनुष्य प्राप्त होते हैं (अथवा मोह प्रलापादिको प्राप्त होता है) ॥ २३ ॥

तत्र सद्यःप्राणहराण्याग्नेयान्यग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्षपयंति॥ २४ ॥कालांतरप्राणहराणि सौम्याग्नेयान्यग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्रमेण च सोमगुणेषु कालांतरेण क्षपयंति ॥ २५ ॥ विशल्यप्राणहराणि वायव्यानि शल्यमुखनिरुद्धो यावदंतर्वायुस्तिष्ठति तावज्जीवत्युद्धृतमात्रे तु शल्ये मर्मस्थानाश्रितो वायुर्निष्क्रामति तस्मात्सशल्यो जीवत्युद्धृतशल्यो म्रियते॥ २६ ॥ वैकल्यकराणि सौम्यानि सोमो हि स्थिरत्वाच्छैत्याच्च प्राणावलंबनं करोति ॥ २७ ॥ रुजाकराण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठानि विशेषतश्च तौ रुजाकरौ पांचभौतिकीं चं रुजामाहुरेके ॥ २८ ॥

उनमेंसे सद्यः प्राणहर मर्म अग्नि गुण प्रधान होते हैं और अग्नि तीक्ष्ण है इससे शीघ्र नष्ट होता है उसके क्षीण होनेसे शीघ्र मृत्यु कारक होते हैं ॥ २४ ॥ कालांतरमें प्राण हरनेवाले मर्ममें सोम और अग्नि दोनो प्रधान होते हैं यहां अग्निगुण तौ तत्काल नष्ट होही जाता है परंच सोमगुण क्रमसे धीरे धीरे नष्ट होता है इससे सोमगुण नष्ट होनेपर कालांतरमें मृत्यु कारक होते हैं ॥ २५ ॥ विशल्यघ्न मर्म वायु गुण प्रधान होते हैं उनमें शल्यके मुखसे जबतक भीतरका वायु रुका रहता है तब मनुष्य जीवता है और शल्य निकलतेही उस मर्म स्थानका वायु निकल जाता है इस कारण शल्ययुक्त जबतक रहै तबतक जीवता है शल्य निकलतेही मरजाता है ॥ २६ ॥ वैकल्य कारक मर्म सोमगुण प्रधान होते हैं और सोम स्थिर और शीतल है इससे प्राणोंका अवलंबन करता है इसीसे (मूर्च्छादि कारक होते हैं) मृत्यु कारक नहीं होते) ॥ २७ ॥ रुजाकर मर्म अग्नि वायु गुण प्रधान होते हैं और ये दोनो विशेष करके पीडा कारक होते हैं इसीसे इनमें अति पीडा होती है और पीडाको कई पंचभूतात्मक कहते हैं ॥ २८ ॥

केचिदाहुर्मांसादीनां पंचानामपि समस्तानां विवृद्धानां च समवायात्सद्यःप्राणहराणि ।एकहीनानामल्पानां वा कालांतरप्राणहराणि।द्विहीनानां विशल्यप्राणहराणि । त्रिहीनानां वैकल्यकराणि । एकस्मिन्नेव रुजाकराणीति।यतश्चैवमतोऽस्थिमर्मस्वप्यभिहतेषु शोणितागमनं भवति॥ २९॥

कई आचार्य ऐसा कहतेहैं कि मांसादिक पांचों सब (मांस शिरा स्नायु अस्थि और संधि) इनकी वृद्धि होकर (मुख्यतासे जहांपर समवाय संबध हो वे मर्म तत्काल प्राणहरहैं । और जहांपर एक नहीं है या कम हैं वे कालांतरसे प्राण नाशकहैं । और जहां दोका अभाव है वे विशल्यघ्न हैं । तथा जहांपर तीनोका अभावहै (केवल दोहीहैं) वे विकलता कारक हैं । और जहां (चारोंका अभाव है) एकही हैं वे रुजाकर हैं । इन पांचवोंका कहींपर स्थूल रूपमें समवाय है और कहींपर सूक्ष्म रूपसे क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आ॰ ॰में रुधिर नहीं दीखताहै तौभी छेदन करनेसे रुधिरका आगमन होताहै इससे सबका सबमें संयोग जानना चाहिये (और जहांपर सबकी उत्कृष्टताहै वह सद्यःमारक तथा जहां एकहीन अर्थात् एककी अनुत्कृष्टता और चारोंकी उत्कृष्टताहो वह कालांतर मारक है इत्यादि) (स्तनमूल अपलाप अपस्तंभ और सीमंत आदि मर्म मांसहीन हैं स्तन रोहित तल हृदय क्षिप्र आदि अस्थिहीन हैं उत्क्षेप मांस और संधिहीन हैं स्थपनी मांस शिरा स्नायुहीन हैं तथा गुल्फ और मणि बंध ये मांस शिरा स्नायु और अस्थि-हीनहैं इत्यादि और भीजानो) ॥ २९ ॥

चतुर्विधा यास्तु शिराःशरीरे प्रायेण ता मर्मसु संनिविष्टाः॥स्नाय्वस्थिमांसानि तथैव संधीन् संतर्प्य देहं प्रतिपालयंति॥ ३० ॥ततः क्षते मर्मणि ताः प्रवृद्धः समंततो वायुरभिस्तृणोति ॥विवर्द्धमानस्तु स मातरिश्वा रुजः सुतीव्राः प्रतनोति काये ॥ ३१ ॥ रुजाभिभूतं तु पुनः शरीरं प्रलीयते नश्यति चास्य संज्ञा॥अतो हि शल्यं विनिर्हर्तुमिच्छन्मर्माणि यत्नेन परीक्ष्य कर्षेत् ॥ ३२ ॥ एतेन शेषं व्याख्यातम् ॥ ३३ ॥

चारों प्रकारकी (वात पित्त कफ रक्तकी बहनेवाली) शिरा प्रायः मर्मस्थानें में स्थित होतीहैं और स्नायु अस्थि और संधियोंको तृप्तकर शरीरको पालतीहैं॥ ३०॥ इसी कारण मर्ममें चोट लगनेसे आसपासका वायु बढकर उन शिराओंमें व्याप्त हो जाता है और फिर वह बढाहुवा वायु (शिराओं द्वारा शरीरमें फैलकर) देहमें तीव्र पीडा करता है ॥ ३१ ॥ और फिर जब शरीरमें अत्यंत पीडा होती है तौ या तो संज्ञानाश (बेहोशी) हो जाती है तथा मृत्यु हो जाती है इस हेतु शल्य निकालने वाले (चीर फाड करने वाले) वैद्यको चाहिये कि यत्न पूर्वक मर्मोंकी परीक्षा करके शल्य निकाले ॥ ३२ ॥ तिस प्रकार वायु के बहनेवाली शिराओंके छेदनसे पीडा और मृत्यु वर्णन करी इसी प्रकार पित्तके बहनेवाली शिरामें छेदन होनेसे शरीरमें दाहादि बढकर और कफवहा शिरा छेदनसे स्रोतोंका निरोधादि होकर

विकलता और मृत्यु हो जाती है इसी प्रकार रक्तवहा शिरासे अतिरक्तागम होकर संज्ञानाशादि हो जाता है ॥ ३३ ॥

मर्मोंके निकट वेधनका प्रभाव ।

तत्र सद्यः प्राणहरमंते विद्धं कालांतरेण मारयति कालांतरप्राणहरमंते विद्धं वैकल्यमापादयति विशल्यप्राणहरमंते विद्धं कालांतरेण क्लेशयति रुजां च करोति रुजाकरमतीव्रवेदनं भवति ॥ ३४ ॥

इनमेंसे सद्यः प्राणहर मर्मके अंतप्रदेश (निकट) क्षत होवें तौ तत्काल मृत्यु न हो कालांतरमें हो और कालांतरमारक मर्मके समीप विद्ध हो (चोट लगे) तौ विकलताकारक हो और विशल्यघ्न मर्मके निकट वेध हो तौ कालांतरमें क्लेश करे अथवा उसी समय पीडा करे और रुजाकर मर्मके समीप विंधे तौ अल्प पीडा होवे ॥ ३४ ॥

तत्र सद्यःप्राणहराणि सप्तरात्राभ्यंतरान्मारयंति कालांतरप्राणहराणि पक्षान्मासाद्वा तेष्वपि तु क्षिप्राणि कदाचिदाशु मारयंति विशल्यप्राणहराणि वैकल्यकराणि च कदाचिदत्यभिहतानि मारयंति ॥ ३५ ॥

इनमें सद्यः प्राणहर सात दिनके भीतर मृत्यु कारक होते हैं और कालांतर मारक पक्षभरमें या महीनेमें (या इससे भी अधिक समयमें) मृत्यु कारक होते हैं उनमें भी क्षिप्र मर्म कभी कभी तत्काल मृत्यु करते हैं और विशल्यघ्न और वैकल्यकारक मर्मोंमें कभी २ अधिक चोट लगे तौ मृत्युकारक हो जाते हैं ॥ ३५॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रत्येकशो मर्मस्थानान्यनु व्याख्यास्यामः ॥ ३६ ॥

इससे अगाडी प्रत्येक मर्मका स्थान और उसके विवेचनका व्याख्यान करतेहैं ॥ ३६ ॥

तत्र पादांगुष्ठांगुल्योर्मध्ये क्षिप्रंनाम मर्म तत्र विद्धस्याक्षेपकेण मरणम् ॥ ३७॥ मध्यमांगुलीमनु पूर्वेण मध्ये पादतलस्य तलहृदयं नाम तत्रापि रुजाभिमरणम् ॥ ३८॥ क्षिप्रस्योपरिष्टादुभयतः कूर्चोनाम तत्र पादस्य भ्रमणवेपने भवतः ॥ ३९ ॥ गुल्फसंधेरध उभयतः कूर्चशिरो नाम तत्र रुजाशोफौ ॥ ४० ॥

(वा० ३४) अंतेविद्धं समीपेविद्धम् । रुजाकरमतीव्रवेदन भवती यथापि अंतेविद्धंइत्यस्याध्याहारः ॥

(वा० ३७) स्नायुमर्मेदमर्द्धांगुलं कालांतरप्राणहरम् ॥

(वा० ३८) मध्यमांगुलिमनुलक्ष्यीकृत्य मांसमर्मेदमर्द्धांगुलं कालांतरघ्नम् ॥

(वा० ३९) क्षिप्रस्योपरिष्टादिति द्व्यंगुले स्नायुमर्मेदं चतुरंगुलं वैकल्यकरम् ॥

(वा० ४०) कूर्चशिरोपि स्नायुमर्म एकांगुलं वैकल्यकरम् ॥

इनमें पांवके अँगूठे और अँगुलीके बीचमें "क्षिप्र"नामक मर्म स्थान है वहां विंधनेसे आक्षेपक वात व्याधि होकर (कालांतरमें) मृत्यु होतीहै ॥ ३७ ॥ मध्यमा अँगुलीकी संधिमें पांवके तलवेके बीचमें " तलहृदय " नाम मर्म है यहां विंधनेसे पीडा होकर मृत्यु होतीहै ॥ ३८ ॥ क्षिप्रसे ऊपर पंजेकी तरफ दोनों ओर "कूर्च" नाम मर्म है वहांके वेधसे पांव भ्रमण और कंपन होताहै ॥ ३९ ॥ गुल्फ (टकने) की संधिसे नीचे दोनों तरफ " कूर्चशिर " नाम मर्म है यहां विंधनेसे पीडा और सोजन होताहै ॥ ४० ॥

पादजंघयोः संधाने गुल्फो नाम तत्र रुजः स्तब्धपादता खंजता वा॥४१॥ पार्ष्णि प्रति जंघामध्ये इंद्रबस्तिर्नाम तत्र शोणितक्षये मरणम् ॥४२॥ जंघोर्वोः संधाने जानु नाम तत्र खंजता ॥ ४३ ॥ जानुन ऊर्द्ध्वमुभयत स्त्र्यंगुलमाणिर्नाम तत्र शोफाभिवृद्धिः स्तब्धसक्थिता च ॥ ४४ ॥

पांव और पिंडलियोंकी संधिमें "गुल्फ" नामक मर्महै यहां चोट लगनेसे पीडा पांवका जकड़ जाना और लँगडापन होताहै ॥ ४१ ॥ एडीकी संधिमें जंघाके मध्यमें "इंद्रबस्ति" नाम मर्महै वहां विंधनेसे रक्तक्षय होकर मृत्यु हो॥४२॥पिंडली और साथलकी संधिमें "जानु नाम" (घुटना) मर्महै वहां चोट लगे तो लंगडापन होताहै ॥४३॥ और घुटनेसे ऊपर दोनों तरफ तीन अंगुल "मणि" नाम मर्महै यहां विंधनेसे शोथकी वृद्धि और साथल अकड जातीहै ॥ ४४ ॥

ऊरुमध्ये ऊर्वी नाम तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः ॥ ४५ ॥ उर्व्या ऊर्द्ध्वमधो वंक्षणसंधेरूरुमूले लोहिताक्षं नाम तत्र लोहितक्षयेण पक्षाघातः ॥ ४६ ॥ वंक्षणवृषणयोरंतरे विटपं नाम तत्र षांड्यमल्पशुक्रता वा भवति ॥ ४७ ॥ एवमेतान्येकादश सक्थिमर्माणि व्याख्यातानि एतेन तमसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ ४८ ॥

(वा० ४१) गुल्फः संधिमर्म द्व्यंगुलं वैकल्यकरम् ॥

(वा० ४२) इंद्रबस्तिः मांसमर्मेदमर्धांगुलं कालांतरप्राणहरं तत् पार्ष्णिप्रति त्रयोदशांगुले स्थितं भोजस्तु त्र्यंगुलमाह मणयोऽपि तन्मतेन त्र्यंगुलमेव व्याख्याति ॥

(वा० ४३) जानुसंधिमर्मेदं वैकल्यकरम् ॥

(वा० ४४) आणिरस्नायुमर्म वैकल्यकरमर्द्धांगुलम् ॥

(वा० ४५) ऊर्वी नाम शिरामर्म अर्द्धांगुलं वैकल्यकरम् ॥

(वा० ४६) लोहिताक्षमपि शिरामर्म वैकल्यकरमर्द्धांगुलम् ॥

(वा० ४७) विटपं नाम स्नायुमर्म वैकल्यकरमेकांगुलप्रमाणम् ॥

सायलमें "ऊर्वी" नाम मर्मस्थान है वहां क्षत होनेसे रुधिर क्षय होकर सायल सूख जाती है ॥४५॥ ऊरुसे ऊपर नीचे वंक्षण संधिसे सायलके मूलमें "लोहिताक्ष" नाम मर्म है वहां क्षत होकर रुधिर निकलनेसे पक्षाघात होजाता है ॥ ४६ ॥ और वंक्षण (नले) और वृषणोंके बीचमें "विटप" नाम मर्म है यहां चोट लगनेसे नपुंसकता अथवा शुक्रकी अल्पता होती है ॥ ४७ ॥ इसप्रकार एक पांवके ११ मर्म वर्णन किये हैं इसी भांति दूसरे पांव और दोनों हाथों का व्याख्यान समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

विशेषतस्तु यानि सक्थि गुल्फजानुविटपानि तानि बाहौ मणिबंधकूर्पर-कक्षधराणि यथा वंक्षणवृषणयोरंतरे विटपमेवं वक्षः कक्षयोर्मध्ये कक्षधरं तस्मिन् विद्धे तएवोपद्रवाः विशेषस्तु मणिबंधे कुंठता कूर्पराख्ये कुणिः कक्षधरे पक्षाघातः ॥ ४९ ॥ एवमेतानि चतुश्चत्वारिंशच्छाखासु मर्माणि व्याख्यातानि ॥ ५० ॥

हाथ पांवोंके मर्मोंमें विशेष इतना है कि जैसे पांवमें गुल्फ (टकने) जानु (घुटने) और विटप (नलों और वृषणोंके मध्य) हैं वैसे हाथोंमें टकनोंकी जगह पँहुचे और घुटनोंकी जगह कूर्पर (कोहनी) और विटपकी जगह कक्षधर जानना जैसे नलों और अंडकोशके बीचमें विटप है इसी भांति वक्षस्थल और कांखके मध्यमें कक्षधर होते हैं और उनके विंधनेसे वेही पांवोंकेसे उपद्रव होते हैं इतना विशेष कि मणिबंध (पहुंचा) विंधनेसे हाथ निकम्मा हो जावे और कोहनीपर चोट लगनेसे हाथका न मुडना तथा कक्षधरपर चोट लगे तो पक्षाघात हो जावे ॥ ४९ ॥ ऐसे ये शाखा अर्थात् हाथ पांवोंमें सब ४४ मर्म वर्णन किये गये हैं ॥ ५० ॥

अत ऊर्द्धमुदरोरसोर्मर्मस्थानान्यनु व्याख्यास्यामः ॥ ५१ ॥ तत्र वातवर्चोनिरसनं स्थूलांत्रप्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म तत्र सद्योमरणम् ॥ ५२ ॥ अल्पमांसशोणितोऽभ्यंतरतः कट्यां मूत्राशयो बस्तिर्नाम तत्रापि सद्योमरणमश्मरीव्रणादृते तत्राप्युभयतो भिन्ने न जीवत्येकतो भिन्ने मूत्रस्रावी व्रणो भवति स तु यत्नेनोपक्रांतो रोहति ॥ ५३ ॥

इसके अगाड़ी अब पेट और छातीके मर्मका व्याख्यान करतेहैं ॥ ५१ ॥ तहां आधोवायु और विष्ठाके निकलनेका द्वार बडे आंतडेसे मिला हुवा "गुदा नाम" मर्मस्थानहै वहां क्षत होनेसे सद्यः मृत्यु होवे ॥ ५२ ॥ जिसमें मांस और रक्त अल्पहै

(वा० ५१) गुदं नाम चतुरंगुलं मांसमर्मेदम् ॥
(वा० ५३) बस्तिर्नाम स्नायुमर्मचतुरंगुलं सद्यःप्राणहरम् ॥

और कमरके भीतर मूत्रका स्थान ऐसा "बस्ति" नाम मर्महै वहां विंधनेसे सद्यः मृत्यु होतीहै इसमें पथरीके एक घावसे मृत्यु नहीं होती यदि दो घाव होजावें तौ मृत्यु हो और एक छिद्रसे मूत्र बहनेवाला घाव होजाताहै वह यत्नसे चिकित्सा किया हुवा भरभी जाताहै ॥ ५३ ॥

पक्वामाशययोर्मध्ये शिराप्रभवा नाभिर्नाम तत्रापि सद्य एव मरणम्॥५४॥ स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरस्यामाशयद्वारं सत्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम तत्र सद्य एव मरणम् ॥ ५५ ॥ स्तनयोरधस्ताद्द्व्यंगुलमुभयतः स्तनमूले नाम मर्मणी तत्र कफपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यांम्रियते॥५६॥

पक्वाशय और आमाशयके बीचमें शिराओंसे उत्पन्न ऐसा नाभि " नाम " मर्म स्थान है यहां छेदन हो तौ सद्यःही मृत्यु होवे॥५४ ॥ दोनों चूंचियोंके बीच छातीमें आमाशयके ऊपरके द्वारके समीप सत्व रज और तमो गुण इनका मुख्यस्थान"हृदय" नाम मर्मस्थान है यहां क्षत होनेसे तत्काल मृत्यु होतीहै ॥ ५५ ॥ दोनों चूचियोंके नीचे दो अंगुल दोनों तरफ दो " स्तनमूल " नाम मर्म हैं यहां क्षत हो तौ कफसे कोष्ठ पूर्ण होकर खाँसी श्वाससे मृत्यु होवे ॥ ५६ ॥

स्तनचूचुकयोरूर्द्ध्वं द्व्यंगुलमुभयतः स्तनरोहितो नाम तत्र शोणितपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यांम्रियते ॥ ५७ ॥ अंसकूटयोरधस्तात् पार्श्वोपरिभागयोरपलापौ नाम तत्र रक्तेन पूयभावंगतेन मरणम् ॥ ५८ ॥ उभयत्रोरसो नाड्यौ वातवहे अपस्तंभौ नाम तत्र वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च मरणम् ॥ ५९ ॥ एवमेतान्युदरोरसोर्द्वादश मर्माणि व्याख्यातानि ॥ ६० ॥

स्तन (चूचियां) के ऊपर दो दो अंगुल दोनों तरफ " स्तन रोहित " नाम २ मर्म हैं वहां विंध जानेसे रुधिरसे कोष्ठ परिपूर्ण कर खाँसी श्वाससे मृत्यु होवे ॥ ॥ ५७ ॥ अंसकूट (कंधा) से नीचे पँसवाडोंके ऊपर "अपलाप" नाम दोनों तरफ दो मर्म स्थान हैं यहां विंधनेसे रुधिरका पीब होकर मृत्यु होवे ॥ ५८ ॥ उर हृदय

(ना० ५४) नाभिर्नाम शिरामर्मचतुरंगुलप्रमाणम् ॥
(ना० ५५) हृदयं चतुरंगुलं कमलमुकुलसदृशं शिरामर्मेदम् ॥
(ना० ५६) स्तनमूले द्व्यंगुले शिरामर्मणी कालांतरप्राणहरे ॥
(ना० ५७) स्तनरोहितौ नाम मांसमर्मार्द्धांगुलप्रमाणं कालांतरप्राणहरम् ॥
(ना० ५८) अपलापौ नाम शिरामर्मणी चार्द्धांगुले कालांतरप्राणहरे ॥
(ना० ५९) अपस्तंभौ शिरामर्मणी कालांतरप्राणहरौ अर्द्धांगुलौ ॥

के दोनों तरफ वायुके बहनेवाली दो नाडियां अपस्तंभ नामक २ मर्म हैं यहां विंधनेसे कोष्ठमें वायु भरजावे और खाँसी श्वाससे मृत्यु हो ॥ ५९ ॥ ऐसे ये उदर और छातीके १२ मर्म कहे ॥ ६० ॥

पीठके मर्मस्थान।

अत ऊर्द्ध्वं पृष्ठमर्माण्यनु व्याख्यास्यामः ॥ ६१ ॥ तत्र पृष्ठवंशमुभयतः प्रति श्रोणीकांडमस्थिनी कटीकतरुणे नाम मर्मणी तत्र शोणितक्षयात् पांडुविवर्णो हीनरूपश्च म्रियते॥६२॥पार्श्वजघनबहिर्भागे पृष्ठवंशमुभयतो नातिनिम्ने कुकुंदरे नाम मर्मणी तत्र स्पर्शाज्ञानमधःकाये चेष्टोपघातश्च६३

इससे अगाडी पृष्ठके (पीठके) मर्मोंका वर्णन करते हैं ॥ ६१ ॥ जिनमें पीठके बांसके दोनों तरफ कमरके दोनों हाड कटीक तरुण नाम मर्म हैं यहांपर शस्त्र लगे तो रुधिरके क्षयसे पांडुरोगी और विवर्ण और कुरूप होकर मृत्यु हो पँसवाडों और साथलोंसे बाहरको (अर्थात् पँसवाडोंके पीछे को और साथलोंके ऊपरको) पीठके बांससे दोनों तरफ बहुत नीचे नहीं (कुछ २ नीचे) कुकुंदर नाम मर्म है वहां चोट लगे तौ शरीर सुन्न पड़ जावे और नीचेके अंगोंकी चेष्टा नाश हो जाय ॥ ६३ ॥

श्रोणीकांडयोरुपर्याशयाच्छादनौ पार्श्वान्तरप्रतिवद्धौ नितंबौ नाम तत्राधः कायशोषो दौर्बल्याच्च मरणम् ॥ ६४ ॥ अधः पार्श्वांतरप्रतिवद्धौ जघनपार्श्वयोस्तिर्यगूर्द्ध्वं च जघनात् पार्श्वसंधी नाम तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया म्रियते ॥ ६५ ॥ स्तनमूलादुभयतः पृष्ठवंशस्य बृहती नाम तत्र शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते ॥ ६६ ॥

श्रोणीकांड (पूर्वोक्त कटी तरुण) से ऊपरके आशय (स्थान) के आच्छादन करनेवाले पँसवाडोंसे बंधे हुवे ऐसे नितंब नामक २ मर्म स्थान हैं यहां चोट लगनेसे

(वा० ६२) कटीकतरुणे अस्थिमर्मणी अर्द्धांगुले कालांतरप्राणहरे । प्रतिश्रोणीकांडमित्यत्र प्रतिश्रोणिकर्णौ इति वा पठंति तत्र श्रोणीकर्णौ लक्ष्यीकृत्य त्रिकसंनिधानौ श्रोण्यामुपरीति (डल्हनः)

(वा० ६३) कुकुंदरे संधिमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च । पार्श्वयोरित्यत्र वामदक्षिणकुक्षयोः जघनबहिर्भागे इति कथ्याः पश्चाद्भागे गयी तु " पार्श्वजघनभागे " इति पठित्वा पार्श्वयोर्जघनभागे अधोभागे त्रिक संधौ कुकुंदरे मर्मणी भवतः इति नातिनिम्ने ईषन्निम्ने ॥

(वा० ६४) नितंबौ अर्द्धांगुलप्रमाणास्थिमर्मणी । कांडयोरित्यत्र श्रोणीकर्णयोरिति वा पाठः । श्रोणीकर्णौ त्रिकसंनिधानौ नाभ्यामुपरि । आशयाच्छादनाविति आमाशयाच्छादनौ इति डल्हनः तत्र नितंबयोरामाशयाच्छादनाभावात् ॥

(वा० ६५) पार्श्वसंधी अर्द्धांगुलशिरामर्मणी कालांतरप्राणहरौ । तिर्यगूर्द्ध्वमिति उपरि उपरिभागे क्रम क्रमवृद्धे संधेरपि क्रमवृद्धत्वम् (नि. सं.) ॥

(वा० ६६) बृहती शिरामर्माद्धांगुले कालांतरप्राणहरे च ॥

नीचेके शरीर सूख जाते हैं फिर दुबलापनसे मृत्यु होती है ॥ ६४ ॥ नीचेके भागमें पँसवाडेसे बंधे हुवे साथल और पँसलियोंसे तिरछे ऊपरको साथलोंसे ऊपर पार्श्वसंधि नामक मर्म हैं यहां क्षत हो तौ कोठा रुधिरसे भर मृत्यु हो ॥ ६५ ॥ स्तनमूलोंसे दोनों तरफ पीठके वांसके समीपतक " बृहती " नाम मर्म हैं यहां आघात हो तौ रुधिरकी अतिप्रवृत्ति निमित्तक उपद्रवोंसे मृत्यु हो ॥ ६६ ॥

(वक्तव्य) निबंध संग्रहमें डल्हन मिश्रने यहां आशय शब्दसे आमाशय ग्रहण किया और तिसका आश्रय लेकर इस समयके अनुवादकोंनेभी वैसाही लिख मारा।भला विचारिये तौ आमाशयका आच्छादन कहां और नितंब कहां देखो वाचस्पत्य नितंबका अर्थ कटिका अधोभाग है और आमाशय नाभि और स्तनोंके बीच इससे हम यहां आशय शब्दसे आमाशय क्योंकर मान लें) ॥

पृष्ठोपरिपृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसंबद्धे अंसफलके नाम तत्र बाह्वोः स्वापः शोषो वा ॥६७॥ बाहुमूर्द्धग्रीवामध्येंसपीठस्कंधनिबंधनावंसौ नाम तत्र स्तब्धबाहुता॥६८॥एव मेतानि चतुर्दश पृष्ठमर्माणि व्याख्यातानि ६९

पीठके ऊपरके भागमें पीठ वांसके दोनों तरफ त्रिक स्थानसे बंधे हुवे अंस फलक नाम मर्म हैं वहां चोट लगनेसे हाथ सुन्न पड़ जाते हैं अथवा सूख जाते हैं (यहां पृष्ठोपरि शब्दसे पृष्ठका ऊपरला ग्रीवाके त्रिकके समीपका भाग सूचनार्थ दिया है) ॥ ६७ ॥ बाहुवोंके ऊपर ग्रीवाके मध्य खवे और खौंदेके बंधन करनेवाले ऐसे अंस नामक मर्म हैं यहां चोट लगनेसे हाथ स्तंभित रह जाते हैं ॥ ६८ ॥ ऐसे ये १४ मर्मस्थान पीठके वर्णन किये हैं ॥ ६९ ॥

अत ऊर्द्ध्वं जत्रुगतानि व्याख्यास्यामः ॥ ७० ॥ तत्र कंठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमन्यो द्वे नीले द्वे च मन्ये व्यत्यास्येन तत्र मूकता स्वरवैकृतमरसग्राहिता च ॥ ७१ ॥ ग्रीवायामुभयतश्चतस्रः शिरा मातृकास्तत्र सद्योमरणम् ॥ ७२ ॥ शिरोग्रीवयोः संधाने कृकाटिके नाम तत्र चलमूर्द्धता ॥ ७३ ॥ कर्णपृष्ठतोऽधःसंश्रिते विधुरे नाम तत्र बाधिर्यम् ॥ ७४ ॥

(व्या० ६७) अंसफलके अस्थिमर्मणी चार्द्धांगुले वैकल्यकरे ॥

(व्या० ६८) अंसौ स्नायुमर्माद्धांगुलौ वैकल्यकराविति ॥

(व्या० ७१) व्यत्यास्येन वैपरीत्येन । नीले मन्ये द्वे द्वे एवं चत्वारि मर्माणि चतुरंगुलप्रमाणानि वैकल्यकराणि शिरामर्माणि ॥

(व्याख्या ७२) मातृकाः शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्यःप्राणहराणि ॥

(व्याख्या ७३) कृकाटिके संधिमर्मणी अर्द्धांगुलवैकल्यकरे च ॥

(व्या० ७४) विधुरे स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले वैकल्यकरे च ॥

इससे अगाड़ी जत्रु (कंठके जोतोंसे ऊपर) के मर्मोका व्याख्यान करतेहैं॥ ७०॥ इनमेंसे कंठ नाडीके दोनों तरफ चार धमनी हैं उनमेंसे दो नीला और दो मन्या हैं (कंठ नाडीके पास नीला हैं और उससे पिछाड़ी मन्या हैं) इनमें आघात होनेसे गूंगापना स्वरविकार और रसका अज्ञान होता है ॥ ७१ ॥ ग्रीवाके दोनो तरफ चार चार शिरा मातृका नामक मर्म हैं उनमें शस्त्र लगनेसे तत्काल मृत्यु होवे॥ ७२॥ शिर और ग्रीवाकी संधिमें कृकाटिका नामक २ मर्म स्थान हैं उनमें चोट लगनेसे शिर काँपने लग जाताहै॥ ७३॥ कानके पीछे नीचेको विधुरनाम २ मर्म हैं उनमें चोट लगनेसे बहरापन होजाताहै ॥ ७४ ॥

घ्राणमार्गमुभयतः स्रोतोमार्गप्रतिबद्धेऽभ्यंतरतः फणो नाम तत्र गंधाज्ञानम् ॥ ७५ ॥ भ्रूपुच्छांतयोरधोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपांगौ नाम तत्रान्ध्यंदृष्टयुपघातो वा ॥ ७६ ॥ भ्रुवोरुपरि निम्नयोरावर्त्तौ नाम तत्रान्ध्यं दृष्टयुपघातश्च ॥ ७७ ॥ भ्रुवोः पुच्छांतयोरुपरि कर्णललाटयोर्मध्ये शंखौ नाम तत्र सद्योमरणम् ॥ ७८ ॥

नाकके मार्गमें दोनों तरफ छिद्रमार्गसे प्रतिबद्ध भीतरको फण नाम २ मर्म हैं उनपर आघात पहुँचने या विकारहोनेसे गंधका ज्ञान नष्ट होजाता है ॥ ७५ ॥ भ्रुकुटीकी पुच्छसे नीचेको नेत्रोंसे बाहरकी तरफ अपांग नामक दो मर्म स्थान हैं इनमें आघात होनेसे अंधापन अथवा दृष्टिका नाश होजाता है ॥ ७६ ॥ भ्रुकुटीसे ऊपर नीचे आवर्त नामक दो मर्म हैं यहां भी आघात होनेसे अंधापन और दृष्टिका नाश होजाता है ॥ ७७ ॥ भ्रुकुटीकी पुच्छके अंतमें ऊपरको कान और शिरके बीचमें शंख नामक दो (कनपटी) मर्म स्थान हैं यहां आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होजाती है ॥ ७८ ॥

शंखयोरुपरि केशांत उत्क्षेपौ नाम तत्र सशल्यो जीवति पाकात् पतितशल्यो वा नोद्धृतशल्यः ॥ ७९ ॥ भ्रुवोर्मध्ये स्थपनी नाम तत्रोत्क्षेपवत् ॥ ८० ॥ पंच संधयः शिरसि विभक्ताः सीमंता

(वा० ७५) फणे नाम अर्द्धांगुलशिरामर्मणी वैकल्यकरे च ॥
(वा० ७६) अपांगौ शिरामर्मार्द्धांगुलप्रमाणौ वैकल्यकरौ ॥
(वा० ७७) आवर्तौ संधिमर्मार्द्धांगुलौ वैकल्यकरौ ॥
(वा० ७८) शंखौ चास्थिमर्मार्द्धांगुलौ सद्यः प्राणहरौ ॥
(वा० ७९) उत्क्षेपौ स्नायुमर्मणी अर्द्धांगुले विशल्यघ्ने ॥
(वा० ८०) स्थपनी नाम शिरामर्मैरमर्द्धांगुलं विशल्यघ्नम् ॥

नाम तत्रोन्मादभयचित्तनाशैर्मरणम् ॥ ८१ ॥ घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वा संतर्पणीनां शिराणां मध्ये शिरा सन्निपातः शृंगाटकानि तानि चत्वारि मर्माणि तत्रापि सद्यो मरणम् ॥ ८२ ॥ मस्तकाभ्यंतरोपरिष्टात् शिरा- संधिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्यो मरणम् ॥ ८३ ॥ एवमेतानि सप्तत्रिंशदूर्द्ध्वजत्रुगतानि मर्माणि व्याख्यातानि ॥ ८४ ॥

शंखों (कनपटियों) के ऊपर बालोंकी सीमा उत्क्षेपक नाम मर्म स्थान दो हैं इनमें शल्य (तीर आदि) लगे तो जबतक उनमें वह शल्य घुसा रहे तबतक मनुष्य जीवे अथवा स्वयं पककर वह शल्य आपही गिरजावे तौ भी जीवे परंतु वह शल्य खींचकर निकाला जावे तो उसी समय मृत्यु होवे ॥ ७९ ॥ दोनों भृकुटि- योंके "मध्यमें" स्थपनी नामक मर्म स्थान है इसे भी उत्क्षेपकी भांतिही जाना चाहिये ॥ ८० ॥ शिरमें पांच संधिहैं जुदी जुदी हैं वे "सीमंत" नामक मर्महैं इनमें आघात होनेसे उन्मादभय और चित्तका नाश होकर मृत्यु होवे ॥ ८१ ॥ नासिका कर्ण नेत्र और जिह्वा इनकी तृप्ति करनेवाली शिराओंमें शिराओंका संनिपात (मिला हुवा गुच्छा)है ये गुच्छे चारों "शृंगाटक" नामक मर्म हैं इनमें आघात होनेसे तत्काल मृत्यु होवे ॥ ८२ ॥ मस्तकके भीतर ऊपरको जहांपर बालोंका आवर्त (भँवर) होताहै वहां शिरा और संधिका सन्निपात (मिलाप) है यह "अधिपति" नाम मर्म स्थानहै यहांपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु होतीहै ॥ ८३ ॥ इस प्रकारसे ये ३७ ग्रीवासे शिरतकके मर्म वर्णन किये गये ॥ ८४ ॥

मर्म स्थानोंका प्रमाण ।

भवंति चात्र ॥ ऊर्व्यः शिरांसि विटपे च सकक्षपार्श्वे एकैकमंगुलमितं स्तनमूलपूर्वम् ॥ विद्ध्यंगुलद्वयमितं मणिबंधगुल्फं त्रीण्येव जानु सपरं सह कूर्पराभ्याम् ॥ ८५ ॥ हृद्बस्तिकूर्चे गुदनाभि वदंति मूर्ध्नि चत्वारि पंच च गले दश योनि च द्वे ॥ तानि स्वपाणितलकुंचितसंमितानि शेषाण्यवेहि परिविस्तरतोंऽगुलार्द्धम् ॥ ८६ ॥

(व्या० ८१) सीमंताः संधिमर्माणि चतुरंगुलानि कालांतरघ्नानि ॥

(व्या० ८२) शृंगाटकानि शिरामर्माणि चतुरंगुलानि सद्यःप्राणहराणि तथाह वृद्धवाग्भटः । जिह्वाघ्राणाक्षि- श्रोत्रतर्पणीनां शिराणां तालुनि संनिपातः तासां मुखानि चत्वारि शृंगाटकसंज्ञानि ॥

(व्या० ८३) अधिपतिः संधिमर्मैतदर्द्धांगुलप्रमाणं सद्योमारकमिति ॥

(श्लोक ८५ । ८६) शिरांसि कूर्चशिरांसि । कक्षपार्श्वे कक्षसमीपे । स्तनमूलपूर्वं इत्यत्र स्तनपूर्वमूलमिति वा पाठः । सपरमिति द्वितीयजानुसहितम् । मूर्ध्नि चत्वारि पंचचेति चत्वारि शृंगाटकानि तथा तत्रैव पंचसीमंताः । गले दश गानि च द्वे इति अष्टौ मातृका द्वे द्वे नीले मन्ये च । स्वपाणितलकुंचितसंमि तानि चतुरंगुलप्रमाणानी- त्यर्थः । शेषाणि षट्पंचाशन्मर्माणि विस्तरतः अर्द्धांगुलमित्यवेहि (इति डल्हनः) ॥

यहां श्लोक हैं कि ऊर्वी कूर्चशीर्ष विटप और कक्षधर ये मर्म एक एक प्रमाणके हैं और स्तनमूल मणिबंध और गुल्फ इन्हे दो दो अंगुल प्रमाणके जानो। तथा जानु और कूर्पर तीन तीन अंगुल हैं ॥८५॥ हृदय बस्ति कूर्च गुदा नाभि और शिरके (तालुके) चार मर्म तौ शृंगाटक और कपालके पांच मर्म सीमंत तथा गलेके दश मर्म ८ मातृका और दो नीला और दो मन्या ये सब चार चार अंगुलके हैं और जो ५६ शेष रहे वे सब आधे आधे अंगुल जानो ॥ ८६ ॥

एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्य वदंति तज्ज्ञाः शस्त्रेण कर्म करणं परिहृत्य मर्म पार्श्वाभिघातितमपी हि निहंति मर्म तस्माद्धि मर्म सदनं परिवर्जनीयम् ॥

यह प्रमाण मर्म सोंनेजो ऊपर कहा इसे देख(विचार)कर मर्मको बचाकर सुज्ञ वैद्य को शस्त्र कर्म करना चाहिये क्योंकि मर्मस्थान आसपासमें कटजावे तौ भी मृत्यु कारक हो जाता है इस लिये निश्चय मर्मस्थानको तो छोड़करही चीरा लगाना चाहिये ॥ ८७ ॥

छिन्नेषु पाणिचरणेषु शिरा नराणां संकोचमीयुरसृगल्पमतो निरेति ॥ प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः संच्छिन्नशाखतरुवन्निधनं न यांति ॥ ८८ ॥ क्षिप्रेषु तत्र सतलेषु हतेषु रक्तं गच्छत्यतीव पवनश्च रुजं करोति ॥ एवं विनाशमुपयांति हि तत्र विद्धा वृक्षा इवायुधविघात निकृत्तमूलाः ॥ तस्मात्तयोरभिहतस्य तु पाणिपादं छेत्तव्यमाशु मणिबंधन-गुल्फदेशे ॥ ८९ ॥

यदि किसी मनुष्यका हाथ या पांव कटभी जावे तौ वहांकी रगें सुकड़ जावे और रुधिर कम बहता है यद्यपि बहुत उग्र पीडाको मनुष्य प्राप्त होता है तौ भी शाखा कटे हुवे जैसे वृक्ष नष्ट नहीं होता एसेही हाथ पांव कट जाने पर मनुष्य नहीं मरता है ॥ ८८ ॥ परंतु हाथ पांवोंके क्षिप्र नाशक मर्म और तलमर्म इनमें शस्त्र लगे तौ रुधिर बहुतही बहता है और वायुभी बहुत पीड़ा करती है इससे क्षिप्र तल इनमें विंध जानेसे जैसे शस्त्रसे जड़कटा वृक्ष गिरजाता है वैसे मनुष्य मरजाता है इस कारण यदि इन (क्षिप्रतल) में शस्त्र लगे (घाव हो जावे) तौ उस मनुष्य के उसी हाथ या पांवको मणिबंध या गुल्फकी जगहसे शीघ्र काट देना चाहिये ८९ ॥

मर्माणि शल्यविषयार्द्धमुदाहरंति यस्माच्च मर्मसु हता न भवंति सद्यः ॥

(श्लोक ८९) वज्रादवायुधविघातनिकृत्तमूला इत्यत्र मर्मी नु किंचित्कथमपि मादित्यर्थंकजानि इति पठति ॥

जीवंति तत्र यदि वैद्यगुणेन किंचित्ते प्राप्नुवंति विकलत्वमसंशयं हि ॥ ९० ॥ संभिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपाला जीवंति शस्त्रविहतैश्च शरीर देशैः॥ छिन्नैश्च सक्थिभुजपादकरैरशेषैर्येषां न मर्मपतिता विविधाः प्रहाराः ॥ ९१ ॥

मर्मोंको शल्य विषयार्द्ध कहतेहैं इस हेतुसे कि कभी मर्मोंमें आघात होनेसे तत्काल मृत्यु ही होती है और कदाचित् कोई कोई वैद्यकी कुशलतासे जीते भी रहजाते हैं परंतु वे विकलताको तौ अवश्यही प्राप्त होते हैं ॥ ९० ॥ कई मनुष्य जिनके धड़ शिर चेहरे (चोटोंसे) जर्जरीभूत होगये हैं तथा शरीरके प्रदेश साथल भुजा पांव हाथ आदि शस्त्रोंसे कट गये हैं वेभी जीते रहजाते हैं जिनके मर्मोंमें विविध प्रकारके प्रहार नहीं हुवेहों (अर्थात् मर्मोंमें आघात होनेसे बचना असंभव है और शिर धड जर्जर हुवे हाथ पाँवकटे मनुष्य बच जातेहैं) ॥ ९१ ॥

सोममारुततेजांसि रजःसत्वतमांसि च ॥ मर्मसु प्रायशः पुंसां भूतात्मा चावतिष्ठते मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवंति शरीरिणः ॥ ९२ ॥

सोम वायु और तेज तथा रजोगुण सत्वगुण तमोगुण और प्रायः भूतात्मा जीव ये सब मर्म स्थानोंमें स्थित रहते हैं इसी हेतु मर्मोंमें अभिघात होने (छेद भेदन होने कुचले जाने आदि चोट लगने) से मनुष्य नहीं जीवते हैं ॥ ९२ ॥

इंद्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्य्ययः ॥ रुजश्च विविधास्तीव्रा भवंत्याशुहरे हते ॥ ९३ ॥ हते कालांतरघ्ने तु ध्रुवो धातुक्षयो नृणाम् ॥ ततो धातुक्षयाज्जंतुर्वेदनाभिश्च नश्यति ॥ ९४ ॥ हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात् ॥ शरीरं क्रियया युक्तं विकलत्वमवाप्नुयात् ॥ ९५ ॥ विशल्यघ्नेषु विज्ञेयं पूर्वोक्तं यच्चकारणम् ॥ ९६ ॥ रुजाकराणि मर्माणि क्षतानि विविधा रुजः ॥ कुर्वंत्यंते च वैकल्यं कुवैद्यवशगो यदि ॥ ९७ ॥

सद्यः प्राणहर मर्मोंमें आघात होनेसे इंद्रियोंकी अर्थोंमें संप्राप्ति न होना (इंद्रियोंका ज्ञान और कर्म नष्ट होना) मन और बुद्धि विपरीत होना और अनेक भांतिकी दारुण पीडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥ ९३ ॥ कालांतरमारक मर्मोंमें आघात होनेसे मनुष्यकी धातुक्षय (नष्ट) होजाती है फिर वेदनाओंसे मृत्यु होती है ॥ ९४ ॥

(श्लोक ९०) मर्माणि शल्यविषयार्द्धं इति शल्यज्ञानविषयस्यार्द्धं मर्माणि एव यस्मात् मर्मसु हताः सद्यो न भवंति यतः एव मृत्युं प्राप्नुवंति इति भावः । डल्हनस्तु सद्यो न भवंतीति सद्यो न म्रियंते इति व्याख्याति तत्र जीवंति तत्र यदि वैद्यगुणेन किंचिदित्यादि कथनाद्यंगतत्वात् मर्मणां शल्यविषयार्द्धत्वाच्च ॥

और वैकल्यकारक मर्मोंमें आघात हो तौ केवल वैद्यकी निपुणतासे विकल शरीर क्रियायुक्त हो सकता है ॥ ९५ ॥ और विशल्यघ्न मर्मोंमें पूर्वोक्त कारण (शल्ययुक्त जीवे या स्वयं शल्य पककर गिरे तौ जीवे शल्य निकालनेसे मृत्युहो इत्यादि) जानने ९६ और रुजाकर मर्मोंमें आघात हो तो अनेक प्रकारकी पीडा करते हैं और यदिकु वैद्य चिकित्सा करे तौ अंतमें विकलता हो जाती है ॥ ९६ ॥

छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाद्दारणादपि ॥ उपघातं विजानीयान्मर्मणां तुल्यलक्षणम् ॥ ९८ ॥

मर्मोंमें छेद (विंधने) भेद (भेदन होने) अभिघात (चोट लगने दब जाने पिस जाने) से और जल जाने या दाग देने और चीरा लगने इन सब कारणोंको उपघातही समझना चाहिये और पूर्वके तुल्य पीडा आदि लक्षण जानने चाहियें (और डल्हनमिश्र उपघातका अर्थ समीपमें घात ऐसा करते हैं अर्थात् मर्मोंके समीपमें छेद भेदादि होनेसेभी मर्मोंके तुल्यही प्रायः लक्षण समझने चाहिये ॥ ९८ ॥

मर्माभिघातश्च न कश्चिदस्ति योल्पात्ययो वापि निरत्ययो वा ॥ प्रायेण मर्मस्वभिताडितास्तु वैकल्यमृच्छंत्यथवा म्रियंते ॥ ९९ ॥ मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छंति काये विविधा नराणाम् ॥ प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवंति नरस्य यत्नैरपि साध्यमानाः ॥ १०० ॥

इति सुश्रुते शारीरके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मर्मकी चोट लगा हुवा ऐसा कोईभी नहीं हो सकता कि जिसे थोडीभी पीडा न हो या पीडा होही नहीं किंतु प्रायः मर्मकी चोट लगेहुवे मनुष्य तौ विकलताको प्राप्त होते हैं या मर जाते हैं ॥ ९९ ॥ मर्म स्थानमें हुवे विकार तौ मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारसे फैल जाते हैं और स्थित होजाते हैं इससे यत्नपूर्वक साधन करनेपरभी प्रायः अति कठिन होहीजाते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां शारीरकस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः शिरावर्णनविभक्तिं नाम शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाडी शिराओंके वर्णन और उनके विभाग विषयक शारीरकका व्याख्यान करतेहैं ॥

सप्त शिराशतानि भवन्ति याभिरिदं शरीरमारामं इव जलहारिणीभिः केदार इव कुल्याभिरुपस्निह्यते ऽनुगृह्यते चाकुंचनप्रसारणादिभिर्विशेषैः

द्रुमपत्रसेवनीनामिव च तासां प्रतानास्तासां नाभिर्मूलं ततश्च प्रसर-
न्त्यूर्द्धमधस्तिर्य्यक् च ॥ १ ॥ भवतश्चात्र ॥

इस मनुष्यशरीरमें सातसौ ७०० शिरा (प्रधान) हैं इन शिराओं (रगों) करके शरीर इस प्रकार सींचा (पालन पोषण किया) जाताहै जैसे बागीचा जलकी नालियोंकरके सींचा जाताहै तथा केदार (क्षेत्र) कुल्या (नहरों) करके सींचा जाताहै और इन शिराओंहीसे आकुंचन (सकोड़) प्रसारण (फैलाव) (तथा जागना सोना इंद्रियोंका ज्ञान) इत्यादि द्वारा शरीरका अनुग्रह होताहै शिराओं का फैलाव शरीरके अंग प्रत्यंगोंमें इस प्रकारसेहै जैसे वृक्षोंके पत्तोंमें तंतुजाल फैले रहतेहैं और इन सब शिराओंका मूल नाभिहै इसनाभिस्थानसेही ये ऊपरको नीचेको टेढी तिरछी फैली हुई हैं ॥ १ ॥

यावंत्यस्तु शिराः काये संभवंति शरीरिणाम् ॥ नाभ्यां सर्वानिबद्धास्ताः प्रतन्वंति समन्ततः ॥ २ ॥ नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्यु- पाश्रिता ॥ शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ ३ ॥

इस शरीरमें जितनी शिराहैं सब नाभिसे संवर्द्धित हुई समस्त शरीरमें फैल रहीहैं ॥ २ ॥ मनुष्योंके प्राण नाभिमें स्थित रहतेहैं और नाभि प्राणोंके आश्रयमें नाभि शिराओंसे ऐसी घिरी हुई है (जैसे रथके पहियेका केंद्र मध्य) आरकके काष्ठको (पूठों) से घिरा होताहै ॥ ३ ॥

तासां मूलशिराश्चत्वारिंशत् तासां वातवाहिन्यो दश पित्तवाहिन्यो दश कफवाहिन्यो दश दश रक्तवाहिन्यः । तासां तु वातवाहिनीनां वात- स्थानगतानां पंच सप्ततिशतं भवति तावत्य एव पित्तवाहिन्यः पित्त- स्थाने कफवाहिन्यश्च कफस्थाने रक्तवाहिन्यश्च यकृत्प्लीह्नोरेवमेतानि सप्त शिराशतानि ॥ ४ ॥

इन ७०० शिराओंकी मूलशिरा ४० हैं जिनमें दश वात (वायु) के बहने वाली और दश पित्तके बहनेवाली दश कफके बहनेवाली और दशही रुधिरके बहनेवाली हैं । फिर वे वात बहनेवाली वाताशयमें प्राप्त होनेवाली १७५ शिरायें

(व्या० १) शिरावर्णेन इत्यत्र शिरावर्णे इति वा पाठ. वर्णनं विवेचनं वर्णः श्वेतरक्तादिवर्णः । जलहारिणीभिः [illegible] । केदारः क्षेत्रविशेषः । कुल्या कृत्रिमाल्पसरित् । एतद्दृष्टांतद्वयं सूक्ष्मस्थूलशिराप्रापणार्थम् । उपस्निह्यते [illegible] पुष्टिं नीयते च ॥

(श्लो० ३) प्राणाः नाभिस्थाः इत्यनेन नाभ्यावरकासु शिरासु अवस्थिताः (इति डल्हनः) ॥

होती है और इतनी १७५ ही पित्त बहने वाली पित्त स्थानमें प्राप्त होनेवाली हैं तथा १७५ कफ बहनेवाली कफस्थानमें प्राप्त होनेवाली हैं तथा १७५ रुधिर बहनेवाली यकृत् और प्लीहामें प्राप्त होनेवाली हैं इस प्रकार ये सब ७०० शिराएँ हुईं ॥ ४ ॥

तत्र वातवाहिन्यः शिरा एकस्मिन् सक्थ्नि पंच विंशति एतेनेतरसक्थि-बाहू च व्याख्यातौ ॥ ५ ॥ विशेषतस्तु कोष्ठे चतुस्त्रिंशत तासां गुद-मेढ्राश्रिताः श्रोण्यामष्टौ द्वे द्वे पार्श्वयोः षट् पृष्ठे तावत्य एव चोदरे दश वक्षसि ॥ ६ ॥

तहां वायुवाहिनी शिरा एक पांवमें २५ हैं और इसी भांति दूसरे पांवमें २५ तथा दोनों हाथोंमें पच्चीस पच्चीस ऐसे ये सब सौ १०० हुईं॥५॥ और कोष्ठ (धड़) में विशेष करके ३४ हैं कि उनमें गुदा और लिंगके आश्रयभूत कटिमें ८ और दो दो दोनों पँसवाड़ोंमें ऐसे ४ ये और ६ पीठमें और ६ ही पेटमें और १० छातीमें हैं ॥ ६ ॥

एक चत्वारिंशज्जत्रुण ऊर्द्ध्वं तासां चतुर्दश ग्रीवायां कर्णयोश्चतस्रः नव जिह्वायां षट् नासिकायां अष्टौ नेत्रयोः ॥ ७ ॥ एवमेतत् पंचसप्तत्यधिकशतं वातवहानां शिराणां व्याख्यातं एष एव विभागः शेषाणामपि।८। विशेषतस्तु पित्तवाहिन्यो नेत्रयोर्दश कर्णयोर्द्वे एवं रक्तवहाः कफवहाश्च एवमेतानि सप्तशिराशतानि सविभागानि व्याख्यातानि ॥ ९ ॥

इकतालीस ४१ शिरा वातवहा जोतोंसे ऊपर (ग्रीवा और शिरमें) हैं जिनमें १४ ग्रीवा (नाड़) में और ४ दोनों कानोंमें ९ जिह्वामें ६ नाकमें और ८ नेत्रोंमें हैं॥७॥ऐसे ये १७५ वातवहा शिराओंका व्याख्यान किया गया यही हिसाबसे शेष (पित्तवहा कफवहा और रक्तवहा शिराओंकेभी) हैं ॥८॥ विशेष इतनाही है कि पित्तवाहिनियोंमेंसे नेत्रोंमें १० और कानोंमें २ शिराहैं बस और सब कफवहा और रक्तवहा भी समझ लेनी चाहियें ऐसे ये सब ७०० शिरायें विभागपूर्वक व्याख्यानकीगई ॥९॥

भवंति चात्र ॥ क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम् ॥ करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥ १० ॥ यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदास्य विविधा रोगा जायंते वातसंभवाः ११ ॥ भ्राजिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम् ॥ संसर्पत्स्वाः शिराः पित्तं कुर्य्या

श्चान्यान् गुणानपि ॥ १२ ॥ यदा प्रकुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः॥ तदास्य विविधा रोगा जायंते पित्तसंभवाः ॥ १३ ॥ स्नेहमंगेषु संधीनां स्थैर्य्यं बलमुदीर्णताम्॥ करोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् ॥ १४ ॥ यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते॥ तदास्य विविधा रोगा जायंते श्लेष्मसंभवाः ॥ १५ ॥ धातूनां पूरणं वर्णं स्पर्शज्ञानमसंशयं॥ स्वाः शिराः संचरद्रक्तं कुर्य्याच्चान्यान् गुणानपि १६ यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः॥ तदास्य विविधा रोगा जायंते रक्तसंभवाः ॥ १७ ॥

यहां श्लोक हैं कि शुद्ध वायु अपनी शिराओंमें ठीक संचार करे तौ समस्त क्रिया (प्रसारण आकुंचनादि) यथा योग्य होती हैं और बुद्धि और कर्मोंमें मोह नहीं होता अर्थात् बुद्धींद्रिय और कर्मेंद्रिय सब अपने कार्योंमें निपुण होती हैं तथा अन्य स्पंदनादि गुणभी ठीक ठीक होते हैं ॥ १० ॥ और यदि कुपित वायु अपनी शिराओंमें संचार करे तौ अनेक प्रकारके वायुरोग उससे उत्पन्न हो जाते हैं ॥११॥ शुद्ध पित्त अपनी शिराओंमें संचार करे तौ भ्राजिष्णुता (कांति) अन्नपर रुचि जठराग्निकी दीप्ति और नैरोग्यता तथा अन्यगुण (रागादिभी) ठीक करता है ॥१२॥ और यदि कुपित पित्त अपनी शिराओंमें गमन करे तौ उससे अनेक प्रकारके पित्त रोग (दाहादि) उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १३ ॥ शुद्ध कफ अपनी शिराओंमें संचार करे तौ अंगोंमें स्निग्धता और संधियोंमें स्थिरता (योग्यता) और बल तथा उदीर्णता (महत्वता) और अन्य दृढता आदि गुण करता है ॥ १४ ॥ और यदि कुपित कफ अपनी शिराओंमें गमन करे तौ उससे अनेक प्रकार कफके रोग (ग्लानि गौरवादि) हो जाते हैं ॥ १५ ॥ शुद्ध रुधिर अपनी शिराओंमें संचार (गमन) करे तौ सब धातुवों (मांस मेदा अस्थि मज्जा और वीर्य इन) की पूर्णता और सुंदररूप तथा निःसंशय स्पर्शका ज्ञान तथा अन्य (प्रसन्नता आदि) गुणभी करता है ॥ १६ ॥ और यदि कुपित रुधिर अपनी शिराओंमें गमन करे तौ उससे अनेक प्रकारके रुधिरविकार (विस्फोटक विसर्पादि) हो जाते हैं ॥ १७ ॥

शिराओंका सर्वदोष वहत्व ।

नहि वातं शिराः काश्चिन्न पित्तं केवलं तथा॥ श्लेष्माणं वा वहंत्येताः

अतः सर्ववहाः स्मृताः ॥ १८ ॥ प्रदुष्टानां हि दोषाणां मूर्च्छितानां प्रधावताम् ॥ ध्रुवमुन्मार्गगमनमतः सर्ववहाः स्मृताः ॥ १९ ॥

कोईभी ऐसी शिरा नहीं है जिनमें केवल वायुही या केवल पित्तही या केवल कफही बहतेहों किंतु सबमें सबके अंशांश होतेहैं और एक मुख्य होताहै जैसे वातवहा शिराओंमें वायुतौ मुख्य और पित्तादिके अंशांश होतेहैं इसी भांति पित्तवहा शिराओंमें पित्त मुख्य और वातकफादिके अंशांश ऐसे औरभी जानो इसीसे ये शिरा सर्ववहा कहलाती हैं ॥ १८ ॥ और जब दोष दुष्ट होतेहैं और उच्छ्रित होतेहैं (उफनतेहैं) और प्रधावतेहैं (दौड़तेहैं) तौ अवश्य उन्मार्गगमन करतेहैं अर्थात् अपने प्राकृत मार्गसे अन्यमार्गमें गमन करतेहैं (और गमन शिराओंद्वारा होता है) इससेभी शिरा सर्ववहा कही जाती हैं ॥ १९ ॥

शिराओंके रंग आदि ।

तत्रारुणा वातवहाः पूर्यंते वायुना शिराः ॥ पित्तादुष्णाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफात् ॥ असृग्वहास्तु रोहिण्यः शिरा नात्युष्णशीतलाः ॥ २० ॥

तिनमें वायुवहा शिरा अरुण अवाती लाल रंगकी) होती हैं और वायुसे फूली रहती हैं तथा पित्त वहा शिरा गरम और नीले रंगकी होती हैं तथा कफके वहनेवाली शिरा शीतल सुपेद रंगकी और स्थिर होती हैं एवं रक्तवहा शिरा लाल सुरख और न बहुत गरम न शीतल होती है ॥ २० ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि न विध्येद्याः शिरा भिषक् ॥ वैकल्यं मरणं चापि व्यधात्तासां ध्रुवं भवेत् ॥ २१ ॥ शिराशतानि चत्वारि विद्याच्छाखासु बुद्धिमान् षट्त्रिंशच्च शतं कोष्ठे चतुःषष्टिं च मूर्द्धनि ॥ २२ ॥ शाखासु षोडश शिराः कोष्ठे द्वात्रिंशदेव तु । पंचाशज्जत्रुणश्चोर्द्ध्वमवेध्याः परिकीर्तिताः ॥

इससे अगाडी उन शिराओंका वर्णन करते हैं जिन्हे वैद्य वेधन नहीं करे जिनके विंध जानेसे विकलता या मृत्यु अवश्य होती है ॥ २१ ॥ चार सौ शिरा तौ चारों प्रकारकी चारों हाथ पैरोंमे हैं और १३६ धड़में हैं तथा १६४ ग्रीवासे ऊपर हैं ॥ २२ ॥ उनमेंसे हाथपांवों १६ शिरा अवेध्य (वेधनके योग्य नहीं) हैं और ३२ धड़में वेधन योग्य नहीं तथा ५० गलसे ऊपर अवेध्य हैं ॥ २३ ॥

(श्लो० १८ । १९) प्राकृतवातादिवहानामपि शिराणां सर्वत्र सर्वकार्योपलम्भात् सर्ववहत्वम् [illegible] न हि वातमित्यादि । उच्छ्रितानामित्यत्र मूर्च्छितानामिति वा पाठः मूर्च्छितानां परस्परं मिश्रितानाम् (इति डल्हन) ॥

(श्लोक २०) अरुणः संध्यारागे अव्यक्तरागे कृष्णमिश्रितरक्तवर्णे चेति (श० स्तो०) [illegible] अरुण शब्देन कृष्णमिश्रितरक्तवर्णो गृह्यतेऽथ वा अव्यक्तरागवर्णो वा । रोहिणी रक्तवर्णवती । रोहितशब्दात् स्त्रियां ङीप् तस्य नत्वेणत्वम् (इति वाचस्पतिः) ॥

तत्र शिराशतमेकस्मिन् सक्थ्नि भवति तासां जालधरात्वेका तिस्रश्चाभ्यंतरास्तत्रोर्वीसंज्ञे द्वे लोहिताक्षसंज्ञा चैका एतास्त्ववेध्या एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातावेवमशस्त्रकृत्याः षोडश शाखासु ॥ २४ ॥

ये जो एक पांवमें १०० शिरा हैं उनमेंसे एक तौ जालधरा (जो जालके धारण करनेवाली कूर्चशीर्षके पासहैं) और तीन भीतरकी जिनमें दो ऊर्वी संज्ञकहैं (ये ऊर्वी नाम मर्मके निकटहैं) और १ लोहिताक्ष संज्ञक (यह लोहिताक्ष मर्मस्थानपर है ऐसे एक पैरमें ये ४ शिरा छेदन करनी वर्जितहैं इसी प्रकार दूसरे पांव और दोनों हाथोंमें १६ शिरा अवेध्यहैं ॥ २४ ॥

द्वात्रिंशत् श्रोण्यां तासामष्टावशस्त्रकृत्या द्वे द्वे विटपयोः कटीकतरुणयोश्च ॥ २५ ॥ अष्टावष्टावेकैकस्मिन्पार्श्वे तासामेकैका मूर्द्धगां परिहरेत् पार्श्वसंधिगते च द्वे ॥ २६ ॥ चतस्रो विंशतिश्च पृष्ठवंशमुभयतस्तासा मूर्द्धगामिन्यो द्वे द्वे परिहरेद्बृहतीशिरे ॥ २७ ॥ तावत्य एवोदरे तासां मेढ्रोपरि रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे परिहरेत् ॥ २८ ॥

श्रोणी (कमर) में ३२ शिराहैं उनमें आठ शिरा अवेध्यहैं दो दो विटपोंमें और दोहीदो कटीक तरुणोंमें ॥ २५ ॥ और आठ आठ एक एक पँसवाडेमें शिराहैं उनमें दोनों तरफ एक एक ऊपरको जानेवाली और दो दोनों पँसवाडोंकी संधिकी अवेध्यहैं ॥ २६ ॥ पीठके वांसके दोनों तरफ २४ शिराहैं उनमेंसे ऊपर जानेवाली बृहती नामक दो दो शिरा अवेध्य हैं ॥ २७ ॥ और चौवीसही शिरा पेटमें हैं उनमें लिंगके ऊप रोमोंके दोनों तरफकी दो दो शिरा वेधन योग्य नहीं हैं ॥ २८ ॥

चत्वारिंशद्वक्षसि तासां चतुर्दशाशस्त्रकृत्या हृदये द्वे द्वे द्वे स्तनमूले स्तनरोहितापलापापस्तम्बेषूभयतोऽष्टौ ॥ २९ ॥ एवं द्वात्रिंशदशस्त्रकृत्याः पृष्ठोदरोरःसु भवंति ॥ ३० ॥

वक्षस्थलमें ४० शिरा हैं जिनमें १४ शिरा शस्त्रसे बचाने योग्य हैं हृदयमें २ और स्तनमूलमें दोनों ओड़ दो दो (ऐसे ४) और स्तनरोहितमें दो दो (४) तथा अपलाप और अपस्तंबोंमें दो दो (४) (अर्थात् सब १४ हुई) ॥२९॥ एसे सब ३२ शिरा पीठ पेट और छातीमें अवेध्य हैं ॥ ३० ॥

(सू० २९) उभयतोऽष्टाविति उभयश्चेत्यर्थः तेन स्तनरोहितयोः द्वे द्वे अपलापयोरेकैका अपस्तंबयोरप्येकैका उभयपार्श्वयोः तथा च हृदये द्वे तथा च द्वे द्वे स्तनमूले इति चतुर्दश (इति डल्हनः) ॥

चतुःषष्टिशिराशतं जत्रुणऊर्द्धं भवति तत्र षट्पंचाशच्छिरोधरायां तासा मष्टौ चतस्रश्च मर्मसंज्ञाः परिहरेद्द्वे कृकाटिकयोर्द्वे विधुरयोः एवं ग्रीवायां षोडशावेध्याः॥ ३१ ॥ हन्वोरुभयतोष्टावष्टौ तासां तु संधिधमन्यौ द्वे द्वे परिहरेत् ॥ ३२ ॥

ग्रीवासे ऊपर १६४ शिरा हैं तिनमें ५६ शिरोधरा (ग्रीवा)में हैं उनमेंसे आठ मात्रिका चार नीला और मन्यासंज्ञक मर्मशिरा और दो कृकाटिकाकी और दो विधुर ऐसे ये ग्रीवामें १६ शिरा अवेध्य हैं ॥३१॥ हनु ठोडी दोनों तरफ आठ आठ शिरा हैं उनमेंसे संधिकी और धमनीसंज्ञक दो दो को बचाना चाहिये ॥ ३२ ॥

षट्त्रिंशज्जिह्वायां तासामधः षोडश शस्त्रकृत्या रसवहे द्वे वाग्वहे च द्वे ॥३३॥ द्विर्द्वादश नासायां तासामौपनासिक्यश्चतस्रः परिहरेत् तासा-मेव च तालुन्येकां मृदावुद्देशे ॥ ३४ ॥ अष्टात्रिंशदुभयोर्नेत्रयोस्तासा मेकैकामपांगयोः परिहरेत् ॥ ३५ ॥

जिह्वामें ३६ शिरा हैं जिनमें १६ नीचेको हैं (और २० ऊपरको) उनमेंसे रसके बहनेवाली दो और वाणीके बहनेवाली दो अवेध्य हैं ॥ ३३ ॥ नासिकामें द्विर्द्वादश (चौवीस) शिरा हैं जिनमेंसे नासिकाके समीपवाली ४ शिरा बचानी चाहिये और एक तालुमें मृदावुद्देशे अर्थात् घोणाके समीप अवेध्य है ॥ ३४ ॥ दोनों नेत्रोंमें ३८ शिरा हैं उनमेंसे दोनों अपांगोंकी एकएक शिरा बचानी चाहिये ॥ ३५ ॥

कर्णयोर्दश तासां शब्दवाहिनीनामेकैकां परिहरेत् ॥ ३६ ॥ नासानेत्र गतास्तु ललाटे षष्टिस्तासां केशांतानुगताश्चतस्रः आवर्तयोरेकैका स्थप-न्यां चैका परिहर्तव्या ॥ ३७ ॥ शंखयोर्दश तासां शंखसंधिगतामेकै-कां परिहरेत् ॥३८॥ द्वादश मूर्द्ध्नि तासामुत्क्षेपयोः द्वे परिहरेत् सीमंते ष्वेकैकामेकामधिपताविति ॥ ३९ ॥ एवमशस्त्रकृत्याः पंचाशज्जत्रुण ऊर्द्ध्वमिति ॥ ४० ॥

कानोंमें दश शिरा हैं उन शब्दवाहिनी शिराओंमेंसे एक एक दोनों तरफ (मुख्य शब्दवहा) को बचावें ॥३६॥ नाक और नेत्रोंमें गमन करने वाली ऐसी

(वा० ३१) शिरोधरा ग्रीवा । तत्राष्टौ मातृका द्वे नीले द्वे मन्ये ॥

(वा० ३३) तासां जिह्वागतषट्त्रिंशत् शिराणां मध्ये अधोजिह्वायां षोडश शिरा भवंति विंशतिश्च जिह्वाया ऊर्द्ध्वं भवंतीत्यर्थः तत्र अशस्त्रकृत्या द्वे रसवहे द्वे वाग्वहेचेत्यन्वयः ॥

(वाक्य ३४) औपनासिक्यः नासासमीपवर्तिन्यः मृदावुद्देशे घोणासमीपइत्यर्थः (इति नि० सं०) ॥

विरेचन हो चुका हो तथा जिसको आस्थापन और अनुवासन बस्ति प्रयोग हुवा हो और रात्रिको जिसे निद्रा न आती हो तथा क्लीब (नपुंसक) दुर्बल और गर्भवती स्त्री इनकी शिरा वेधन करनी नहीं चाहिये अर्थात् इतनोंकी फस्द खोलनी नहीं चाहिये तथा खासी और श्वासके रोगी और शोष रोग वाले तथा बढे हुवे ज्वर आक्षेपक और पक्षाघात रोगवाले तथा उपवास (व्रत या लंघन) किये हुवे तृषा युक्त तथा मूर्च्छासे पीडित ऐसे मनुष्योंकीभी शिरा वेधन नहीं करनी चाहिये और जो शिरा अवेध्य हैं उनको नवेधे और जो वेध्य तो हैं परंतु अदृष्ट हैं उन्हेंभी नवेधे और दीखतीभी हैं पर यंत्र साध्य नहीं हैं उन्हेंभी नहीं वेधे और जो यंत्र साध्यभी है पर उठी हुई या ऊपरको उठती नहीं हैं उन्हेंभी नहीं वेधे (अर्थात् जो शिरा वेधन करने योग्य हैं और दीखतीभी हैं और यंत्रसाध्यभी हैं और ऊपरको उठीभी हों ऐसी शिरा वेधन करना चाहिये) ॥ १ ॥

शोणितावसेकसाध्याश्च विकाराः प्रागभिहितास्तेषु चापक्वेष्वन्येषु चानुक्तेषु यथाभ्यासं यथान्यायं च शिरां विध्येत् प्रतिषिद्धानामपि च विषोपसर्ग आत्ययिकेषु सिराव्यधनमप्रतिषिद्धम् ॥ २ ॥

रुधिर निकालनेसे साध्य होनेवाले रोग (शोणित वर्णनीयाध्याय सूत्रस्थानमें) पहले कहे गयेहैं (जैसे त्वग्दोष विद्रधी आदि) उनमें जबतक पकाव न हुवा हो अर्थात् राधन पडगई हो और अन्य अनुक्त जो नहीं कहे गयेहैं और रुधिर निकालनेसे साध्य हो सकतेहों ऐसे विकारोंमें अभ्यासपूर्वक और निर्णय पूर्वक शिरा वेधन करना चाहिये और जिनको सिरा वेधन (फस्द खोलना) वर्जितभी कहा है उनमेंसे किसीको विषका संसर्ग हो या अत्यंत आवश्यकहो अर्थात् शिरावेधन विना आराम नहीं ही होसके तो उनकीभी शिरा वेधन करना निषिद्ध नहीं है ॥ २ ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नमातुरं यथादोषप्रत्यनीकद्रवप्रायमन्नं भुक्तवंतं यवागूं पीतवंतं वा यथाकालमुपस्थाप्यासीनं स्थितं वा प्राणानबाधमानो वस्त्रपट्टचर्म्मांतर्वल्कललतानामन्यतमेन यंत्रयित्वा नातिगाढं नातिशिथिलं शरीरप्रदेशमासाद्य यथोक्तं शस्त्रं गृहीत्वा शिरां विध्येत् ॥ ३ ॥

(वाक्य २) प्रागभिहितेषु शोणितावसेकसाध्येषु अपक्वेषु सिरां विध्येत् पक्वानां रक्ताभावाद्रक्तस्रुतिर्न क्रियते इति । अन्येषु चानुक्तेषु विपाकाभिमुखेषु शोणितावसेकसाध्येषु अनभिहितेषु इत्यर्थः । (इति नि० सं०) यथाभ्यासं अभ्यासपूर्वकं यथासमीपं वा । यथान्यायं स्नेहस्वेदादिपूर्वकम् । प्रतिषिद्धानामपि चात्ययिकेषु सिराव्यधनमप्रतिषिद्धं अत्ययो विनाशोऽभयत्यस्मादिति आत्ययिकस्तेषु ॥

(वाक्य ३) तत्र इतिवाक्योपक्रमे । आतुरं इत्यत्र आतुरग्रहणेन स्वस्थस्य रक्तं न मोक्षणीयमिति [illegible] । द्रवप्रायं रक्तोत्क्लेदनार्थम् । (इति डल्हनः) ॥

जब शिरावेधन करना (फस्त खोलना) हो तब रोगीको यथोचित स्नेहन स्वेदन कराकर दोषोंके अनुसार शांतिकारक पतला पदार्थ अन्नका खिलाकर यवागू पिलाकर समयके अनुसार खडा करके या बिठला कर प्रियवाक्योंसे आश्वासन करके कपडेके या रेशमके फीतेसे अथवा चमडे या वृक्षकी छाल (सणजेसे) या लता (वेल) इनमेंसे किसी एकसे अंगको (नस उठाने आदिके लिये) न बहुत करडा और न बहुत ढीला बांधकर और हाथसे सूँतकर (मर्म आदि तथा युक्त शिराको विचारकर यथायोग्य शस्त्र (नशतर) लेकर शिरा वेधन करे अर्थात् फस्द खोलदे) ॥ ३ ॥

नैवातिशीते नात्युष्णे न प्रवाते न चाभ्रिते॥ शिराणां व्यधनं कार्यमरोगे वा कदाचन ॥ ४ ॥

अति शीत समयमें फस्द नहीं खोलनी और अति गरमीमेंभी नहीं खोलनी बहुत हवामेंभी नहीं खोलनी और अवर मेह बादल हों तबभी नहीं खोलनी चाहिये और कोई रोग नहीं हो तब तौ कदाचित् फस्द खोलनी नहीं नहीं चाहिये ॥ ४ ॥

तत्र व्यध्यशिरं पुरुषं प्रत्यादित्यमुखमरत्निमात्रोच्छ्रिते उपवेश्यासने सक्थ्नोराकुंचितयोर्निवेश्य कूर्परे संधिद्वयस्योपरि हस्तावंतर्गूढांगुष्ठकृतमुष्टी मन्ययोः स्थापयित्वा यंत्रणशाटकं ग्रीवामुष्टचोरुपरि परिक्षिप्यान्येन पुरुषेण पश्चात् स्थितेन वामहस्तेनोत्तानेन शाटकांतद्वयं ग्राहयित्वा ततो वैद्यो ब्रूयाद्दक्षिणहस्तेन शिरोत्थापनार्थं नात्यायतशिथिलं यंत्रणमावेष्टयेत्यसृक्स्रावणार्थं यंत्रं पृष्ठमध्ये च पीडयेति कर्मपुरुषं च वायुपूर्णमुखं स्थापयेदेष उत्तमांगगतानामंतर्मुखवर्ज्यानां शिराणां व्यधने यंत्रणविधिः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यकी फस्त खोलनी हो उसे सूर्यके सन्मुख अरत्निमात्र (चटली अंगुली पर्यंत एक हाथ) ऊंचे स्थान (चौकी वगेरा) पर बिठलादें (दोनों पाव नीचे रखा दे) और दोनो साथल संकुचित कराकर उनकी सांधि (घुटनों) पर दोनों कोहनियां रखवादे और हाथोंके दोनों अंगूठे मुठ्ठियोंमें बंध कराकर मुठ्ठियोंको मन्या

(श्लो० ५) अरत्निमात्रोच्छ्रिते इति कनिष्ठांगुलिप्रमित हस्तमात्रोच्छ्रिते इत्यर्थः । सक्थ्नोराकुंचितयोः संधिद्वयस्योपरि कूर्परे निवेश्येत्यन्वयः । अंतर्गूढांगुष्ठकृतमुष्टी हस्तौ मन्ययोः स्थापयित्वा चेत्यन्वयः । पश्चात् स्थितं गृहीतशाटकं पुरुषं वैद्य इति ब्रूयात् शिरोत्थापनार्थं यंत्रं आवेष्टय तथा च रक्तस्रावणार्थं यंत्रं पृष्ठमध्ये पीडय इति) । कर्मपुरुषं इति यस्य शिराव्यधनं क्रियते स कर्मपुरुषः अंतर्मुखवर्ज्यानामिति मुखांतर्गतवर्जितानाम (इति डल्हणः) ।

स्थानके (ग्रीवाके जोतोंके) पास रखवादें फिर बंध बांधनेके फीतेको ग्रीवा और मुट्ठियोंके ऊपरसे ले जाकर एक अन्य मनुष्यको पिछाडीकी तरफ खडा करके जिसका बांया हाथ कुछ ऊँचा रहे फिर उसे फीतेके दोनों शिरें पकडवा देवे फिर वैद्य उससे कहे कि, नस उठानेके लिये दाहने हाथसे न बहुत करडा न बहुत ढीला ऐसा रोगीके बंध लगा और रुधिर निकलनेके लिये ग्रीवामें जो फीता पडा है उसे दबा (इससे ठीक नस उठती हैं और ठीक रुधिर निकलता है) और जिसकी फस्द खोलें उसे वायुसे मुह भरा बैठा रहने दे यह विधि मुख भीतरके सिवाय उत्तमांग (चेहरे) के रक्त निकालनेके लिये (अर्थात् सरेक फस्दके लिये) बहुत ठीक है अथवा मुख भीतरके सिवाय ग्रीवासे ऊपरकी शिराओंके वेधनमें यह यंत्रणविधि है ॥ ५ ॥

पांवकी शिरा वेधनविधि ।

तत्र पादव्यध्यशिरस्य पादं समे स्थाने सुस्थिरं स्थापयित्वान्यं पादमीषत्संकुचितमुच्चैः कृत्वा व्यध्यपादं जानुसंधेरधः शाटेनावेष्ट्य हस्ताभ्यां प्रपीड्य गुल्फं व्यध्यप्रदेशस्योपरि चतुरंगुलं प्रोतादीनामन्यतमेन बद्धां पादशिरां विध्येत् ॥ ६ ॥

जिसके पांवकी शिरा वेधन करनाहो उसके पांवको समान भूमिमें निश्चलतासे रखवाकर अन्य दूसरे (जिसकी शिरा न वेधनीहो) पांवको कुछ सिकोडकर ऊंचा रखवादे फिर शिरावेधनेवाले समान भूमिस्थित पांवके घुटनेसे नीचे पट्टीसे बांधकर टकनेको हाथोंसे मले (सूंते)फिर वेधनकी जगहसे चार अंगुल ऊपर सूत या रेशम आदिसे बांधी हुई पांवकी शिराको वेधन करे ॥ ६ ॥

हाथका शिरावेधन ।

अथोपरिष्टाद्धस्तौ गूढांगुष्ठकृतमुष्टी सम्यगासने स्थापयित्वा सुखोपविष्टस्य पूर्ववद्यंत्रं बद्ध्वा हस्तशिरां विध्येत् ॥ ७ ॥

यदि हाथकी फस्द खोलनी हो तो थोडे हाथोंको ऊंचा कराकर अंगुठेको मुट्ठीमें दबाकर ठीक (समान) आसन पर बिठाकर सुखसे बैठे हुवे मनुष्यके पहले कहे अनुसार कोहनीके ऊपर पट्टी बांधकर हाथकी फस्द खोलनी चाहिये ॥ ७ ॥

अंगविशेषकी शिरावेधन ।

गृध्रसीविश्वाच्योः संकुचितजानुकूर्परः स्यात् । श्रोणीपृष्ठस्कंधेषून्नामितपृष्ठस्यावाक्शिरस्कस्योपविष्टस्य विस्फूर्जितपृष्ठस्य विध्येत् ॥ ८ ॥

गृध्रसी और विश्वाची नामक वातव्याधियोंमें फस्द खोलै तौ गृध्रसीमें घुटने सिकोड़ कर और विश्वाचीमें कोहनी सिकोड़ कर शिरा वेधे ॥ कमर पीठ कंधे इनका रक्त निकालना हो तो पीठ ऊपरको और शिर नीचेको करके बैठावे और पीठको न बाये रखकर सिरावेधन करे ॥ ८ ॥

उदरोरसोः प्रसारितोरस्कस्योन्नामितशिरस्कस्य विस्फूर्जितदेहस्य । बाहुभ्यामवलंब्यमानदेहस्य पार्श्वयोः अवमानितमेढ्रस्य मेढ्रे उन्नामितविदष्टजिह्वाग्रस्योधो जिह्वायामतिव्यात्ताननस्य तालुनि दंतमूलेषु च ॥ ९ ॥ एवं यंत्रोपायानन्यांश्च शिरोत्थापनहेतून् बुद्धयावेक्ष्य शरीरवशेन व्याधिवशेन च विदध्यात् ॥ १० ॥

पेट और छातीकी शिरावेधन करनी हो तौ हृदयको पसारकर शिरको ऊंचा करके और शरीरको फैलाकर वेधन करे, पँसवाड़ेकी शिरावेधन करनी हो तो ऐसे बिठावे कि दोनों हाथ टेककर देह उनके सहारे होजावे, लिंगकी फस्द खोलनी हो तो स्तब्धीभूत होनेपर खोले, जिह्वाकी शिरावेधनी हो तौ बाहरको निकली हुई ऊपरको उठी हुई दांतोंसे अलग जिह्वाका अग्रभाग कराकर नीचेको शिरा वेधन करे, तालू और दंतमूलमें फस्द खोलनी हो तौ खूब मुँह फाड़ेहुवेकी फस्द खोले ॥ ९ ॥ इसी प्रकार अन्यत्र सब जगह शरीरके अनुकूल और व्याधिके अनुकूल शिराओंके उठानेके लिये बुद्धिसे यंत्रणा (पट्टी आदि बांधना या शरीरके अंग प्रत्यंगको फैलाना सिकोडना आदि) कल्पना करलेना चाहिये ॥ १० ॥

शिरावेधनमें शस्त्रका प्रमाण ।

मांसलेष्ववकाशेषु यवमात्रं शस्त्रं निदध्यादतोऽन्येष्वर्द्धयवमात्रं व्रीहिमात्रं वा व्रीहिमुखेन अस्थ्नामुपरि कुठारिकया विध्येदर्द्धयवमात्रम् ११

मांस युक्त प्रदेशोंमें जौ मात्र शस्त्र (नश्तर) घुसाना चाहिये और अन्यत्र (जहां मांस अधिक न हो वहां) आधे जौकी बराबर तथा चांवलके बराबरही घुसानेसे शिरावेधन हो जाता है शिरावेधन कर्म व्रीहिमुखनाम शास्त्रसे करना चाहिये, परंतु अस्थि (हड्डियों) के ऊपर कुठारिका नामक शस्त्रसे आधे जौके बराबर वेधन करना चाहिये ॥ ११ ॥

शिरावेधनका समय ।

भवन्ति चात्र॥ अभ्रे वर्षासु विध्येत ग्रीष्मकाले तु शीतले।। हेमंतकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृता ॥ १२ ॥

यहां श्लोक है कि वर्षा ऋतुमें बादल मेघ न हो तब और ग्रीष्म (गरमी) में ठंडके समय और हेमंतऋतु (सरदी) में मध्याह्नके समय शस्त्र कर्म करे (शस्त्र कर्म करनेके इस भांति ये तीन समय हैं ॥ १२ ॥

ठीक शिराविंधीके लक्षण ।

सम्यक् शस्त्रनिपातेन धारया वा स्रवेदसृक् ॥ मुहूर्तं रुद्धा तिष्ठेच्च सुविद्धां तां विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

ठीक ठीक शस्त्र (नश्तर) लगनेसे मुहूर्तभरतक धारसे रुधिर निकले और जब बंद करना चाहै उसी समय बंद होजावे तो जानो कि ठीक शिरा वेधन हुवा ॥ १३ ॥

दूषित रक्त पहले निकलताहै ।

यथा कुसुंभपुष्पेषु पूर्वं स्रवति पीतिका ॥ तथा शिरासु विद्धासु दुष्टमग्रे प्रवर्तते ॥ १४ ॥

जैसे कसूँभेके फूलोंमेंसे पहले पीला रंग (डहल) निकलताहै उसी प्रकार शिरा वेधन होनेपर दूषित रुधिर पहले निकलताहै ॥ १४ ॥

मूर्च्छितस्यातिभीतस्य श्रांतस्य तृषितस्य च ॥ न वहंति शिरा विद्धास्तथानुत्थितयंत्रिता ॥ १५ ॥

जिसे मूर्च्छा आजावे या जो अधिक डरजावे तथा थकेहुवे तृषायुक्त ऐसे मनुष्योंकी शिरा वेधनकीजानेपर रुधिर नहीं निकलताहै तथा जिसकी रग उठी नहीं तथा पट्टीसे बांधा न गया हो तौभी रुधिर नहीं निकलताहै ॥ १५ ॥

क्षीणस्य बहुदोषस्य मूर्च्छयाभिद्रुतस्य च ॥ भूयोऽपराह्णे विस्राव्या सा परेद्युस्त्र्यहेऽपि वा ॥ १६ ॥

जो मनुष्य क्षीण हो अथवा जिसके बहुत दोष बढा हो अथवा जिसे मूर्च्छा आगई हो ऐसे मनुष्यके फिर तीसरे पहर शिरा वेधन करनी चाहिये या दूसरे दिन या तीसरे दिन फिर वेधन करनी चाहिये ॥ १६ ॥

रक्तं सशेषदोषं तु कुर्यादपि विचक्षणः ॥ न चातिप्रस्रुतं कुर्याच्छेषं संशमनैर्जयेत् ॥ १७ ॥ बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः ॥ परं प्रमाणमिच्छंति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥ १८ ॥

जब थोडासा दूषित रुधिर बाकी रहे तभी छोडदेना चाहिये अति रुधिर नहीं निकाले किंतु दूषित थोडे बचे हुवेको औषधोंसे शमन करे ॥ १७ ॥ बलवान् बहुत बडे दोषवाले जवान पूरे शरीरवालेके रुधिर निकालनेका परम (जादेसे जादे) प्रमाण १ प्रस्थ (१६ पल) है इससे अधिक कदाचित् नहीं निकाले ॥ १८ ॥

व्याधिविशेषपर शिरावेधन ।

तत्र पाददाहपादहर्षापबाहुकचिप्पविसर्पवातशोणितवातकण्टकविचर्चिकापाददारीप्रभृतिषु क्षिप्रमर्मण उपरिष्टाद्द्व्यंगुले व्रीहिमुखेन शिरा विध्येत् ॥ १९ ॥ श्लीपदे तच्चिकित्सिते यथा वक्ष्यते क्रोष्टुकशिरःखंजपंगुलवातवेदनासु जंघायां गुल्फस्योपरि चतुरंगुले ॥ २० ॥ अपच्यामिंद्रबस्तेरधस्ताद्द्व्यंगुले जानुसंधेरुपर्यधो वा चतुरंगुले गृध्रस्यां, ऊरुमूलसंश्रितां तु गलगंडे एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ ॥ २१ ॥

पाददाह पादहर्ष (पांवोंमें झनझनाट होना) अपबाहुक चिप्परोग विसर्प वातरक्त वातकंटक विचर्चिका और पाददारी (बिंवाई) इत्यादि पैरों तथा हाथोंके अन्य रक्तविकारोंमेंभी क्षिप्रसंज्ञक मर्मसे ऊपर दो अंगुल व्रीहिमुख शस्त्रसे शिरा वेधे ॥ १९ ॥ श्लीपद रोगमें जैसे उसकी चिकित्सामें अगाडी वर्णन करेंगे वैसे करे क्रोष्टुशीर्ष खंज और पंगु वातरोगोंमें टकनेसे चार अंगुल ऊपर जंघा अर्थात् पिंडलीमें शिरा वेधे ॥ २० ॥ अपची रोगमें इंद्रबस्ति नामक स्थानसे नीचे दो अंगुल पर और गृध्रसी रोगमें घुटनेकी संधिसे चार अंगुल ऊपर या नीचेको शिरा वेधें तथा गलगंड रोगमें साथलकी संधिगत शिराको वेधन करना चाहिये, इसी हिसाबसे दूसरे पांव और दोनों हाथोंकी शिरा वेधनको समझना चाहिये अर्थात् जैसे पाददाह पांवोंमें होता है वैसेही हाथोंमें दाह हो तो हाथोंकी शिरा वेधे इसी भांति जो व्याधि उक्त व्याधियोंमेंसे जिस हाथ पांवमें हो उन्हींमें शिरा वेधन करे ॥ २१ ॥

विशेषतस्तु वामबाहौ कूर्परसंधेरभ्यंतरतो बाहुमध्ये प्लीह्नि कनिष्ठिकानामिकयोर्मध्ये वा एवं दक्षिणबाहौ यकृद्दाल्ये कफोदरे चैतामेव च कासश्वासयोरप्यादिशंति ॥ २२ ॥

(व्या० १९) अत्र प्रभृतिग्रहणादन्येऽपि पादरोगा रक्तानुबंधिदोषजाता गृह्यंते ।

(व्या० २१) यस्माद्धस्तयोरपि दाहादयो रोगा भवंत्यतो बाहुग्रहणं कृतमिति (डल्हनः)

(व्या० २२) कूर्परसंधेः इत्यत्र संधिसमीपे उच्यते संधौ शस्त्रप्रणिधानस्य निषिद्धत्वात् । कासश्वासयोरित्यनयोर्मार्गविशुद्ध्यर्थं कनिष्ठिकयोस्तत्र शिराव्यधप्रतिषेधत्वादिति (गयः) ॥

विशेष प्लीह रोगमें बांयें हाथमें कोहनीकी संधिमें शिरा बेधनी चाहिये अथवा कनिष्ठिका और अनामिका अंगुलियोंके बीचमें बेधे । इसी भांति यकृत दाल्हे रोगमें तथा कफोदरमें एवं खांसी और श्वासमें दाहने हाथकी कोहनीकी संधिमें या इन्हीं दो अंगुलियोंके मध्यमें शिरावेधे ॥ २२ ॥

गृध्रस्यामिव विश्वाच्यां,श्रोणिप्रतिसमंताद्द्व्यंगुले प्रवाहिकायां शूलिन्यां, परिकर्तिकोपदंशशूकदोषशुक्रव्यापत्सु मेढ्रमध्ये वृषणयोः पार्श्वे मूत्रवृद्ध्यां नाभेरधश्चतुरंगुले सेवन्या वामपार्श्वे दकोदरे वामपार्श्वे कक्षास्तनयोरंतरेऽतर्विद्रधौ पार्श्वशूले च बाहुशोषायबाहुकयोरप्येके वदंत्यंसयोरंतरे ॥ २३ ॥

गृध्रसीके भांतिही विश्वाचीमें समझना (अर्थात जैसे गृध्रसीमें घुटनेकी संधिके नीचे या ऊपर चार अंगुल शिरा वेधें वैसेही विश्वाचीमें कोहनीसे चार चार अंगुल नीचे या ऊपर वेधें) शूलयुक्त प्रवाहिकामें कमरके पास दो अंगुलपर शिरा वेधे, परिकर्तिका उपदंश शूकरोग और वीर्यविकारमें लिंगके बीच शिरा वेधे, मूत्रवृद्धि होतौ वृषणोंके पास शिरा वेधें, दकोदर(जलोदर) रोगमें नाभिसे चार अंगुल नीचे सीवनसे बांई तरफ शिरा वेधन करनी चाहिये, अंतर विद्रधिमें और पार्श्वशूलमें बांये पँसवाड़ेमें कांख और चूँचीके बीचकी शिरा वेधन करे और कई आचार्य ऐसाभी कहते हैं कि बाहुशोष और अपबाहुक रोगमें कांधोंके बीचमें फस्द खोले ॥ २३ ॥

त्रिकसंधिमध्यगतां तृतीयके अधःस्कंधसंधिगतामन्यतरपार्श्वसंस्थितां च चतुर्थके हनुसंधिमध्यगतामपस्मारे शंखकेशांतसंधिगतामुरोपांगललाटेषु चोन्मादेऽपस्मारे च जिव्हारोगेष्वधो जिह्वायां दंतव्याधिषु च तालुनि ताल्व्येषु कर्णयोरुपरि समंतात् कर्णशूले तद्रोगेषु च गंधाग्रहणे नासारोगेषु च नासाग्रे तिमिराक्षिपाकप्रभृतिष्वामयेषूपनासिके लालाट्यामपांग्यांचैता एव शिरोरोगाधिमंथप्रभृतिषु रोगेष्विति ॥ २४ ॥

तृतीयक ज्वरमें त्रिक संधिकी शिरा वेधे,चातुर्थिकमें कंधेके नीचे कोहूसे पँसवाड़ेकी संधिगत शिरा वेधे, अपस्मार (मृगी) रोगमें ठोडीकी बीचकी संधिमें शिरा वेधे

(वा० २३) यथा गृध्रस्यां जानुसंधेरूपर्यधो वा चतुरंगुले एवं विश्वाच्यां कूर्परसंधेरूपर्यधो वा चतुरंगुले इत्यर्थः ॥

(वा० २४) हनुसंधिगतामपस्मारे इत्यत्र हनुसंधौ समुद्भूतां शिरामित्यर्थः । उपनासिके नासाग्रसमीपस्थे शिरोरोगाधिमंथप्रभृतिषु इत्यत्र प्रभृतिग्रहणात् क्षुद्ररोगे पठिता अरुंषिकादेर्ग्रहणम् (इति निबन्धसंग्रहः) ॥

उन्माद तथा मृगीमें कनपटीकी केशांत संधिगत तथा उर अपांग और ललाटमें शिरा वेधन करे, जिह्वाके और दांतोंके रोगोंमें जिह्वाके नीचेको शिरावेधें, तालुके रोगोंमें तालुकी शिरा वेधना कर्णशूल और कर्णरोगोंमें कानके पास ऊपरको शिरा वेधना, गंध न आवे या नासिकाके रोगोंमें नासिकाके अग्रभागमें शिरा वेधें, तिमिर रोग और आंखपकने (दूखने) आदिमें नाकके समीप शिरा वेधे अथवा ललाट या अपांगकी शिरा वेधे तथा शिरके रोग और अधिमंथ आदि (अन्यक्षुद्र रोग अरुंषिकादि) मेंभी इन्हेंही वेधे ॥ २४ ॥

अयोग्य शिरावेधके २० दूषण ।

अत ऊर्द्ध्वं दुष्टव्यधनमनुव्याख्यास्यामः । तत्र दुर्विद्धातिविद्धा कुंचिता पिच्चिता कुट्टिताऽप्रस्रुता अत्युदीर्णा अन्तेऽभिहता परिशुष्का कूणिता वेपिता अनुत्थितविद्धा शस्त्रहता तिर्यक्विद्धा अविद्धा अव्याध्या विद्रुता धेनुका पुनःपुनर्विद्धा शिरास्नाय्वस्थिसंधिमर्मसु चेति विंशति दुष्टव्यधाः ॥ २५ ॥

इसके अगाड़ी अब हम दुष्ट व्यधन (ठीक ठीक शिरा नहीं विंधे) उसका वर्णन करते हैं इनमें १ दुर्विद्धा २ अतिविद्धा ३ कुंचिता ४ पिच्चिता ५ कुट्टिता ६ अप्रस्रुता ७ अति उदीर्णा ८ अंतेभिहता ९ परिशुष्का १० कूणिता ११ वेपिता १२ अनुत्थितविद्धा १३ शस्त्रहता १४ तिर्यक्विद्धा १५ अविद्धा १६ अव्यध्या १७ विद्रुता १८ धेनुका १९ पुनःपुनर्विद्धा तथा२० शिरा स्नायु अस्थि और संधियोंके मर्मस्थानमें विंधना ऐसे ये शिरावेधनमें २० बीस प्रकारके दूषण होते हैं (इनके लक्षण और अर्थ अभी अगाड़ी कहेंगे) ॥ २५ ॥

इनके लक्षण ।

तत्र या सूक्ष्मशस्त्रविद्धा न व्यक्तमसृक् स्रवति रुजाशोफवती च सादुर्विद्धा(१) प्रमाणातिरिक्तविद्धायामंतःप्रविशति शोणितं शोणितातिप्रवृत्तिर्वा साऽतिविद्धा (२) कुंचितायामप्येवम् (३) कुंठशस्त्रप्रमथिता स्थूलीभावमापन्ना पिच्चिता (४) अनासादिता पुनः पुनरंतयोश्च बहुशः शस्त्राभिहता कुट्टिता (५) शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिता अप्रस्रुता (६) तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धा अत्युदीर्णा(७)। अल्परक्तस्राविण्यंतेविद्धा (८) क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णा परिशुष्का (९) चतुर्भागावसादिता किंचित्प्र-

वृत्तशोणिता कूणिता (१०) दुःस्थानबंधनाद्वेपमानायाः शोणितसंमोहो भवति सा वेपिता (११) अनुत्थितविद्धायामप्येवं(१२) छिन्नातिप्रवृत्त-शोणिता क्रियासंगकरी शस्त्रहता (१३) तिर्य्यक्प्रणिहितशस्त्रा किंचि-च्छेषा तिर्यग्विद्धा(१४) बहुशःक्षता हीनशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा (१५) अशस्त्रकृत्या अव्यध्या (१६) अनवस्थितविद्धा विद्रुता (१७) प्रदे-शस्य बहुशोऽवघट्टनादारोहव्यधा मुहुर्मुहुः शोणितस्रावा धेनुका (१८) सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद्बहुशो विच्छिन्ना पुनःपुनर्विद्धा(१९) स्नाय्वस्थिशिरा-संधिमर्मसु विद्धा(२०)वा रुजां शोषं वैकल्यं मरणं वापादयति॥ २६॥

(१) जो शिरा छोटे पतले शस्त्रसे विंधे जिससे ठीक ठीक रुधिर स्राव नहो पीडा और सूजन होजावे वह दुर्विद्धा है (२)। जो नस प्रमाणसे अधिक छेदन होजावे और खून भींतरको प्रवेश होजावे या बहुत अधिक खून निकले वह अतिविद्धाहै (३) कुंचित (टेढी विंधी) केभी ये ही लक्षण होतेहैं (४) मोटे शस्त्रसे वेधनेपर मथितसी होकर मोटी पडजावे फैलजावे कुचली जावे वह पिच्चिताहै (५)जो एकवार ठीक न विंधे तब बार बार उसके आसपास शस्त्रसे छेदी जावे वह कुट्टिताहै (६) जो ठंड या भय या मूर्च्छा आदिसे रक्त नहीं बहे तो अप्रस्नुताहै (७) बहुत तीक्ष्ण बडे मुँहके शस्त्रसे जो बहुत विस्तृत छेद होजावे तो वह अति उदीर्णाहै (८) जिसके वेधनमें थोडासा रक्त निकले वह अंतेऽभिहता या अंतेविद्धाहै (९) क्षीणरुधिर होने पर जो वायुसेभर (सूख) जावे वह परिशुष्काहै (१०) जो चौथाईसी विंधे और किंचित् रक्त निकले वह कूणिताहै (११) जिसमें ठीक स्थानमें बंध नहीं लगने आदिसे नस कंपायमान होतीरहे और रुधिरबंध बंध होकर कुछ २ निकले उसे वेपिता कहतेहैं (१२) जो नस विना उठी बींधी जावे वह अनुत्थितविद्धा कहातीहै उसमेंभी वेपिताकी भांति रक्त कम निकलना आदि लक्षण जानो(१३) जो छेदन होनेपर बहुत रक्त स्रवे और क्रियाको रोकदे (नसका फरकाव और गति बंध हो जावे) वह शस्त्रहताहै (१४) जो तिरछे शस्त्रपात होनेसे तिरछी विंधे कुछ शेष रहजावे वह तिर्यक्विद्धा कहातीहै (१५) जो हीनशस्त्रके कारण बहुत छेद की गईहै वह अपविद्धाहै (१६) जो शिरा शस्त्रकर्म (छेदन वेधन) से वर्जितहै वह वेधन होना) अव्यधा कहातीहै (१७) जो असावधानीसे (हावल तावलमें) बींधी जावे वह विद्रुताहै (१८) स्थानको वारवार शस्त्रसे वेधे जानेपर बारबार रुधिर स्रवे वह धेनुका कहातीहै । (१९) छोटे या बारीक नोकके शस्त्रसे कईवार छेदन करीजावे वह पुनःपुन विद्धा कहातीहै (२०) स्नायुमर्म अस्थिमर्म शिरामर्म और संधिमर्म इन

स्थानोंमें विंधी हुई शिरा पीडा शोष और विकलता तथा मृत्युकारक हो जाती है यह मर्माविद्धा कहाती है (२१) ॥ २६ ॥

भवन्ति चात्र ॥ शिरासु शिक्षितो नास्ति चला ह्येताः स्वभावतः ॥ मत्स्यवत् परिवर्तंते तस्माद्यत्नेन ताडयेत् ॥ २७ ॥ अजानता गृहीते तु शस्त्रे कायनिपातिते ॥ भवंति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः ॥ २८ ॥

यहां श्लोक हैं कि शिराओंके पूर्ण ज्ञानमें कोईभी पूरा २ शिक्षित नहीं है (और नहीं हो सकता) क्योंकि स्वभावहीसे चलायमान होती हैं मछलीकी भांति कभी ऊपरको उठती हैं फिर नीचेको हो जाती हैं और चलती रहती हैं इस कारणसे इनका ताडन (बांधना और वेधन करना आदि) यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ २७ ॥ अजान मनुष्य शस्त्र लेकर शिरा वेधन करे (पूर्ण अभ्यासविना फस्त खोले) तो उससे अनेक व्याधियां और बहुतसे उपद्रव उत्पन्न हो जाया करते हैं ॥ २८ ॥

शिरावेधनकी प्रधानता।

स्नेहादिभिः क्रियायोगैर्न तथा लेपनैरपि ॥ यांत्याशु व्याधयः शांतिं यथा सम्यक् शिराव्यधात् ॥ २९ ॥ शिराव्यधश्चिकित्सार्द्धं शल्यतंत्रे प्रकीर्तितः ॥ यथा प्रणिहितः सम्यग्बस्तिः कायचिकित्सिते ॥ ३० ॥

स्नेहन स्वेदन आदि क्रियाओंसे तथा लेपोंसे इतनी शीघ्र व्याधि शांत नहीं होती है जितनी ठीक २ शिरावेधनसे शीघ्र शांत हो जाती है ॥ २९ ॥ शल्यतंत्रमें आधा कर्म शिरावेधन और आधी सब क्रिया हैं ऐसेही कायाचिकित्सामें ठीक २ बस्तिकर्म आधी चिकित्सा है और अन्य सब आधी ॥(इससे शल्यक्रियामें शिरावेधनकी बहुत मुख्यता है और कायचिकित्सामें बस्तिकर्मकी प्रधानता है) ॥ ३० ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नवांतविरिक्तास्थापितानुवासितशिराविद्धैः परिहर्तव्यानि क्रोधायाममैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायामयानोत्थानासनचंक्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्याबललाभान्मासमेके मन्यंते एतेषां विस्तरमुपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ ३१ ॥

जिसने स्नेहपान किया हो या स्वेदक्रिया की हो या वमन विरेचन आस्थापन बस्ति अनुवासन बस्तिकर्म करा हो या शिरावेधन कराया हो उन रोगियोंको क्रोध परिश्रम मैथुन दिनमें सोना बहुत बोलना सवारी करना उछलना दूरतक फिरना शीतवायु धूप विरुद्ध और प्रतिकूल भोजन करना तथा अजीर्णकारक पदार्थ इनसे बचे

रहना चाहिये जबतक पूरा बल (ताकत) न हो तबतक और कई एक मास पथ्य करना ऐसा मानते हैं इनका विस्तारसे वर्णन आगे करेंगे ॥ ३१ ॥

शिराविषाणतुंबैस्तु जलौकाभिः पदैस्तथा॥अवगाढं यथापूर्वं निर्हरेद् दुष्ट शोणितम् ॥३२॥ अवगाढे जलौका स्यात् प्रच्छन्नं पिंडिते हितम्॥ शिराङ्गव्यापके रक्ते शृंगालाबू त्वचि स्थिते ॥ ३३ ॥

इति शारीरके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शिरावेध शृंग तूंबी जोंख और पछने इनसे जितना २ नीचा दुष्ट रक्त निकालनाहो उसी भांति यथापूर्वक्रमसे दूषित रुधिरको निकाले (जैसे फस्दसे पतला सर्व देह-व्यापी रक्त निकाले उससे भींतर गाढेको शृंगसे उससेभी नीचे और गाढेको तूंबेसे तथा उससेभी नीचे और गाढेको जोखोंसे निकाले) (अब गाढ शब्दका अर्थ कोई अभ्यंतर अर्थात् नीचा ऐसा करते हैं और कोई गाढा ऐसा करते हैं) ॥ ३२॥ नीचा और गाढा रुधिर होतो उसमें जलौका (जोखें) काममें लानी चाहिये और जो रुधिरके पिंडे गाठेंसी बंध जावे तौ उसमें पछने लगाना श्रेष्ठ है तथा शरीरमें व्यापक रक्तमें शिरा वेधन करना उचित है और त्वचामें दुष्ट रक्त हो तौ उसमें शृंग और तूंबा लगाकर रक्त निकालना श्रेष्ठहै ॥ ३३ ॥

इतिश्रीसुश्रुतसंहिताटीकायां शारीरकस्थाने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातो धमनीव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहां अगाड़ी अब हम धमनियोंकी विवेचनका शारीरक व्याख्यान करते हैं ॥

चतुर्विंशतिर्धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः ॥ १ ॥ तत्र केचिदाहुः शिरा धमनीस्रोतसामविभागं शिराविकारा एवं धमन्यः स्रोतांसि चेति ॥ २॥ तत्तु न सम्यक् अन्या एव हि धमन्यः स्रोतांसि च शिराभ्यः ॥

चौवीस धमनी नाभिसे उत्पन्न हुई हैं ऐसे पहले शोणितवर्णनीय अध्यायमें कह आये हैं ॥ १ ॥ यहांपर कई ऐसा कहते हैं कि शिरा धमनी और स्रोत इनमें भेद नहीं हैं किंतु शिराहीका भेद धमनी हैं तथा स्रोतभी इसी भांति शिराहीका भेद है (अर्थात् येभी एक प्रकारकी मोटी शिराही समझिये) ॥२॥ परंतु धन्वंतरि भगवान् कहते हैं कि यह कहना उनका ठीक नहीं है वास्तवमें धमनी और स्रोत शिराओंसे पृथकही हैं ॥

कस्माद्व्यंजनान्यत्वान्मूलसन्नियमात् कर्मवैशेष्यादागमाच्च ॥ ३ ॥ केवलं तु परस्परसन्निकर्षात् सदृशागमकर्मत्वात् सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणा मप्यविभाग इव कर्मसु भवंति ॥ ४ ॥

इसमें कारण ये हैं कि (प्रथम व्यंजनान्यत्वात्) इनकी व्यंजना (व्यक्ति) भिन्न भिन्न है (अर्थात् वातवहा शिरा अरुण, पित्तवहा नील, कफवहा शुक्ल, रक्तवहा लोहित) सो धमनियों और स्रोतोंमें इस प्रकार वर्ण नहीं होते किंतु उनके वर्ण जिन २ धातुवोंको वे बहती हैं उनके समान होते हैं किंतु शब्दादि वाहिनी धमनियोंका कोई वर्णही नहीं दूसरे " मूलसन्नियमात् " अर्थात् मूलके नियमसे भी ये जुदे जुदे हैं जैसे मूलशिरा ४० जिनसे ७०० शिरा निकली और मूलभूत धमनी २४ हैं और स्रोत २२ तीसरे " कर्मवैशेष्यात् " अर्थात् कर्मकी विशेषतासे भी ये जुदे २ ही हैं जैसे अप्रतिघात वातादि वहन शिराओंके कर्म और शब्द रूप रस गंधादि वहन धमनियोंके कर्म और प्राण अन्न जल रस रक्त मांस मेद आदि वहन स्रोतोंका कर्म है चौथे " आगमात् " अर्थात् आयुर्वेद शास्त्रसे भी ये जुदे२ही हैं क्यों कि शास्त्रमें ये पृथक् पृथक् ही लिखे हैं इससे जुदे जुदे ही हैं ॥ ३ ॥ किंतु इनका परस्पर संनिकर्ष होनेसे और इनका आगम और कर्म समान होनेसे तथा अति सूक्ष्मताके कारणसे जुदे जुदे होनेपरभी ये मिले हुवेसे (एकसे) सब कामोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ४ ॥

तासां तु नाभिप्रभवाणां धमनीनामूर्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गाः ॥ ५ ॥

उन नाभिसे उत्पन्न हुई २४ धमनियोंमेंसे दश ऊर्ध्वगामिनी अर्थात् ऊपरको गमन करने वाली हैं और दश अधोगामिनी अर्थात् नीचेको गमन करने वाली हैं तथा चार तिर्यकुगामिनी (तिरछा गमन करने वाली)हैं ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वगाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वासोच्छ्वासजृंभितक्षुद्धसितकथितरुदितादीन्विशेषानभिवहंत्यः शरीरं धारयंति ॥ ६ ॥ तास्तु हृदयमभिप्रपन्नास्त्रिधा जायंते तास्त्रिंशत् ॥ ७ ॥ तासां तु वातपित्तकफशोणितर-

---

(वाक्य० ३) ध्मानात् अनिलपूर्णात् धमन्यः । शिराभ्यस्ता अन्याः । १ व्यंजनान्यत्वात् लक्षणान्यत्वात् तत्र वातादिवहानां शिराणां अरुणनीलशुक्ललोहितवर्णत्वं लक्षणं शब्दादिवहानां धमनीनां वर्णानुक्तेः स्वधातुसमवर्णत्वं तदुक्तं चरके । स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च इति २ मूलसन्नियमात् मूलनियमात् यथा मूलशिराश्चतुश्चत्वारिंशत् चतुर्विंशतिर्धमन्यः द्वाविंशतिःस्रोतांसि इति ३ कर्मवैशेष्यात् कर्मविशेषत्वात् कर्मणामप्रतिघातमित्यादि प्रोक्तं शिराणां कर्मवैशेष्यं शब्दरूपरसगंधवहत्वादिकं धमनीनां प्राणान्नजलरसरक्तमांसमेदोनादित्वं स्रोतसां कर्मवैशेष्यम् । ४ आगमात् आगमोआयुर्वेदः तत्रापि पार्थक्यं दर्शितं यथा मर्मशिरास्नायुधमनीः परिहरन् इत्यादि (निबंध संग्रहः) ॥

सान् द्वे द्वे वहतस्तादश । शब्दरूपरसगंधानष्टाभिर्गृह्णीते द्वाभ्यां भाषते च द्वाभ्यां घोषं करोति द्वाभ्यां स्वपिति द्वाभ्यां प्रतिबुध्यते द्वे चाश्रुवाहिन्यौ द्वे स्तन्यं स्त्रियाः वहतः स्तनसंश्रिते ते एवं शुक्रं नरस्य स्तनाभ्या मभिवहतः ॥ ८ ॥ तास्त्वेतास्त्रिंशत्सविभागा व्याख्याता एताभिरूर्द्ध्वं नाभेरुदरपार्श्वपृष्ठोरस्कंधग्रीवाबाहवो धार्यंते याप्यंते च ॥ ९ ॥

ऊपरको गमन करने वाली धमनी शब्द स्पर्श रूप रस गंध प्रश्वास उच्छ्वास (श्वास छोड़ना) जंभाई लेना छीकना हँसना बोलना रुदन करना आदि कार्योंको वहन करती हुई शरीरको धारण करती है ॥६॥ ये १० ऊर्द्ध गामिनी धमनी हृदयमें पहुँचकर तीनगुनी होकर तीस ३० होजाती हैं ॥ ७ ॥ उनमें २ वातवहा २ पित्तवहा २ कफवहा २ रक्तवहा २ रसवहा ऐसे ये १० हैं तथा शब्द रूप रस और गंध वहनेवाली दोदो ऐसे ८ ये दोसे मनुष्य बोलता है २ से घोष करता है २ से सोता है २ से जागता है दो धमनी अश्रुवाहिनी हैं और स्त्रियोंके स्तनोंमें दूध प्रवर्त करतीहै और वेही २ पुरुषोंके शुक्र प्रवर्त करती हैं ॥ ८ ॥ इस भांति ये ३० धमनियां विभाग सहित वर्णन करी इन्हींसे नाभिके ऊपर पेट पँसवाड़ पीठ छाती कंधे ग्रीवा और भुजा धारण करी जाती है और पोषण करी जाती है ॥ ९ ॥

भवति चात्र ॥ ऊर्द्ध्वंगतास्तु कुर्वंति कर्माण्येतानि सर्वशः॥ अधोगमास्तु वक्ष्यामि कर्म तासां यथायथम् ॥ १० ॥

यहांपर श्लोक है कि ऊपर गमन करनेवाली सब धमनियां इस प्रकार (जैसे ऊपर कहे हैं) कर्म करती हैं अब अगाड़ी अधोग (नीचे गमन करनेवाली)धमनियां और उनके जैसे २ कर्म हैं उन्हे वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

अधोगमास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्तवादीन्यधो वहंति । तास्तु पित्ताशयमभिप्रतिपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसं विपक्वमौष्ण्याद्विवेचयन्त्योभिवहन्त्यः शरीरं तर्पयंत्यर्पयंति चोर्द्ध्वंगतानां तिर्य्यग्गतानां रसस्थानं चाभिपूरयंति मूत्रपुरीषस्वेदांश्च विवेचयंति ॥ ११ ॥

नीचेको गमन करनेवाली धमनियां अधोवायु मूत्र पुरीष वीर्य और स्त्रियोंका आर्तव इन्हें नीचेको प्रवर्त करती हैं । ये अधोगामिनी धमनी पहले पित्ताशयमें प्राप्त होकर वहांके अन्नपानजनित रसको जो विपक्व है उसे उष्णतासे विवेचन (शुद्ध) करके शरीरमें पहुंचाती और शरीरको तृप्त करती है ऊर्द्धगामिनी और तिरछा गमन करनेवाली धमनियोंको (सर्वत्र पहुँचाने वास्ते) समर्पणकरती है और

मुख्यरसके स्थानको पूरण करती है तथा मूत्र विष्ठा और स्वेद इन्हे विवेचन (पृथक् पृथक्) करती है ॥ ११ ॥

आमपक्काशयांतरे च त्रिधा जायंते तास्त्रिंशत् ॥ १२ ॥ तासां तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश द्वे अन्नवाहिन्यावंत्राश्रिते तोयवहे द्वे मूत्रबस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे विसर्गाय ते एव रक्तमभिवहतो नारीणामार्तवसंज्ञं द्वे वर्चोनिरसन्यौ स्थूलांत्रप्रतिबद्धे अष्टावन्यास्तिर्यग्गानां धमनीनां स्वेदमर्पयंति ॥ १३ ॥

ये धमनी आमाशय और पक्वाशयके मध्य (अग्न्याशय) में पहुंचकर तीन तीन भागमें विभक्त हो जाती हैं ऐसे यहांपर ये ३० हो जाती हैं ॥ १२ ॥ इनमेंसे वायु पित्त कफ रक्त और रसको दो दो धमनी बहती हैं (यह ऐसें १० हुई दो अंत्र (आंतों) में स्थित होकर अन्नको बहती हैं दो जलको बहती हैं तथा मूत्र बस्ति (मसाने) में प्राप्त हुई दो मूत्रको प्रवर्त करती हैं तथा वीर्यकोभी दो धमनी प्रवर्त करती हैं और दो शुक्रको उत्पन्न करती हैं और जो शुक्रको प्रवर्त करती हैं वेही शुक्रको निकालतीहैं और स्त्रियोंके वेही आर्तवसंज्ञक रक्तको प्रवर्त करती हैं और मोटे आंतडे (उंडुक) में प्राप्त हुई दो विष्ठाको बाहर निकालती हैं तथा शेष आठ तिरछी गमन करनेवाली धमनियोंको पसीना समर्पण करती हैं ॥ १३ ॥

तास्त्वेतास्त्रिंशत् सविभागा व्याख्याता एताभिरधोनाभेः पक्काशयकटीमूत्रपुरीषगुदबस्तिमेढ्रसक्थीनि धार्यंते याप्यंते च ॥ १४ ॥ भवति चात्र अधोगमास्तु कुर्वंति कर्माण्येतानि सर्वशः॥ तिर्यग्गाः संप्रवक्ष्यामि कर्म तासां यथायथम् ॥ १५ ॥

इस प्रकारसे ये ३० अधोगामिनी धमनी विभागपूर्वक वर्णन करी इन्हींसे नाभिके नीचे पक्वाशय कमर मूत्र पुरीष गुदा बस्ति लिंग और दोनों पांव धारण किये जातेहैं और पोषण किये जातेहैं ॥ १४ ॥ यहां एक श्लोक है कि अधो गामिनी धमनी सब इस प्रकारसे कर्म करती हैं अब अगाड़ी तिर्यग्गामिनी (तिरछी गमन करने वाली) धमनियोंका वर्णन करतेहैं और जो जो उनके कर्म हैं उनको वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥

तिर्यग्गानां तु चतसृणां धमनीनामेकैका शतधा सहस्रधा चोत्तरोत्तरं विभज्यंते तास्त्वसंख्येयास्ताभिरिदं शरीरं गवाक्षितं विबद्धमाततं च १६

(वा० १३) शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे इत्यत्र शुक्रप्रादुर्भावाय द्वे तद्विसर्गाय द्वे इति वा पाठः ॥

(वाक्य १६) वैः रोमकूपप्रतिबद्धैः मुखैः स्वेदमभिवहंति ॥

तासां मुखानि रोमकूपप्रतिबद्धानि यैः स्वेदमभिवहंति रसं चापि संतर्पयंत्यंतर्बहिश्च तैरेव चाभ्यंगपरिषेकावगाहालेपनवीर्याण्यंतःशरीरमभिप्रतिपद्यंते त्वचि विपक्कानि तैरेव स्पर्शसुखमसुखं वा गृह्णाति ॥ १७ ॥
तास्त्वेताश्चतस्रो धमन्यः सर्वांगगताः सविभागा व्याख्याताः ॥ १८ ॥

तिर्यग्गामिनी जो ४ धमनी हैं उनमेंसे एक एकमेंसे सौ सौ हजार २ और फिर उनमेंसे सैंकडों हजारों विभाग होजातेहैं इससे ये असंख्यात हो जातीहैं और इनसे यह शरीर झरोखोंकी भांति होरहा है और इन्हीसे सब शरीर बंधा हुवाहै तथा आच्छादन किया हुवाहै ॥ १६ ॥ इनके सूक्ष्म मुख रोमोंके छिद्रसे मिले हुवेहै इन मुखोंहीसे ये पसीनेको प्रवर्त करतीहैं और रसको बाहर भीतर सर्वत्र पहुंचातीहै और शरीरको पोषण करतीहैं और इन्हीसे मर्दन की वस्तु और तरडे देनेकी वस्तु स्नान और लेपका प्रभाव शरीरमें पहुँचताहै और ऊपरसे शुष्क होजाताहै तथा इन्हीसे स्पर्शका सुख दुःख (शीत उष्ण मृदु कठिनादि) जीव ग्रहण करताहै॥ १७॥ ऐसे ये चार तिर्यग्गामिनी समस्त शरीरमें गमन करनेवाली धमनी विभाग पूर्वक वर्णन करी गई ॥ १८ ॥

भवतश्चात्र॥ यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च॥ धमनीनां तथा खानि रसो यैरुपचीयते ॥ १९ ॥

यहांपर श्लोक हैं कि जैसे कमलकी नालियों और जडोंमें स्वभावहीसे सूक्ष्म छिद्र होतेहैं वैसेही धमनियोंमेंभी सूक्ष्म २ छिद्र हैं इन्ही छिद्रोंसे रस संचय होता है (और शरीरको पोषण करता है) ॥ १९ ॥

पंचादिभूतास्त्वथ पंचकृत्वः पंचेन्द्रियं पंचसु भावयंति॥ पंचेंद्रियं पंचसु भावयित्वा पंचत्वमायांति विनाशकाले ॥ २० ॥

पांच पृथिव्यादिक (पृथिवी जल तेज वायु आकाश) ये हैं आदिभूत जिनके ऐसी जो पांच (गंधवाहिनी रसवाहिनी रूपवाहिनी स्पर्शवाहिनी शब्दवाहिनी) धमनियां वे पंचधा प्रवृत्त होकर पंचेन्द्रिय कर्म पुरुषको पांचों इंद्रियों (घ्राण रसना नेत्र त्वचा श्रोत्र) की तरफ प्रवर्त करती हैं और विनाशकाल मृत्युके समय पांचों इंद्रियोंको पृथिव्यादि पांचों तत्वोंमें लय करके स्वयंभी पंचत्वको प्राप्त होजाती हैं

(श्लोक २०) पंचादिभूताः इति पंच पृथिव्यादय आदिभूता येषां ताः धमन्यः अथवा पंचादिभूताः इत्यत्र पंचाभिभूताः इति वा पाठः पंचभ्यो पृथिव्यादिभ्यो अभिभूताः धमन्यः पंचकृत्वः पंचधा भूत्वा पंचेंद्रियं कर्मपुरुषं पंचसु पंचेंद्रियेषु भावयंति विनाशकाले पंचेंद्रियं पंचसु पृथिव्यादिषु भावयित्वा लयं कृत्वा [illegible] पंचत्वं आयांति अथवा पंचाभिभूता धमन्यः पंचकृत्वः पंचेंद्रियं इंद्रियपंचकं पंचसु शब्दादिविषयेषु भावयंति प्रवर्तयंति विनाश-काले पंचेंद्रियं देहं पंचसु पृथिव्यादिषु भावयित्वा पंचत्वं आयांति । केचित् श्लोकमिमं अत्र क्षेपकं मन्यंते ।

(अथवा पंचादिभूताकी जगह पंचाभिभूता ऐसा पाठ है तौ पांच तत्वोंसे अभिभूत अर्थात् उत्पन्न ऐसी जो धमनी ऐसा अर्थ करना) अथवा पंच तत्वोंसे अभिभूत जो गंधादि वाहिनी धमनी हैं वे पांच ठोर विभक्त होकर पांचों इंद्रियोंको उनके पांचों विषयोंमें प्रवर्त्त करती हैं और फिर मृत्युके समय पंचेंद्रिय (कर्म पुरुष) को पांचों तत्वोंमें लय करके स्वयं पंचत्वको प्राप्त होजाती हैं (नष्ट होजाती हैं) यह श्लोक क्लिष्ट समझकर कूटमुद्गरमें लिखा है इसके और भी कई भांति कई अर्थ करतेहैं और कई इसे इस जगह क्षेपक मानते हैं और कहते हैं कि धमनियोंके संबंधमें इस श्लोकका ठीक वास्तविक प्रयोजन नहीं जाना जाताहै केवल खेंचकर " पंचाभिभूता " इस पदसे धमनियोंका अर्थ लेते हैं ॥ २० ॥

अत ऊर्ध्वं स्रोतसां मूलविद्धलक्षणमुपदेक्ष्यामः ॥ २१ ॥ तानि तु प्राणान्नोदकरसरक्तमांसमेदोमूत्रपुरीषशुक्रार्तववहानि येष्वधिकार एकेषां बहूनि एतेषां विशेषा बहवः ॥ २२ ॥

इसके अगाडी (धमनीव्याकरणके कथनानंतर) अब हम स्रोतोंके मूल विद्ध लक्षणोंका उपदेश करते हैं ॥ २१ ॥ वे स्रोत प्राणवाही अन्नवाही जलवाही रस वाही रक्तवाही मांसवाही मेदोवाही मूत्रवाही तथा मलवाही शुक्रवाही और स्त्रियोंके आर्तव रक्तवाही हैं स्रोतोंमें मुख्य अधिकार इन्हीका है अर्थात् ये ११ ही मुख्य स्रोत हैं बहुतसे आचार्योंके मतमें स्रोत बहुतसे हैं और उनमेसे उनके भेद फिर बहुतसे हैं जैसे स्वेदवाही मज्जावाही अस्थिवाही आदि परंतु धन्वंतरिजीके मतसे इनका मूलविद्ध स्रोतोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि अस्थिवाहियोंका मूल मेदही है इसीप्रकार औरभी मुख्य नहीं हैं ॥ २२ ॥

तत्र प्राणवहे द्वे तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य क्रोशनविनमनमोहनभ्रमणवेपनानि मरणं वा भवति॥२३॥ अन्नवहे द्वे तयोर्मूलमामाशयोऽन्नवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्याध्मानं शूलान्नद्वेषौ छर्दिः पिपासान्ध्यं मरणं वा ॥ २४ ॥ उदकवहे द्वे तयोर्मूलं तालु क्लोम च तत्र विद्धस्य पिपासा सद्योमरणं च ॥ २५ ॥ रसवहे द्वे तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य शोषः प्राणवहविद्धवच्च मरणं तल्लिङ्गानि च ॥ २६ ॥

(वाक्य २२) एष्वधिकार इति शल्यचिकित्सायां एषु एकादशसु एवाधिकारः । एकेषां मते स्रोतांसि बहूनि [illegible] तेषां भेदाः बहवः एवं च अत्र तेषां अनधिकारः किं च तेषां कायचिकित्सायाम [illegible] अतिसूक्ष्मत्वात् [illegible] अनधिकार एव ॥

उन स्रोतोंमेंसे प्राणोंके वहनेवाले दो स्रोत हैं इनका मूल हृदय है और रस वाहिनी धमनीभी (इनका मूल) हैं यहांपर बिंध जानेसे (तीर गोली नस्तर आदि लगजानेसे) प्रलाप और शरीर नवजाना मूर्च्छा भ्रमण और कंप ये उपद्रव होते हैं अथवा मृत्यु होती है ॥ २३ ॥ अन्नवाही स्रोत दो हैं इनकी जड़ आमाशय और अन्नवाहिनी धमनी है यहां विंधनेसे अफरा शूल अन्नद्वेष वमन प्यास अंधता अथवा मृत्यु होवे ॥ २४ ॥ जलवाही स्रोतभी दो हैं इनका मूल तालु तथा क्लोम है यहां बिंध जानेसे प्यास और तत्काल मृत्यु होती है ॥ २५ ॥ रसवाही स्रोत भी दो हैं इनकी जड़ हृदय तथा रस वाहिनी धमनी हैं यहांपर बिंध जानेसे शोष (शुष्कता) तथा प्राणवहाके विंधनेके समान लक्षण और मृत्यु होती है ॥ २६ ॥

रक्तवहे द्वे तयोर्मूलं यकृत्प्लीहानौ रक्तवाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य श्यावांगता ज्वरो दाहः पांडुता शोणितातिगमनं रक्तनेत्रता चेति॥ २७॥ मांसवहे द्वे तयोर्मूलं स्नायुत्वचारक्तवहाश्च धमन्यस्तत्र विद्धस्य श्वयथु र्मांसशोषः शिराग्रंथयो मरणम् ॥ २८ ॥ मेदोवहे द्वे तयोर्मूलं कटी वृक्कौ च तत्र विद्धस्य स्वेदागमनं स्निग्धांगता तालुशोषः स्थूलशोफता पिपासा च ॥ २९ ॥

रक्तवाही स्रोत दो हैं इनका मूल यकृत् (जिगर) और तिल्ली है तथा रक्त वाहिनी धमनी यहां विंध जानेसे शरीर काला पड़ना ज्वर दाह शरीर पीला होना अति रुधिर निकलना नेत्र लाल होना ये होते हैं ॥ २७ ॥ मांसवाही स्रोतभी दो हैं इनका मूल स्नायुवोंकी त्वचा तथा रक्त वाहिनी धमनी है यह विंधनेसे सोजा मांस सूखना शिराओंमें गाँठें पड़ना और मृत्यु हो जाती है ॥ २८ ॥ मेदवाही स्रोत दो हैं इनका मूल कमर और दोनों वृक्क (गुरदे) हैं यहां विंध जानेसे पसीना नहीं आता स्निग्धता हो तालु सूखे मोटा शोथ हो तथा प्यास अधिक हो॥२९

मूत्रवहे द्वे तयोर्मूलं वस्तिर्मेढ्रं च तत्र विद्धस्यानद्धवस्तिता मूत्रनिरोधः स्तब्धमेढ्रता च ॥ ३० ॥ पुरीषवहे द्वे तयोर्मूलं पक्वाशयो गुदं च तत्र विद्धस्यानाहो दुर्गन्धता ग्रथितांत्रता च ॥ ३१ ॥ शुक्रवहे द्वे तयोर्मूलं स्तनौ वृषणौ च तत्र विद्धस्य क्लीबता चिरात्प्रसेको रक्तशुक्रता च॥ ३२ आर्तववहे द्वे तयोर्मूलं गर्भाशय आर्तववाहिन्यश्च धमन्यस्तत्र विद्धाया वंध्यात्वं मैथुनाऽसहिष्णुत्वमार्तवनाशश्च ॥ ३३ ॥

मूत्रवाही दो स्रोत हैं इनका मूल बस्ति (मसाना) तथा लिंग है यहां बिंधनेसे बस्ति फूलना मूत्र बंध होना लिंग करड़ा होना ये होते हैं ॥ ३० ॥ पुरीष (विष्ठा) वाहीभी दो स्रोत हैं इनका मूल पक्वाशय तथा गुदा है यहां विंधनेसे पेट फूलना दुर्गंध होना आतोंमें आंटे पड़ना ये लक्षण होते हैं ॥ ३१ ॥ वीर्यवाही स्रोतभी दो हैं इनका मूल दोनों चूचियां और दोनों अंड हैं यहां विंधनेसे नपुंसकता देरसे वीर्य गिरना वीर्यपातमें रुधिर आना ये लक्षण होते हैं॥ ३२॥स्त्रियोंके आर्तव वाही स्रोतभी दोही हैं इनका मूल गर्भाशय तथा आर्तव वाहिनी धमनी हैं यहां विंधनेसे स्त्रियोंको वंध्यापन मैथुनका असहन तथा आर्तव रजो धर्मका नाश ये लक्षण होते हैं ॥ ३३॥

सेवनीछेदाद्रुजाप्रादुर्भावः बस्तिगुदविद्धलक्षणं प्रागुक्तमिति ॥ ३४ ॥

स्रोतोविद्धं तु प्रत्याख्यायोपचरेदुद्धृतशल्यं तु क्षतविधानेनोपचरेत् ३५॥

सेवनीके छेदन होनेसे बहुत पीडाका प्रादुर्भाव होता है और बस्ति तथा गुदामें विद्धके लक्षण पहले कहेही गये हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य स्रोतस्थान (स्रोतोमूल) में विद्ध हुवा हो उसे (असाध्य है वा कष्ट साध्य है ऐसा) कहकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये और जिसका शल्य निकल गया हो उसकी क्षतविधिसे (जखमके इलाजकी भांति) चिकित्सा करनी ॥ ३५ ॥

मूलात्खादंतरं देहे प्रसृतं त्वभिवाहि यत् ॥ स्रोतस्तदिति विज्ञेयं शिराधमनिवर्जितम् ॥ ३६ ॥

इति सुश्रुते शारीरके नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मूल हृदय छिद्रसे लेकर शरीरके भीतर जो बहनशील छिद्र हैं उनको स्रोत कहते हैं परंतु शिरा और धमनी स्रोत नहीं हैं इन्हें छोड़कर शेष जो बहनशील छिद्र हैं वे स्रोत कहलाते हैं ॥ ३६ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताभाषाटीकायां शारीरकस्थाने नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातो गर्भिणीव्याकरणशारीरं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम गर्भवतीके बरतावकी विवेचना नामके शारीरकी व्याख्या करतेहैं ॥

गर्भिणी प्रथमदिवसात्प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलंकृता शुक्लवसना शांतिमंगलदेवताब्राह्मणगुरुपरा च भवेत् ॥ १ ॥ मलिनविकृतहीनगा

(पा० १) प्रथमदिवसात् ऋतुस्नानदिवसादेव तदैव गर्भस्थितिसंकाशत्वात् ॥

त्राणि न स्पृशेद्दुर्गंधदुर्दर्शनानि परिहरेदुद्वेजनीयाश्च कथाः ॥ २ ॥ शुष्कं पर्युषितं कुथितं क्लिन्नं चान्नं नोपभुंजीत बहिर्निष्क्रमणं शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान् क्रोधभयसंकराश्च भारानुच्चभाष्यादिकं परिहरेत्, यानि च गर्भं व्यापादयंति ॥ ३ ॥ न चाभीक्ष्णं तैलाभ्यंगोत्सादनादीनि निषेवेत न चायासयेच्छरीरं पूर्वोक्तानि च परिहरेत् ॥ ४ ॥ शयनासनं मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रयोपेतमसंबाधं विदध्यात् हृद्यं द्रवं मधुरप्रायं स्निग्धं दीपनीयसंस्कृतं च भोजनं भोजयेत्, सामान्यमेतदा प्रसवात् ॥ ५ ॥

(गर्भवतीके लक्षणादि दौहृदादि पहले वर्णन होचुके हैं अब उसके वरतावोंका वर्णन होताहै) गर्भवतीको ऋतुस्नानके दिनहीसे नित्य प्रसन्न पवित्र रहना शृंगार करना उज्ज्वल वस्त्र पहरना चाहिये और शांतिपाठ मंगलाचार देवता ब्राह्मण और गुरुवोंमें तत्पर रहना चाहिये ॥ १ ॥ मैले विकारवाले हीनांग मनुष्योंका स्पर्श न करे दुर्गंध और जो खराब दीखें उन्होंसेभी दूर रहे तथा मन बिगड़नेवाली बातों कहानियोंसेभी बचे ॥ २ ॥ सूखा बासी बुसा सडा पदार्थ न खावे बाहर फिरना सूने मकानमें रहना छतरियों श्मशानोंमें जाना वृक्षोंके नीचे रहना इनसेभी परहेज करे क्रोध भय इनसेभी बचे तथा क्रियासंकर न करे बोझा न उठावे चिल्लाकर न बोले और इनके सिवा जो गर्भको खंडित करनेवाले आहार विहार न करे ॥ ३ ॥ अधिक तैलाभ्यंग उबटन न करे शारीरक श्रम न करे तथा पहले कहे हुवे अनुचित वरतावें न करे॥४॥अति सोना बैठेरहना विना बिछोने पृथ्वीमें बैठना पड़ना न करै ऊपर उछलकर न बैठे कष्टसे नहीं बैठे किंतु मीठा पतला हृदयको आनंदकारी चिकना दीपन वस्तुवोंसे संस्कार किया हुवा भोजन करे सामान्यतासे गर्भारंभसे लेकर प्रसव होनेतक इन आचरणोंको करना चाहिये ॥ ५ ॥

विशेषतस्तु गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत ॥ ६ ॥ विशेषतस्तु तृतीये षष्टिकौदनं पयसा भोजयेत् चतुर्थे दध्ना पंचमे पयसा षष्ठे सर्पिषा चेत्येके॥ ७ ॥ चतुर्थे पयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेज्जांगलमांससहितं हृद्यमन्नं भोजयेत् पंचमे क्षीरसर्पिःसंसृष्ट

(वा० ३) चितास्थानं चैत्यम् ॥

(वा० ४) पूर्वोक्तानि गर्भव्यापादकराणि ॥

(वा० ५) मृद्वास्तरणं मृदुतिका आस्तरणम् । अपाश्रयः [illegible] ।

षष्ठे श्वदंष्ट्रासिद्धस्य सर्पिषो मात्रां पाययेद्यवागूं वा सप्तमे सर्पिः पृथक्-पर्ण्यादिसिद्धमेवमाप्यायते गर्भः ॥ ८ ॥

विशेष करके गर्भिणीको पहले दूसरे और तीसरे महीनेमें मीठा शीतल पतला आहार सेवन करना चाहिये॥६॥कईयोंका यह भी मत है कि विशेष कर तीसरे महीनेमें षष्टिक (चावलों) का भात दूध संग खिलाना चौथे महीनेमें दहीके संग पांचवेंमें फिर दूधके संग और छठेमें घृतके साथ भात खिलाना॥७॥ परंतु धन्वंतरिजीका मत यह है कि चौथे महीनेमें दूध मक्खनसें मिला आहार तथा जांगल जीवोंके मांसके संग हृदय प्रिय अन्न खिलाना चाहिये पांचवेंमें दूध घीसे मिला भोजन देवें और छठे महीनेमें गोखरूसे सिद्ध किये घृतको पानकी मात्रा दे अथवा यवागू पिलावे सातवें महीनेमें पृथकपर्णीसे सिद्ध किया हुवा घृत देवे इसप्रकार करनेसे गर्भ ठीक पूर्ण होताहै॥८॥

अष्टमे बदरोदकेन बलातिबलाशतपुष्पपललपयोदधिमस्तुतैललवणमदनफलमधुघृतमिश्रेणास्थापयेत् पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमनार्थं च वायोः ॥ ९ ॥ ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेत् अनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति ॥ १० ॥

अष्टम मासमें पुराने मलकी निवृत्ति शुद्धि और वायुको अनुलोमन (सीधी) होनेके वास्ते बेरके जल बला (खरेटी) अतिबला (कंधी नाम खरीटी भेद) शत पुष्प (सोंफ) मांस दूध दही मस्तु (दहीका जल) तिलका तैल नमक मैनफल शहत और घृत ये सब मिलाकर इनसे आस्थापन (बस्ति) प्रयोग करै ॥ ९ ॥ फिर मधुर और कषाय द्रव्योंसें सिद्ध किये हुवे तैलसे अनुवासन (बस्ति) कर इससे वायु अनुलोमन होती है और वायु अनुलोमन होनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है और कुछ उपद्रव नहीं होता ॥ १० ॥

अतः ऊर्द्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जांगलरसैश्चोपक्रमेदाप्रसवकालादेवमुपक्रांता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते ॥ ११ ॥

इसके पीछे चिकने यवागुवों और जांगलजीवोंके मांसरसको यथाक्रम आरंभ करावे इस प्रकार यत्न करनेसे गर्भिणी स्निग्ध बलवती होती है और सुखपूर्वक उपद्रवरहित बालक उत्पन्न करती है ॥ ११ ॥

सूतिकागारविधि ।

नवमे मासि सूतिकागारमेनां प्रवेशयेत् प्रशस्तेतिथ्यादौ तत्रारिष्टं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोधति-

दुकभल्लातकनिर्मितं सर्वागारं यथासंख्यं तन्मयपर्यंकमुपलिप्तभित्तिं सुवि भक्तपरिच्छदं प्राग्द्वारं दक्षिणद्वारं वाऽष्टहस्तायतं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षा-मंगलसंपन्नं विधेयम् ॥ १२ ॥

गार्भिणीको नवें महीनेमें सूतिकागारमें (प्रसवके स्थानमें जो नीचे लिखी युक्तिसे बनाहो)वे शुभ तिथीवार नक्षत्रादि देखकर प्रवेश करे वह प्रसवस्थान इस प्रकार बनावे कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंको यथाक्रम श्वेत पीत रक्त और काली पृथ्वीमें बिल्व गूलर तेंदू और भिलावेंकी लकड़ीसे सारा मकान बनाहो उसमें फिर इसी क्रमसे उन्ही वर्णोंको बिल्वादि उन्ही वृक्षोंकी खट्वा बिछवानी चाहिये तथा भीतोंको अच्छे प्रकार लिपवाकर प्रसवोपयोगी सामग्रीसे उपयुक्त पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिणा भिमुख आठ हाथ लंबा और चार हाथ चौड़ा रक्षामंगल संपन्नहो ऐसा सूतिका गार बनाना चाहिये ॥ १२ ॥

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबंधने ॥ सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी ॥ १३ ॥ तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समंताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखाच्छ्लेष्मा च ॥ १४ ॥

जब दोनों कूख ढीली पड़जावें हृदयका बंध छूटजावे और साथलोंमें पीड़ा होने लगे तब जानना कि इसके शीघ्र बालक होनेवाला है ॥ १३ ॥ और जब तुरत बालक होनेवाला होता है तब कमर और पीठके आसपास चारों तरफ बहुत पीड़ा होने लगती है वारवार मल और मूत्रकी प्रवृत्ति होती है तथा योनिके मुखमेंसे कुछ कफसा (पानीसा) भी आने लगता है ॥ १४ ॥

प्रजनयिष्यमाणां कृतमंगलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुन्नामफल-हस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां संभृतां यवागूमाकंठात् पाययेत् ॥ १५ ॥ ततः कृतोपधाने मृदुविस्तीर्णे शयने स्थितामाभुग्न-सक्थीमुत्तानामशंकनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्तितनखाः परिचरेयुः ॥ १६ ॥

जिसके बालक होनेवाला हो उसे मंगलयुक्त स्वस्तिवाचन करावे और लड़के आवृत करके (अर्थात् उसके आसपास कुछ लड़के बिठाकर उन्हे कुछ फलादि दिलादे) फिर पुरुषनामवाले आम अनार जैसे फल हाथमें दिलाकर और तैलमर्दन

(वा० १२) वृद्धवाग्भटस्तु सूतिकागारविधिमाह यथा—नवमान्मासादप्यर्वाक्[illegible] प्रशस्तेऽहि वास्तुविद्याप्रशस्तं सर्वर्तुसुखमुपहृतसर्वोपकरणं सन्निहितज्वलनं प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा सूतिकागारं कारयेत् । सुवि भक्तपरिच्छदं सुविभक्तानि परिच्छदानि उपकरणानि यस्मिन् ॥

(श्लो० १३) सशूले जघने इति शूलयुक्तायां कट्यां इति डल्हनः। अन्ये तु शूलयुक्ते जघनप्रदेशे इति ॥

कराके गरम जलसे अभिषेक (स्नान) करावे इस पीछे आसन्नप्रसवा स्त्रीको कंठतक पेट भरके यवागू पिला देवे ॥ १५ ॥ फिर ऊँचा तकिया लगाकर मुलायम बिछोना बिछाकर उसपर लिटा दे और साथलोंको चौडी और ऊँची रहने दे और जिनसे शंका (लज्जा) नहो ऐसी चार बुड्ढी (दाई) स्त्रियां जो जणावनेके काममें चतुर हों और जिनके नखुन कटे हों वे परिचर्यामें रहें ॥ १६ ॥

अथास्या विशिखांतरमनुलोममनुसुखमभ्यज्याद्ब्रूयाच्चैनामेका सुभगे प्रवाहस्वेति न चाप्राप्तावी प्रवाहस्व ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबंधे सशूलेषु श्रोणिवंक्षणबस्तिशिरःसु प्रवाहेथाः शनैः शनैः ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढं ततो गर्भे योनिमुखं प्रपन्ने गाढतरमाविशल्यभावात् ॥ १७ ॥

उन दाइयोंको चाहिये कि आसन्नप्रसवा स्त्रीके अपत्यमार्गको रोमोंके अनुकूल और मुखकी तरफ चिकनाई लगावें फिर उनमेंसे एक दाई उस आसन्नप्रसवासे कहे कि हे सुभगे प्रवाहणकर अर्थात् किनछ परंतु जबतक जेर नाल (पानीसा) न आवे तबतक न किनछे फिर जब गर्भनाडीका बंध हृदयसे छूट जावे और कमर नले बस्ति शिर इन स्थानोंमें ज्यादा पीडा हो तब धीरे धीरे ज्यादा किनछना चाहिये फिर जब गर्भ निकलने लगे तब और ज्यादा किनछे और जिस समय गर्भका बालक योनिके मुखपर आजावे तब तौ बहुतही जोरसे प्रवाहण करे और फिर एकवार अति पीडासा होकर बालक जन्मेगा ॥ १७ ॥

अकालप्रवाहणके दोष ।

अकालप्रवाहणाद्बधिरं मूकं व्यस्तहनुं मूर्द्धाभिघातिनं श्वासकासशोषोपद्रुतं कुब्जं विकटं वा जनयति तत्र प्रतिलोममनुलोमयेत् ॥ १८ ॥

वे समय प्रवाहण (किनछने या जणावनेका उद्योग कराने) से बहरा गूंगा टेढी ठोडीवाला दबे शिरका श्वास खांसी क्षयी रोगवाला कुबड़ा अथवा विकट शरीरवाला बालक उत्पन्न होता है तहां यदि वायु प्रतिलोम हो तौ उसे अनुलोम करना चाहिये ॥ १८ ॥

प्रसवमें विलंब हो तो उपचार ।

गर्भसंगे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिंडीतकेन वा बध्नीयाद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोर्धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा ॥ १९ ॥

(वाक्य १७) विशिखांतरं अपत्यमार्गम् इति डल्हनः । आवी प्रसववेदना इति तु डल्हनः अन्ये तु सजला गर्भाम्बुरिति । आविशल्यभावात् इत्यत्र शल्यशब्दग्रहणं वेदनासहितगर्भप्राप्त्यर्थं आगर्भजननादित्यर्थः ॥

(वाक्य १९) पिंडीतकी मदन.। (श०स्तौ०) हिरण्यपुष्पमूलम् । हिरण्यपुष्पी कण्टकारिका तस्यामूलम् । सुवर्चला सूर्यभक्ता ब्रह्मी विशल्या पाटला इतिडल्हनः ॥

प्रसवमें अवरोध होतो काळेसर्पकी कांचली तथा मदनफलकी योनिको धूनी देना चाहिये अथवा हिरण्यपुष्पी (कंटकारी) की जड़को हाथ पैरोंमें बांधदे अथवा सुवर्चला (सूर्यभक्ता अतसी) और विशल्या (पाटला) को धारणकरें(इन यत्नोंसे शीघ्रप्रसव होता) है ॥ १९ ॥

जन्मोत्तर विधि।

अथ जातस्योल्वं मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्ततो नाभिनाडीमष्टांगुलमायम्य सूत्रेण बध्वा छेदयेत्तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् ॥ २० ॥

जन्मके पीछे जरायुको बालकके शरीरपरसे साफकर तथा बालकके मुखको सेंधेनमक और घृतसे शुद्ध करे फिर रुईका फोया घृतमें भिगोकर तालूपर लगावे फिर नाभि नाडी (नाल) को आठ अंगुल नापकर सूत्रसे बांध देवे और अगाड़ीसे कतर डाले और नालके जो डोर बंधीहै उसे बालकके गलेमें(ढीलीसी) बांध देवे ॥ २० ॥

अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनंताब्राह्मीरसेन सुवर्णचूर्णमंगुल्याऽनामिकया लेहयेत् ॥ २१ ॥

इसके अनंतर बालकको शीतल जलसे आश्वासन करके जातकर्म करे जातकर्म करे पीछे शहद घृत अनंतमूल ब्राह्मीका रस इनमें (रक्तिका मात्र) सुवर्णका चूर्ण (मृगांक या सुवर्णके वरक) मिलाकर अनामिका अंगुलीसे बालकको चटावे ॥ २१ ॥

ततो बलातैलेनाभ्यज्य क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगंधोदकेन वा रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा स्नापयेदेनं कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवं च ॥ २२ ॥

बला (खरेंटी) के तैलका बालकके शरीरपर मर्दन करके दूधवाले वृक्षोंके काथसे अथवा सर्व गंधोदक (एलादिके जल) से चांदी और सुवर्णके तपाये हुये (जिसमें तप्त रूप्य वा हेम बुझा हो) जलसे अथवा कपित्थपत्र (कैथके पत्तों) के काथसे कुछ कुछ गरमसे जैसा समय (ऋतु) हो जैसा दोष हो और जैसा विभव (सम्पद्) हो उसीके अनुसार स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥

(वा० २०) आयम्य आकृष्य विशोध्य । ग्रीवायां सम्यग्बध्नीयात् बाधपरिहारार्थम् ॥

(वा० २१) सुवर्णचूर्णं चूर्णप्रमाणं तु गुंजामात्रमिति (मि० सं०) ॥

(वाक्य २२) क्षीरवृक्षा उदुंबरादयो ग्राह्याः ॥

धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनंतरम् चतुरात्रात्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ॥ २३ ॥ तस्मात्प्रथमेऽन्हि मधुसर्पिरनंतामिश्रं मंत्रपूतं त्रिकालं पाययेत् द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिस्तृतीये च ततः प्राङ्निवारितस्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत् ॥ २४ ॥

प्रसूता स्त्रीके हृदयकी धमनियोंके मुख खुल जानेसे चार रात्रि या तीन रात्रीके अनंतर (सद्यःप्रसूता) स्त्रीके स्तनोंमें दुग्ध उतरता है ॥ २३ ॥ इस कारण प्रथम दिन शहत घृतमें अनंतमूल मिलाकर मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके तीन समय बालकको पिलावै दूसरे दिन लक्ष्मणासे सिद्ध किया हुवा घृत (मधु युक्त) पिलावें और तीसरे दिनभी यही करे फिर (चौथे दिन) स्तनोंमेंसे पहलेका कुछ दुग्ध निकाल डाले और दो समय थोडा थोडा दुग्ध प्रसूताके स्तनोंसे पिलावें तथा शहत और घृत पाणितलप्रमित (चार टंक) (जिसमें ३ टंक मधु १ टंक घृत) इसे दोनों समय चटावें ॥ २४ ॥

प्रसूताके नियम ।

अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां वातहरौषधनिःक्वाथेनोपचरेत्॥ २५ ॥ सशेषदोषां तु तदहः पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृंगवेरचूर्णं गुडोदकेनोष्णेन पाययेत् एवं द्विरात्रं त्रिरात्रं वा कुर्य्यादादुष्टशोणितात्॥

इसके अनंतर प्रसूताको बला तैलका मर्दन करना और वातघ्न (भद्रदारु आदि) औषधोंके क्वाथसे उपचार करें ॥ २५ ॥ और जो रक्तका दोष शेष रहा हो तो उसी दिन पीपल पीपलीमूल गजपीपल चित्रक और सोंठके चूर्णको गुडके उबालेहुवे गरम गरम जलके संग पिलावें इसी भांति जबतक दुष्ट रक्त रहे दो या तीन दिनतक करें ॥ २६ ॥

विशुद्धे ततो विदारिगंधादिसिद्धां स्नेहयवागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत्त्रिरात्रम् ॥ ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जांगलरसेन शाल्योदनं भोजयेत् बलमग्निबलं चावेक्ष्य । अनेन विधिनाऽध्यर्द्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात् पुनरार्तवदर्शनादित्येके ॥ २७ ॥

(व्या० २४) अनंतामिश्रं मधुसर्पिः अनंता दूर्वा चेति केचित् । केचित्तु अनंतमूलमिति भाषंते । स्वपाणितल सम्मितं मधुसर्पिषोरसमा मात्रा प्रयोक्तव्या पाणितलं टंकचतुष्टयप्रमाणं तत्र टंकत्रयं मधुटंकमेकं सर्पिर्योज्यम् ॥

(व्या० २५) वातहरौषधानि भद्रदार्वादीनि ॥

जब रक्तदोष शुद्ध होजावे तब विदारिगंधादि गणसे सिद्ध की हुई स्नेह युक्त यवागू अथवा दुग्ध युक्त यवागू तीन दिन तक पिलावे इसके पीछे जो कोल और कुलथी इनसे संस्कार किये हुवे शालीके भातको जांगल जीवोंके मांसरसके संग बल और अग्निका बल विचारकर प्रसूताको खिलावें इस विधीसे डेढ महीने तक उपचार करनेपर आहार विहारका नियम नहीं रहना चाहिये क्योंकि डेढ महीने पीछे स्त्रीकी प्रसूता संज्ञा नहीं रहती है और कई आचार्योंका यह मत है कि जब तक फिर रजस्वला नहो तबतक उसकी प्रसूता संज्ञा रहती है(अर्थात् जबतक गोदमें बालक दूध पीता रहे तबतक प्रसूता संज्ञा रहती है ऐसा कई मानते हैं) ॥ २७ ॥

धन्वभूमिजातां सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् । पिप्पल्यादि कषायानुपानं स्नेहनित्या च स्यात्त्रिरात्रं पंचरात्रं वा, बलवतीमबलां यवागूं पाययेत्त्रिरात्रं पंचरात्रं वा ॥ २८ ॥ अत ऊर्द्धं स्निग्धनान्नसंसर्गेणोपचरेत् प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिंचेत् क्रोधायास मैथुनादीन् परिहरेत् ॥ २९ ॥

धन्वभूमि (जांगल देश जैसे मारवाड़) की प्रसूताको घृत या तैलकी मात्रा पिलावे और पिप्पल्यादि क्वाथका अनुपान देवे और नित्य तैलाभ्यंग करे ऐसे तीन या पांच दिनतक करे बलवती प्रसूताको तीन दिन और बलहीनको पांचदिन तक यवागू पिलावें ॥२८॥ इसके पीछे चिकने अन्नके संसर्गसे उपचार करे अर्थात् उसे चिकना अन्न(हलवा आदि) खिलाते रहे और कभी कभी उष्णजलसे शरीरको सींचे(तरडे दे तथा स्नान करावे) और क्रोध परिश्रम और मैथुन आदिको त्यागते रहे ॥२९ ॥

भवतश्चात्र। मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते॥स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदत्यपतर्पणात् ॥ ३० ॥ तस्मात्तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा॥परीक्ष्योपचरेदेवं नेयं मत्ययमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

यहां दो श्लोकहैं कि मिथ्या आचार (औषध अन्न विहार) से प्रसूताको जो व्याधि होजावे तथा अपतर्पण (तृप्तिकारक वस्तु न मिलने) से जो सूतिकाको रोग होजावे तो वे कष्टसाध्य अथवा असाध्य होतेहैं ॥ ३० ॥ इसकारण देश काल और व्याधि तथा सात्म्य (उसे कैसा सानुकूल है) इन बातोंको विचारकर और परीक्षा करके प्रसूताका उपचार करना चाहिये ऐसा न हो कि उलटा रोग बढकर असाध्य होजावे ॥ ३१ ॥

(वा० २८) धन्वभूमिजातां इति जांगलदेशजातांसूतिकां [illegible] मात्रामहपरिणामिनीं पाययेत (नि. सं.) ॥

(वा० २९) प्रभूतेन प्रचुरेण ॥

अपरायातन।

अथापरा पतंत्यानाहाध्मानौ कुरुते तस्मात् कंठमस्याः केशवेष्टितया ऽङ्गुल्या प्रमृजेत् कटुकालाबुकृतवेधनसर्षपसर्पनिर्मोकैर्वा कटुतैलमिश्रै र्योनिमुखं धूपयेत् लांगलीमूलकल्केन वास्याः पाणिपादतलमालिंपेत् ॥ ३२ ॥

यदि अपरा (ओल नाल) नहीं गिरे तौ या थोड़ा रहजावे तौ पेटमें अफरा और भारीपन पैदा करताहै तिसके निकलनेके वास्ते प्रसूता स्त्रीके कंठको अंगुलीसे बाल बांधकर मलना चाहिये तथा कडुवी तोंबी कडुवी तुरई सरसों सर्पकी कांचली इनमें कडुवा तैल मिलाकर योनिके मुखपर धूनी देना चाहिये अथवा कलहारी जड़को पीसकर उसके हाथ पाँवोंमें लेपकरें ॥ ३२ ॥

मूर्ध्नि वा स्या महावृक्षक्षीरमनुसेचयेत्, कुष्ठलांगलीमूलकल्कं वा मद्य मूत्रयोरन्यतरेण पाययेत् । शालिमूलकल्कं वा पिप्पल्यादि र्वा मद्येन। सिद्धार्थककुष्ठलांगलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामंडेन वा स्थापयेत् एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरबस्तिं दद्यात् स्निग्धेन वा कृत्तनखहस्ते नापहरेत् ॥ ३३ ॥

अथवा शिरपर थूहरके दूधका आसेचन करे अथवा कूट कलहारीकी जडको मद्य या गोमूत्रमेंसे किसीके साथ थोड़ी पिलावें अथवा चावलोंकी जड़को जलमें पीसके या पिप्पली आदिको मद्यके साथ दें अथवा सिरसों कूट कलहारी थूहरका दूध मिलाकर सुरामंडके संग आस्थापन बस्ति करना और इन्ही औषधोंसे सिद्ध किये हुवे सिरसोंके तैलसे उत्तर बस्ति करें अथवा नखून कटे हाथोंके तैल लगाकर(हाथ योनिमें देकर) नालको खेंचके निकाले ॥ ३३ ॥

मक्कल्ल रोगके लक्षण।

प्रजातायाश्च नार्या रूक्षशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधितं रक्तं वायुना तद्देशगतेनातिसंरुद्धं नाभेरधः पार्श्वयोर्बस्तौ बस्तिशिरसि वा ग्रंथिं करोति। ततश्च नाभिबस्त्युदरशूलानि भवंति। सूचीभिरिव निस्तुद्यते भिद्यते दीर्यत इव च पक्वाशयः। समंतादाध्मानमुदरे मूत्रसंगश्च भवतीति मक्कल्ल लक्षणम् ॥ ३४ ॥

(पा० ३४) प्रजातायाः [illegible] मक्कल्लः अवरुद्धरक्तपाकजनितो विद्रधिरपि मक्कल्लः [illegible]

अब स्त्रीके बालक हो चुके तब यदि रूक्ष शरीरवाली प्रसूता हो उसके अशुद्ध रक्त शेष रहा हो उस अवस्थामें उसे तीक्ष्ण वस्तुवोंका उपयोग किया जावे तो वह अशुद्ध रक्त उस स्थानमें प्राप्त हुवे वायुसे अवरुद्ध होकर(रुक जावे तब) नाभिसे नीचे पँसवाडोंमें बस्तिमें या बस्तिके शिरके स्थानमें गांठसी उत्पन्न कर देता है उससे नाभि बस्ति उदर इन स्थानोंमें शूल हो जाता है सुईकीसी भांति चुभन होती हैं भेदनसा होता है और पक्काशय विदारणसा होता है और सारे पेटमें अफ-रासा हो आता है तथा मूत्र रुक रुककर आता है ये लक्षण मक्कल्ल रोगके हैं ॥ ३४ ॥

मक्कल्लका यत्न ।

तत्र वीरतर्वादिसिद्धं जलमूषकादिप्रतिवापं पाययेत्, यवक्षारचूर्णं वा सर्पिषा, सुखोदकेन वा लवणचूर्णं वा पिप्पल्यादिक्वाथेन पिप्पल्यादि चूर्णं वा सुरामंडेन वरुणादिक्वाथं वा पंचकोलैलाप्रतीवापं पृथक्पर्ण्यादि क्वाथं वा भद्रदारुमरिचसंसृष्टं पुराणगुडं वा त्रिकटु चतुर्जातककुस्तुंबुरुमिश्रं खादेदच्छं वा पिबेदरिष्टम् ॥ ३५ ॥

इस मक्कल्ल रोगमें वीरतरु (अर्जुनवृक्ष)का क्वाथ क्षार मृत्तिका (खारीमिट्टी रेहकी जाति) डालकर पिलावें, अथवा जौखारके चूर्णको घृतके संग दें अथवा गरम जलके संग लवणके चूर्णको दें अथवा पिप्पल्यादि क्वाथके संग पिप्पल्यादि चूर्ण देवें अथवा मद्यके मंडके संग वरुणादि गणका क्वाथ देवें अथवा पंचकोल (पिप्पली पिप्पलीमूल चव्य चित्रक सुंठी) और इलायची डालकर पृथक् पर्ण्यादिका क्वाथ देवें अथवा भद्रदारु और मिरचयुक्त पुराना गुड देवें अथवा त्रिकटु और चातुर्जात (तज पत्रज इलायची नागकेशर) और धनियां मिलाकर खावें अथवा अभयादिका अरिष्ट निर्मल करके पीवे (इन योगोंमेंसे जो योग प्रकृति और दोष तथा ऋतुके अनुकूल हो वही उपयोग करना चाहिये) ॥ ३५ ॥

अथ बालं क्षौमपरिवृतं क्षौमवस्त्रास्तृतायां शाययेत् पीलुबदरीनिम्ब-परूषकशाखाभिश्चैनं वीजयेत् । मूर्ध्नि चास्याहरहस्तैलपिचुमवचार-येत् । धूपयेच्चैनं रक्षोघ्नैर्धूपैः । रक्षोघ्नानि चास्य पाणिपादशिरोग्रीवा-स्ववसृजेत् । तिलातसीसर्षपकणांश्चात्र प्रकिरेत् । अधिष्ठाने चाग्निं प्र-ज्वालयेत् । व्रणितोपासनीयं चावेक्ष्येत ॥ ३६ ॥

(वा० ३५) मक्कल्लचिकित्सामाह वीरतर्वादि सिद्धजलम् [illegible] क्षारमृत्तिका [illegible] अरिष्टं अभयारिष्टादिकम् (नि० सं०) ॥

(वा० ३६) अधिष्ठाने सूतिकागारे । व्रणितोपासनीयं चावेक्ष्येतेति नेत्र [illegible] इत्यादि कार्यमिति भावार्थः । अभिमेतं मनोज्ञं नक्षत्रनाम वा नक्षत्रदेवताकृतं इति डल्हनः । [illegible] शास्त्रोक्त नक्षत्रचरण संकेतजनिताक्षरमादौ कृत्वा नाम कुर्वीताम ॥

इसके अनंतर बालकको क्षौम (एकप्रकार रेशमी कपड़े) में लपेटकर रेशमी कपड़ा बिछाकर (खाट या पीढे या सांथरेपर) लिटादें । और पीलू वृक्ष बेरी निंब तथा फालसेकी टहनीसे हवा करे और बालकके शिरपर प्रतिदिन तैलका फोहा लगावे और रक्षोघ्न धूप वच आदिकी धूनी देतेरहैं और रक्षोघ्नवस्तु (जैसे सुपेदसरसों गोरोचनआदि) बालकके हाथ पैर शिर ग्रीवा आदिपर लगायाकरें तिल अलसी सरसों इनमेंसे कोई उसके आसपास विखेरें और बालकके स्थानके पास अग्नि जलती रक्खें तथा व्रीणतोपासनीय अध्यायोक्त बरतावोंको देखें (और उसके अनुसार करै) ॥ ३६ ॥

नामकरण ।

ततो दशमे ऽहनि मातापितरौ कृतमंगलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातामू यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा ॥ ३७ ॥

इसके पीछे दशमदिन माता पिता मंगल कौतुकपूर्वक स्वस्तिवाचन करके यथा योग्य मनोज्ञ अथवा नक्षत्रके चरणाक्षरके अनुकूल (जैसे चूचे चोला अश्विनी इत्यादि) नामाक्षर आदिमें रखकर नाम रक्खे ब्राह्मणोंको शर्मा क्षत्रियोंको वर्मा वैश्योंको गुप्त और शूद्रोंको दासपद अंतमें रखना चाहिये अथवा इससमयके अनुसार ब्राह्मणोंको दत्त आनंद आदि क्षत्रियोंको सिंह साल पाल वैश्योंको मल आदि शब्द अंतमें देने चाहिये इसका विशेषविधान धर्मशास्त्र और ज्योतिष शास्त्रमें देखना चाहिये) ॥ ३७ ॥

योग्य धात्री (धाय) के लक्षण ।

ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यमप्रमाणां मध्यमवयसमरोगां शीलवतीमचपलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलंबौष्ठीमलंबोर्द्ध्वस्तनीमव्यंगामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुलेजातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबलवृद्धये बालस्य ॥ ३८ ॥ तत्रोर्द्ध्वस्तनी करालं कुर्यात् लंबस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत् ॥ ३९ ॥

(श्लो० ३८) यथावर्णं इति ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीं क्षत्रियस्य क्षत्रियामित्यादि इति डल्हनः अन्ये तु यथावर्णां [illegible] बालस्य [illegible] वा इत्याहुः । श्यामां श्यामा मधुरक्षीरा मागधी भवतीति डल्हनः परंत्वत्र श्यामा [illegible] [illegible] न तु वर्णविशेषो श्यामलामिति रूपलावण्यसंयुक्ता सा [illegible] त्यभिधीयते इति [illegible] ॥

इसके अनंतर अपने वर्णके अनुसार (जैसे ब्राह्मणको ब्राह्मणी क्षत्रियको क्षत्रिया वैश्यको वैश्या शूद्रको शूद्रा) धाय बालकको दूध पिलानेवाली नियत करनी चाहिये (अथवा यथावर्ण अपने वर्ण रंगके समान अर्थात् प्रसूता गौर होतो गौर और श्याम होतो श्याम नियत करे) वह धाय मध्य प्रमाण अर्थात् न बहुत लंबी हो न बहुत गुट्टी हो तथा मध्य अवस्थावाली रोगरहित शील स्वभाववाली हो बहुत चपल नहो लोलुप अर्थात् जिसका चित्त रुक नसके ऐसी नहो न बहुत दुबली हो न बहुत मोटी हो शुद्ध दुग्धवाली हो जिसके होठ लंबे नहों जिसके स्तन ऊंचे और लंबे नहों जिसका शरीर हीनाधिक नहो जिसमें कोई व्यसन (ऐब) नहो जिसके बालक जीते रहते हों (अथवा सवत्साहो) दोग्ध्री (दूधवाली) हो बालकपर प्रेम रखने वाली हो नीच कर्म करनेवाली नहो अच्छे कुलकी जन्मी हो इत्यादि बहुतसे गुणोंसे युक्तहो और सांवलीहो अथवा श्यामा अर्थात् सुंदर रूपवती हो ऐसी धाय बालकको निरोगता और बलकी वृद्धि करने वाली होती है ॥ ३८ ॥ जो धाय ऊंचे स्तनवाली होतो बालकको कराल (कठोर) करनेवाली होती है तथा लंबे स्तनोंवालीके स्तनोंसे बालकके नाक मुँह आच्छादन होजानेसे कभी मृत्युकी संभावना उपजातीहै ॥ ३९ ॥

प्रथम स्तनपानविधि ।

ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरस्स्नातामहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमंत्र्य मंत्रेणानेन पाययेत् ॥ ४० ॥

फिर श्रेष्ठतिथि (नक्षत्रादि) में शिरसमेत स्नान कराके अच्छे वस्त्र पहनाके मा या धायको पूर्वाभिमुख बैठाकर उसकी गोदमें उत्तराभिमुख बालकको स्थापन करके धायके दाहने स्तनको जो थोडा धोया हुवाहो और उसमेंसे थोडा दूध निकाल डाला हो उसे नीचे लिखे मंत्रसे अभिमंत्रित करके पिलावे ॥ ४० ॥

चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः॥ भवंतु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये ॥ पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्याऽमृतं यथा ॥ ४१ ॥

हे शुभगे बालकके बलकी वृद्धिके लिये चारों समुद्र तेरे स्तनोंमें नित्य क्षीरवाही होकर रहो ॥ हे शुभानने तेरे दूधरूपी अमृतरसको पान करके यह बालक दीर्घायु को प्राप्त हो जैसे देवता अमृत पीकर दीर्घायु होतेहै ॥ ४१ ॥

अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्याऽसात्म्याद्व्याधिजन्म भवति अपरि-स्रुतेप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्स्नुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासव-मीप्रादुर्भावः तस्मादेवंविधानं स्तन्यं न पाययेत् ॥ ४२ ॥

इसके विपरीत यदि नाना स्तन्य (अनेक स्त्रियोंके दूध) का उपयोग हो अर्थात् कभी कोई पिला दे कभी कोई, तो वह आत्माके अनूकूल न होनेसे व्याधि पैदा करताहै । और जो पहले दूध नहीं निकाला जावे तो अति करड़े दूधसें भरे स्तनपान करनेसे वह जमाजाडा जोरकी धारका दूध बालकको खांसी श्वास वमन पैदा कर देताहै इस हेतु ऐसे स्तन न पिलाने चाहियें ॥ ४२ ॥

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रियाः स्तन्यनाशो भवति । अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरासौवीर-कपिण्याकलशुनमत्स्यकसेरुकशृंगाटकबिसविदारीकंदमधुकशतावरीन-लिकालाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात् ॥ ४३ ॥

क्रोध शोक प्रेम न रखना इत्यादि (तामस व्यवहारों और अति तीक्ष्ण उष्ण पदार्थ खाने आदि) से स्त्रियोंके दूध नष्ट होजाताहै (जिसके दूध नष्ट होगया हो या स्वल्प हो) इसे दूध वृद्धिके लिये सुमनसता (शीलता सौम्यता) उत्पन्न करनी चाहिये और जौ गेहूं शालि (चावल) षष्टिक (सांठी) चावल मांसका रस सुरा (मद्यभेद) सौवीर तिलकुट लशुन मछली कसेरू सिंघाड़े कमलकी जड़ विदारीकंद मुलहटी शतावरी नलिका (नालीका शाक) आलाबू (घीया) कालशाक इत्यादि खिलाते रहें ॥ ४३ ॥

अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत । तच्चेच्छीतलममलं तनु शंखावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतंतुमन्नोत्प्लवते न सीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति । न च क्षुधितशोकार्तश्रांतप्रदुष्टधातुगर्भिणी ज्वरितातिक्षीणा-तिस्थूलविदग्धभक्ष्यभोज्यविरुद्धाहारतर्पितायाःस्तन्यंपाययेन्नाजीर्णौषधं च बालं दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ॥ ४४ ॥

दूध पिलानेवाली(माता या धाय) के दूधकी जलमें परीक्षा करे यदि यह शीतल निर्मल पतला शंखसा सुपेद हो जलमें डालनेसे एकत्र हो जावे (फैले नहीं) झाग-

(पा० ४२) उत्स्नुहितस्रोतसः इति कर्द्धं स्नुहितं उदीर्णं स्रोतो यस्मिन् तस्मात् पानात् ॥

(पा० ४३) नलिका इत्यत्र नालिका वा । नालिका शाकविशेषः नालिकेरः इति वा क्वचित् पाठ इति डल्हणः ॥

दार न हो और तारसे न छूटें और न ऊपर तैरता रहे न नीचे डूब जावे उसे शुद्ध दूध जाने उसके पीनेसे बालकको निरोगापन शरीर मोटा होना और बल वृद्धि होती है । और क्षुधायुक्त शोक युक्तथकी हुई जिसकी धातु दूषित होगई हो गर्भिणी जिसे तप आता हो अतिक्षीण अतिस्थूल हो जो विदग्ध पक्का कच्चा पका खाती हो जिसने विरुद्ध भोजन पेटभर खाया हो ऐसी अवस्थाओंमें स्त्रियोंका दूध बालकको नहीं पिलाना चाहिये और यदि बालकको अजीर्णभी होतो (बहुत तेज) औषध न पिलावें क्योंकि दोष और औषध तथा मलका तीक्ष्ण वेग होनेका भय होनेसे । (यदि देतो सूक्ष्म और मृदु औषध देनी चाहिये) ॥ ४४ ॥

दुष्ट दुग्धके लक्षण भावमिश्रोक्त (परिशिष्ट वाक्य ४४)

कषायसलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥ पित्तादम्लं च कटुकं राज्योम्भसि तु पीतिका ॥ १ ॥ कफदुष्टं तु यत्तोये निमज्जति च पिच्छलम् ॥ द्वंद्वजं तु द्विलिंगं स्यात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ २ ॥

(अर्थ) जो कषायरस हो जलमें डालनेसे तिरे वह दुग्ध वायुसे दूषित होता है और जो खट्टा या चरका हो तथा जलमें डालनेसे पीली धारीसी हो जावे तो वह दुग्ध पित्तसे दूषित है ॥ १ ॥ तथा जो बहुत गाढा हो और जलमें डालनेसे डूब जावे वह कफसे दूषित दुग्ध है इसी भांति जिसमें दो भांतिके लक्षण हों वह दो दोषोंसे दूषित और जिसमें तीनों लक्षण हों वह त्रिदोष दूषित समझना ॥ २ ॥

भवंति चात्र ॥ धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा ॥ दोषा देहे प्रकुप्यंति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ४५ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः॥दूषयंति पयस्तेन शरीरे व्याधयः शिशोः ॥ भवंति कुशलस्तांश्च भिषक् सम्यग्विभावयेत् ॥ ४६ ॥

दूध पिलानेवाली धायके भारी भोजन करनेसे विषम भोजन करनेसे तथा दोषल आहार विहारसे उसके शरीरमें दोष कुपित होकर दुग्धको दूषित कर देते हैं ॥ ४५ ॥ मिथ्या आहार विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें वातादि दोष दुष्ट होकर दुग्धको दूषित करते हैं जिस दूषित दूध पीनेसे बालकके शरीरमें व्याधियां पैदा हो जाती हैं चतुर वैद्य बालकके रोगोंको ठीक विचार कर यत्न करे ॥ ४६ ॥

बालकके रोग जाननेकी रीति ।

अंगप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते॥ मुहुर्मुहुः स्पृशेत्तं तं स्पृश्यमाने च रोदिति ॥ ४७ ॥ निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे शिरोरोगे न धारयेत्॥

बस्तिस्थे मूत्रसंगार्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति ॥ ४८ ॥ विण्मूत्रसंगवैवर्ण्यच्छर्द्याध्मानांत्रकूजनैः। कोष्ठे दोषान् विजानीयात्सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः ४९

बालकके जिस जिस अंग प्रत्यंगमें पीडा होती है उसे वह बारबार छूता है और यदि कोई अन्य मनुष्य उस अंगको छूवे तो बालक रोता है ॥ ४७ ॥ यदि मूर्द्धामें शिरो रोग हो तो बालक आंखें बंदकिये रहता है और शिरको धुनता टकराता है तथा बस्तिस्थानमें रोग पीडा हो तो मूत्र रुकता है तृषा अधिक लगती है मूर्च्छा हो जाती है ॥ ४८ ॥ और यदि मलमूत्र दोनों रुक जावें वर्ण अच्छा न रहै बमन हो अफारा हो तथा आतें गुड़गुड़ करें तो कोष्ठ गत पीडा जानना और समस्त शरीरमें (अरति आदि) पीडा हो तो उसे रुदनमात्रसे जानलेना चाहिये (इसी भांति औरोंकोभी जानना) ॥ ४९ ॥

तेषु च यथाभिहितं मृद्वच्छेदनीयमौषधं मात्रया क्षीरपस्य क्षीरसर्पिषा धात्र्याश्च विदध्यात् । क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्च । अन्नादस्य कषायादीनात्मन्येव न धात्र्याः ॥ ५० ॥

बालकोंके रोगोंमें जो यथायोग्य कोमल हों और अच्छेदी हों (अर्थात् कफादिको छेदन करनेवाली) (तीक्ष्ण) नहीं ऐसी औषध दूध पीनेवाले बच्चेका रोग हो तो उसकी धायको दूध और घृतके संग देनी चाहिये और जो दूधभी पीता हो कुछ अन्नभी खाता हो तो उस बच्चेकोभी और उसकी धायकोभी औषध देना चाहिये और अन्नमात्र खानेवाले हों तो उन बच्चोंहीको क्काथादि पिलावे धायको नहीं ॥ ५० ॥

बालकोंकी औषधोंकी मात्रा ।

तत्र मासादूर्द्धं क्षीरपायांगुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितमौषधमात्रां विदध्यात् कोलास्थिसम्मितां कल्कमात्रां क्षीरान्नादाय कोलसम्मितामन्नादायेति ॥ ५१ ॥

एक महीनेसे अधिककी अवस्थावाले दूध पीते बच्चेको यदि औषध (हरीतकी गुडूच्यादि) देना आवश्यक होतो अंगुलीके दो पोरोंसे जितनी औषध ली जावे उतनी औषध (क्काथादि) देना चाहिये और जो दूधभी पीता हो कुछ अन्नभी खाता हो उसे औषध देना होतो बेरकी गुठली जितनी पिसी दवा देना चाहिये और अन्न खाते बच्चेको कोलप्रमाण औषध देना ॥ ५१ ॥

(सूत्र० ५१) बालस्य [illegible] तन्त्रान्तरात् यथा। प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका । अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसितामृतैः ॥ १ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावत् यावत् संवत्सरो भवेत् तदूर्द्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावत्षोडश वार्षिकः ॥ २ ॥

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यंते ऽगदंकराः॥ तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत् शिशुं स्तनौ ॥ ५२ ॥ एकं द्वे त्रीणि चाहानि वातपित्तकफज्वरे॥ स्तन्यपाया हितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ॥ ५३ ॥

अथवा जिन जिन रोगोंके लिये जो जो आराम करनेवाले औषधोंके योग कहे हैं बालकोंके रोग होवें तो उन्हीको पीसकर दूध पिलानेवालीके स्तनोंके लेपटकर दूध पिलाना चाहिये ॥ ५२ ॥ यदि बालक दूध पीनेवालेको वात पित्त कफ कृत ज्वर होतो एक दिन दो दिन तीन दिन इस क्रमसे घृत अहित होता है (अर्थात् दूध पीते बच्चेको वात ज्वरमें १ दिन पित्त ज्वरमें २ दिन कफ ज्वरमें ३ दिन घृत न देना) और इतर (दूध पीते और अन्नभी कुछ खाते तथ केवल अन्न खाते हों उन्हे यथायोग्य घृतका पथ्य उचित है ॥ ५३ ॥

न च तृष्णाभयादत्र पाययेत शिशुंस्तनौ॥ विरेकबस्तिवमनान्यृते कुर्याच्च नात्ययात् ॥ ५४ ॥

ज्वरके वेगमें बालकको तृषाके भयसे स्तनपान कराना उचित नहीं तथा अन्यावश्यकताके सिवाय बालकको विरेचन बस्तिकर्म तथा वमन करनाभी उचित नहीं ॥ ५४ ॥

कालछटकनेका यत्न ।

मस्तुलुंगक्षयाद्यस्य वायुस्तात्वस्थि नामयेत्॥ तस्य तृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥ पानाभ्यंजनयोर्योज्यं शीतांबु्द्वेजनं तथा ॥ ५५ ॥

बालकके मस्तककी मज्जाक्षय होनेसे वायु उसके तालुके अस्थिको नवा देता है (काक छिटक जाता है) इससे तृषा अधिक लगती है बालक दीन (विकल) होजाता है तौ इसको मधुर गण (काकोल्यादि से गरम किया हुवा घृतपान करावे और तालूपर मले तथा ठंढे जल और शीतल पंखेका पवनका उपयोगकरे ॥ ५५ ॥

नाभिपाक और गुदपाक ।

वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुंडिसंज्ञिताम्॥ मारुतघ्नैः प्रशमयेत् स्नेहस्वेदोपनाहनैः ॥ ५६ ॥ गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम्॥ रसांजनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ५७ ॥

यदि वायुसे नाभि फूल जावे और उसमें पीडाहो अगाडीको चोंचसी निकल आवे तो इस व्याधिमें वायुनाशक स्नेहकर्म करना (वायु नाशक घृत लगाना

(श्लो० ५३) इतराभ्यां क्षीरान्नादाभ्यामन्नादाभ्यां यथार्थतः यथायोग्यतः सर्पिः हितमहितं च बोद्धव्यम् ॥

(श्लो० ५४) अथ ज्वरे । अत्ययात् विनाशकारकविकारात् ऋते विरेकबस्तिवमनानि न कुर्यादिति [illegible] ॥

तथा स्वेदन उपनाहनादि करना ॥ ५६ ॥ यदि बालकोंकी गुदा पक जावे तो पित्त नाशक क्रिया करनी चाहिये विशेष करके रसोत (रसवंती) का पान कराना और लेप करना हितहै ॥ ५७ ॥

क्षीराहाराय सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामांसीपयस्यापामार्गशतावरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्टसैंधवसिद्धं क्षीरान्नादाय मधुकवचापिप्पलीचित्रकत्रिफलासिद्धं अन्नादाय द्विपंचमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचमधुविडंगद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धं तेनारोग्यबलमेधायूंषि शिशोर्भवंति ॥ ५८ ॥

केवल दूधपीनेवाले बच्चेको सुपेद सरसों वच जटामांसी क्षीरकाकोली (अथवा दुद्धी) ओंगा शतावरी सारिवा ब्राह्मी पिप्पली हलदी कूट सेंधानमक इनसे सिद्ध किया घृत नित्य पिलाना चाहिये और दूधभी पीने कुछ अन्नभी खानेवाले बालकको मुलहटी वच पिप्पली चित्रक और त्रिफला इनसे सिद्ध किये घृतका पान कराना तथा अन्न खानेवाले बालकको दोनों पंचमूल (अर्थात् दशमूल) क्षीर (दुग्ध) अथवा क्षीरि ऐसाभी पाठांतर है जिससे क्षीरवृक्ष तगर देवदारु कालीमिर्च मधु (शहत) अथवा मधुक पाठांतर होनेसे मूलहटी वायविडंग द्राक्षा दोनों ब्राह्मी (ब्राह्मी और ब्रह्ममांडूकी) इनका सिद्ध किया घृत पानकराना चाहिये इससे बालक निरोगा बलवान् बुद्धिमान् और दीर्घायु होता है ॥ ५८ ॥

बालकोंका वरताव।

बालं पुनर्गात्रसुखं गृह्णीयान्न चैनं तर्जयेत् । सहसा न प्रतिबोधयेदवित्रासभयात् । सहसा नापहरेदुत्क्षिपेद्वा वातादिविघातभयान्नोपवेशयेत् कौब्जभयात् । नित्यं चैनमनुवर्तेत प्रियशतैरजिघांसुः ॥ ५९ ॥

और बालकको जैसे उसका शरीर सुखपावे वैसे गोदमें रक्खें तथा बालकको त्रास नहीं देना यदि सोता हो तो उसे झटपट न जगावें क्योंकि इससे वह डर जाताहै और झट ऊपरको न उठावे और झटसे न नीचेको करे इससे वायुके विघातका भय होताहै और अतिछोटे बच्चेको बिठावेंभी नहीं क्योंकि बिठानेसे बच्चा कुबडा न होजावे यह भय होताहै तथा बालकके चिरजीवनकी वांच्छावाले माता पिता नित्य बालकके अनुकूल और प्रिय सैंकडों यत्न करें ॥ ५९ ॥

एवमनभिहतमनास्त्वभिवर्द्धते ॥ नित्यमुदग्रसत्वसंपन्नो नीरोगः सुप्रसन्नमनाश्च भवति ॥ ६० ॥ वातातपविद्युत्प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थानगृहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्च बालं रक्षेत् ॥ ६१ ॥

ऐसे उपरोक्त वरताव करनेसे बालक अरुद्धचित्त रहकर दिन प्रति दिन वृद्धिको प्राप्त होताहै तथा सत्वसंपन्न निरोगी तथा प्रसन्नचित्त रहताहै ॥ ६० ॥ तथा बालकको तीक्ष्ण पवन धूप बिजलीके चमके वृक्ष बेल सूने स्थान नीचेस्थान (गढ़े आदि) और गृहछाया (दीवालोंकी परछांही) इनसे रक्षा करे अर्थात् इनसे बचाया रक्खें तथा खोटे ग्रहोंकी घात और उपसर्ग (उपद्रव) इनसे भी बचा रक्खे ॥ ६१ ॥

नाशुचौ विसृजेद्बालं नाकाशे विषमे न च ॥ नोष्ममारुतवर्षेषु रजोधूमोदकेषु च ॥ ६२ ॥

बालकको अशुद्ध जगह (पाखाने मोरी आदिके पास) नहीं छोडे तथा ऊपर खुली छतोंपरभी न छोडें तथा जहां ऊंची नीची जगह हो वहांभी न छोडे तथा गरम हवा (लू) अथवा गरमी हवा तथा वरसते मेहमें धूल उडतेमें और तालाव नदी आदिके पासभी नहीं जानेदेवे ॥ ६२ ॥

क्षीरसात्म्यतया क्षीरमाजं गव्यमथापि वा ॥ दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानां वीक्ष्य मात्रया ॥ ६३ ॥

बालकोंको दूधही सानुकूल होता है इससे यदि दूध पिलानेवालीके स्तनोंमें तृप्तिके योग्य दूध न हो तो बकरी अथवा गौका दूध जो उचित हो मात्राके अनुसार बालकोंको पिलाना चाहिये ॥ ६३ ॥

अन्नप्राशन ।

षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च ।नित्यमवरोधरतश्च स्यात् कृतरक्षः उपसर्गभयात् प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवंति ॥ ६४ ॥

छठे महीनेमें बालकको अन्न प्राशन करावे जो अन्न बालकको दे वह हलका पतला और हित होना चाहिये तथा सदैव बालकके पास कोई न कोई मनुष्य रहना चाहिये तथा उपसर्ग (उपद्रवों) के भयसे सदा रक्षित रखना चाहिये क्योंकि बालक यत्नपूर्वक ग्रह और उपद्रवोंसे रक्षा करने योग्य होते हैं ॥ ६४ ॥

बालग्रहपीडितके सामान्य लक्षण ।

अथ कुमार उद्विजते त्रस्यति रोदिति नष्टसंज्ञो भवति नखदशनैर्धात्रीमात्मानं च परिणुदति दंतान् खादति कूजति जृंभते भ्रुवौ विक्षिपन्यूर्द्ध्वं

(श्लो० ६३) आस्तन्यपर्य्याप्तेरिति यावत् स्तन्यस्य पर्याप्तिर्भवति अथवा यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावत् (इति नि० सं०) ॥

निरीक्षते फेनमुद्वमति संदष्टौष्ठः क्रूरो भिन्नामवर्चा दीनार्तस्वरो निशिजागर्ति दुर्बलो म्लानांगो मत्स्यछुछुंदरिगंधो यथा पुरा धात्र्याः स्तन्यमभिलषति तथा नाभिलषतीति सामान्येन ग्रहोपसृष्टलक्षणमुक्तं विस्तरेणोत्तरे वक्ष्यामः ॥ ६५ ॥

जब बालकको बालग्रहों (पूतना आदि) की छायाजनित पीडा होती है तौ उसके सामान्यतासे ये लक्षण होते हैं यथा बालक उदास रहता हो भयभीतसा रहता हो अधिक रोया करता हो कभी नष्टसंज्ञ (गाफिल) हो जाता हो अपने देह अथवा दूध पिलानेवालीको नखों या दातोंसें नोचता हो दांत चबाता हो पीडासे दुःशब्द करता हो जमाही जादा लेता हो भ्रुकुटी टेढी रखता हो ऊपरको देखता हो मुँहसे झाग अति हो होठ काटता हो कठोर हो जाता हो मल और आमके फटे दस्त अति हो दीन दुखीकेसीवाणी हो रातको जागता हो दुवला और ढीला शरीर हो जाता हो मछली छछूंदर जैसी गंध आती हो पहले जैसे दूध न पीता हो ये सामान्यतासे बालग्रहोंसे पीडितके लक्षण कहे हैं विस्तारसे उत्तर तंत्रमें (पूतना अंधपूतना शकुनी आदि) सबके लक्षण यत्न आदि कहेंगे (देशभाषामें ग्रहजनित पीडाको मसाणियां रोग कहते हैं) ॥ ६५ ॥

शक्तिमंतं चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत् ॥ अथास्मै पंच विंशति वर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति ॥ ६६

जब बालककी अवस्था छः वर्षकी हो जाय तब इसे शक्तिमान् जानकर (अर्थात् निर्बल रुग्ण तो नहीं है ऐसा विचार कर) वर्णके अनुसार ब्राह्मण हो तौ ब्रह्मविद्या वेद क्षत्रिय हो तो धनुर्विद्या वैश्य होय तो व्यापार विद्या शूद्र हो तौ शिल्प अथवा समयानुकूल जैसी विद्या उनके कुलमें प्रवर्त हो वैसी विद्या पढाना आरंभ करें फिर जब पुरुषकी अवस्था २५ पच्चीस वर्षकी हो तब इसका १२ वर्षकी स्त्रीसे विवाह करना चाहिये ऐसा करनेसे पित्र्य (पितरोंको जो हित हो श्राद्धादिकी योग्यता) तथा धर्म (श्रुतिस्मृतिविहित यज्ञादिका अनुष्ठान) और अर्थ (द्रव्य) काम (मनोरथादि इंद्रियानुकूल सुख) और प्रजा (संतान) इन सबको प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥

छोटी अवस्थामें गर्भाधानका निषेध ।

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ॥ यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सं

(मू० ६६) यथावर्णं ब्राह्मणः त्रयीं राजन्यो दंडनीतिं वैश्यो वार्तां इति डल्हणः शूद्रः शिल्पादिकमित्यन्ये [illegible] नहीं [illegible] मनुः त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीमिति ॥

विपैंद्यते॥ ६७ ॥ जातो वा न चिरं जीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेंद्रियः ॥ तस्मादत्यंतबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ६८ ॥

सोले वर्षकी अवस्थासे छोटी स्त्रीके पच्चीस वर्षकी अवस्थासे छोटा पुरुष गर्भाधान करे तौ वह गर्भ कुक्षिहीमें विकारको प्राप्त होकर खंडित हो जावे और यदि पूरा होकर बालक जन्मभी लेवे तौ दीर्घायु नहीं होवे (बहुत दिन न जीवे) और जो जीवेभी तौ दुर्बल इंद्रियोंवाला (कमजोर) ही रहता है इस कारण अत्यंत छोटी अवस्थावाली स्त्रीमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥ ६७ । ६८ ॥

अतिवृद्धायादीर्घरोगिण्या मन्येन वा विकारेणोपसृष्टायां गर्भाधानं नैव कुर्वन्ति पुरुषस्याप्ये वंविधस्य त एव दोषाः संभवंति ॥ ६९ ॥

अति वृद्धा (बुढी) और दीर्घ रोग (क्षयी श्वासादि) से पीडिता तथा अन्य विकारसे युक्ता स्त्रीमेंभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये (क्योंकि वृद्धाकी संतान सत्वहीन और रोगवतीकी रोगयुक्त होतीही हैं) तथा ऐसे अति वृद्ध और दीर्घरोगी आदि निंद्य पुरुषोंकोभी गर्भाधान करनेका निषेध है क्योंकि उनमेंभी वही दोष होते हैं ॥ ६९ ॥

गर्भस्राव आदिकी चिकित्सा ।

तत्र पूर्वोक्तकारणैः पतिष्यति गर्भे गर्भाशयकटीवंक्षणबस्तिशूलानि रक्तदर्शनं च तत्र शीतैः परिषेकावगाहप्रदेहादिभिरुपचरेज्जीवनीयशृतक्षीरपानैश्च ॥ ७० ॥ गर्भस्फुरणे मुहुर्मुहुस्तत्संधारणार्थं क्षीरमुत्पलादिसिद्धं पाययेत् ॥ ७१ ॥

पूर्वोक्त कारणोंसे यदि गर्भ गिरने लगे तौ उसके पूर्व गर्भाशय कमर नले बस्ति इन स्थानोंमें पीडा होने लगतीहै और रुधिर आता दिखाई देताहै इस अवस्थामें शीतल तरड़े देना स्नान करना और लेपका उपचार करें और जीवनीय गणसे सिद्ध किया दुग्धपान करावें ॥ ७० ॥ बारबार गर्भ चलायमान होवे तौ उसको स्थितिके लिये उत्पलादिगण (यह पहले कह चुके हैं) से सिद्ध किया हुवा दुग्ध पिलावें ॥ ७१ ॥

प्रस्रंसमाने सदाहपार्श्वपृष्ठशूलासृग्दरानाहमूत्रसंगाः स्थानात्स्थानं चोपक्रामति गर्भे कोष्ठे संरंभस्तत्र स्निग्धशीताः क्रियाः॥ ७२ ॥ वेदनायां

(पा० ७२) तत्र उभयत्र ॥

महासहाक्षुद्रसहामधुकश्वदंष्ट्राकंटकारिकासिद्धं पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत्। मूत्रसंगे दर्भादिसिद्धम्। आनाहे हिंगुसौवर्चललशुनवचासिद्धम् ७३

जब गर्भ झिरने लगे तब दाहयुक्त पँसलियोंमें पीठमें शूल होताहै और रुधिर बहने लगताहै अफरा होजाताहै और मूत्र बंध होजाताहै जब गर्भ एक स्थानसे छूटकर अन्य स्थानमें चलायमान होने लगताहै तब उदरमें अति पीडा होतीहै इस अवस्थामें चिकनी और शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ ७२ ॥ गर्भाशयमें पीडा हो तौ महासहा (माषपर्णी) क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी) मुलहटी गोखरू कटेली इनसे सिद्ध किया हुवा दुग्ध खांड और शहत मिलाकर पिलावें यदि मूत्र रुकजावे तौ दर्भा आदिका सिद्ध किया दुग्ध (या जलमें कल्क करके) पिलावे यदि अफरा होतौ हींग सौंचरनमक ल्हसन और वच इनका उपयोग करें ॥ ७३ ॥

अत्यर्थं स्रवति रक्ते कोष्ठागारिकागारमृत्पिंडसमंगाधातकीकुसुमनवमालिका गैरिक सर्जरसरसाञ्जनचूर्णं मधुनावलिह्याद्यथालाभं न्यग्रोधादि त्वक्प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेदुत्पलादिकल्कं वा। कशेरुशृंगाटकशालूककल्कं वा शृतेन पयसोदुंबरफलौदककन्दक्काथेन वा शर्करामधुमधुरेण शालिपिष्टं। न्यग्रोधादिस्वरसपरिपीतं च वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत् ॥ ७४ ॥

जो रुधिर अत्यंत बहताहो तो कोष्ठागारिका (भृंगीनाम परंद कीडा जो मट्टीका घर बनाता है) उसके घरकी मिट्टी लज्जालू धायके फूल तथा नवमालिका पुष्पवृक्ष गेरु राल और रसौत इनका चूर्ण शहतसे चटावें अथवा न्यग्रोधादिगणमेंसे जो मिलसके उनकी छाल और कोमल पत्तोंका कल्क दूधके संग पिलावें अथवा उत्पलादि गण (कमल आदि) का कल्क दूधके संग पिलावें अथवा कसेरू सिंघाडे और शालूक (कमलकी जड) इनका कल्क गरम दुग्धके संग पिलावें अथवा गूलरके फल और जलके कंद इनके क्राथको खांड शहतसे मीठा करके पिसे चावलोंके संग पिलावें अथवा गूलर आदिका रस निचोड़कर उसमें कपडेका टुकडा खूब तर करके उसे योनिमें धारण करें ॥ ७४ ॥

अथास्य शोणितवेदनायां मधुकदेवदारुपयस्यासिद्धं पयः पाययेत् तदेवाश्मन्तकशतावरीपयस्यासिद्धं विदारिगंधादिसिद्धं वा। बृहती

(श्लो० ७३) महासहा माषपर्णी क्षुद्रसहा मुद्गपर्णी (इति ग्र. स्तो.)॥

(श्लो० ७४) कोष्ठागारिकागारमृत्पिंडं इति कोष्ठागारी कृमिविशेषः तदागारमृत्तिकापिंडम्। औदककंदाः कशेरुकशालूकादयः ॥

द्रुयोत्पलशतावरीसारिवापयस्यामधुकसिद्धं वैवं क्षिप्रमुपक्रांतायाउपा-
वर्तन्ते रुजो गर्भश्चाप्यायते ॥ ७५ ॥

जो रुधिर नही दीखे और वेदना होवे तौ मुलहटी देवदारु पयस्या अर्कपुष्पी इनसे सिद्ध किये हुवे दुग्धको पिलावें अथवा अश्मंतक शतावरी और अर्कपुष्पीसे सिद्ध किया दूध पिलावें अथवा विदारीगंधा आदिसे सिद्ध किया दूध पिलावें अथवा दोनों कटेहली कमल शतावरी सारिवा अर्कपुष्पी और मुलहटी इनसे सिद्ध किया हुवा दूध पिलावें इस प्रकार शीघ्र यत्न किया जानेसे रोग निवर्त होजाते हैं और गर्भ परिपूर्ण होता हैं ॥ ७५ ॥

व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोदुंबरशैलाटुसिद्धेन पयसा भोजयेत् ॥ ७६ ॥
अतीते लवणस्नेहवर्ज्याभिर्यवागूभिरुद्दालकादीनां पाचनीयोपसंस्कृताभि-
रुपक्रमेत यावंतो मासा गर्भस्य तावंत्यहानि ॥ ७७ ॥

यदि गर्भ ठहर जावे तौ गौके दूधमें कच्चे गूलरके फल सिद्ध करके खिलाते रहैं ॥ ७६ ॥ और यदि नहीं ठैरे गिरपड़े तौ लवण और चिकनाईसे वर्जित उद्दालक धान्यकी यवागूको पाचनीय द्रव्योंसे संस्कार करके जितने महीनेका गर्भ गिरे उतने दिनतक पिलावें ॥ ७७ ॥

बस्त्युदरशूलेषु पुराणगुडं दीपनीयसंयुक्तं पाययेदरिष्टं वा ॥ ७८ ॥ वातोपद्र-
वगृहीतत्वात्स्रोतसां लीयते गर्भः सोतिकालमवतिष्ठमानो व्यापद्यते तं
मृदुना स्नेहादिक्रमेणोपचरेत् उत्क्रोशरससंसिद्धामनल्पस्नेहां यवागूं पाय-
येत् माषतिलबिल्वशलाटुसिद्धान् वा कुल्माषान् भक्षयेन्मधुमाध्वीकं
चानुपिबेत्सप्तरात्रम् ॥ ७९ ॥

बस्तिस्थान और पेटमें शूल हो तौ पुराने गुडको दीपनीय द्रव्योंसे युक्त करके पिलावें अथवा अभयादिकका अरिष्ट पिलावें (अरिष्ट शब्दसे मद्यभी कई अर्थ कर-तेहैं) ॥ ७८ ॥ जब गर्भमें स्राव आदि उपद्रव होतेहैं तौ वायुके उपद्रवोंसे संगृ-हीत गर्भ सुकडकर स्रोतोंमें लय होजाताहै (बधता नहीं दीखता) फिर बहुत समयतक कुक्षिमें पड़ा रहनेसे नष्टभी होजाताहै इसे कोमल २ स्नेहादिकसे उपचार

(वा० ७५) अश्मंतकः कोविदारः । पयस्या अर्कपुष्पी ।
(वा० ७६) व्यवस्थिते स्रावादिविकारानंतरं स्थिते गर्भे । क्षीरपाकविधिं तंत्रांतरात् ज्ञेयं यथा द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषे कर्तव्यः क्षीरपाकेत्वयं विधिः ॥
(वा० ७७) अतीते पतिते । उद्दालकः अरण्यकोद्रवः इति दक्षः । यवागूदाने क्रमः पूर्वं कार्यः ॥
(वा० ७८) दीपनीयसंयुक्तं पंचकोलचूर्णसंयुक्तम् । अरिष्टं अभयारिष्टादिकम् ॥
(वा० ७९) वातोपद्रवैः शुष्कत्वात् । मृदुना अतीक्ष्णेन स्नेहेनोपचरेत् [illegible]
उत्क्रोशः कुररभेदः पक्षिविशेषः । अनल्पस्नेहां बहुस्नेहाम् (कि. स.) ॥

करे और उत्क्रोश (कुरर) पक्षीके मांसके रसमें सिद्धकरी हुई यवागू जिसमें कम-चिकनाई नहो उसे पिलाया करें तथा उड़द तिल और कच्चे बिल्व इनसे सिद्ध की हुई कुल्माष (बाकली) खिलावें और ऊपरसे सात दिनतक महुवेका मधु पिलावे ॥ ७९ ॥

कालातीतस्थायिनि गर्भे विशेषतः सधान्यमुदूखलं मूशलेनाभिहन्याद्विषमे वा यानासने सेवेत ॥ ८० ॥ वाताभिपन्न एव शुष्यति गर्भः स मातुः कुक्षिं न पूरयति मंदं स्यंदते च तं बृंहणीयैः पयोभिर्मांसरसैश्चो पक्रमेत् ॥ ८१ ॥

जो प्रसवके दिनोंसे अधिक गर्भ कुक्षिमें रहे अर्थात् दशम मास पूर्ण होनेपरभी प्रसव न हो तौ विशेष करके यह यत्न करावें कि ऊखलमें धान्य भरकर मूशलसे गर्भवतीसे कुटवावें अथवा ऊंट, गाडीकी सवारीमें बिठाकर टहलावें वृद्धवाग्भट इसको विरुद्ध कहते हैं देखो टिप्पणी) ॥ ८० ॥ वायुसे व्यापन्न हुवा जो गर्भ है सो सूख जाता है वह माताकी कुक्षिको पूर्ण नहीं करता है मंद गतिसे फरकता है उसे बृंहणीय (पुष्टिकारक) दूध मांसके रसों इत्यादिसे उपचार करना चाहिये ॥८१॥

शुक्रशोणितं वायुनाभिप्रपन्नमवक्रांतजीवमाध्मापयत्युदरं तत्कदाचिद्यदृच्छयोपशांतं नैगमेयापहृतमिति भाषंते तमेव कदाचित् प्रलीयमानं नागोदरमित्याहुस्तत्रापि लीनवत् प्रतीकारः ॥ ८२ ॥

कभी ऐसाभी होता है कि शुक्र शोणित वायुसे दूषित हो जाते है तौ गर्भमें जीव नहीं पड़ता है वह पेटको फुला देता है कभी यह आपही शांतभी हो जाता है इसे नैगमेय ग्रह करके अपहृत है ऐसा कहते हैं कभी ऐसे प्रलीयमान गर्भको नागोदर भी कहते हैं यहांपरभी लीनके सदृश यत्न करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अत ऊर्द्धं मासानुमासिकं वक्ष्यामः । मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ॥ अश्मंतकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ८३ ॥ वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा ॥ अनंता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ ८४ ॥ बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुंगास्त्वचो घृतम् ॥ पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ८५ ॥ शृंगाटकं बिसं द्राक्षा

(सा० ८०) मुसलेनोदूखले धान्यपूर्णमाहन्तीर्यमिति तत्तु न सम्यक् दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्याः [illegible] विशेषतश्च प्रसवकाले प्रवक्तिमवर्जयेन्मातुर्दोषायाः सौकुमार्यात्तत्रार्याः मुसलव्यायामेनेरितो वायुर-[illegible] हिंस्यादिति (मुसलं अयनी न कुर्यात) (वृ. वा.) ॥

कशेरुर्मधुकं सिता ॥८६॥ वैत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः ॥ ८७ ॥

इसके अगाड़ी प्रतिमास गर्भविकार अर्थात् गर्भस्रावका यत्न लिखते हैं प्रथम महीनेमेंही रक्तदर्शन हो तौ मुलहटी शाकवृक्षके बीज पयस्या (क्षीरकाकोली) अथवा अर्कपुष्पी और देवदारु . दूसरे महीनेमें गर्भस्रावकी शंका हो तौ अश्मंतक (अम्लोटक जिसके कोविदारकेसे अम्लपत्ते होते हैं) काले तिल ताम्रवल्ली (मजीठ) शतावरी. तथा तीसरे महीनेमें बंदा अर्कपुष्पी लता कमल और सारिवा. तथा चौथे महीनेमें अनंता अनंतमूल (या दूर्वा) सारिवा रास्ना पद्मा (पद्मचारिणी-याभार्गी) और मुलहटी. पांचवे महीनेमें दोनों कटेली खंभारी क्षीरशुंगा (दूधवाले वृक्षों वटादिकी कोंपल) तज और घृत. छठे महीनेमें पृश्निपर्णी खरेंटी सोहंजन गोखरु और मधुपर्णी ॥ सातवें महीनेमे सिंघाडे कमलकी नाल दाख कसेरु मुलहटी और मिश्री. इस प्रकार जो आधे आधे श्लोकमें कहे हुवे योग हैं उन्हें हे शिष्य यथासंख्य मासमासकेप्रति गर्भस्रावकी शंकामें दूधके संग पिलावे ॥८३॥ ८४॥ ८५॥ ८६॥ ८७ ॥

कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदग्धिकाः॥ मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद्भिषगष्टमे ॥ ८८ ॥ नवमे मधुकानंता पयस्यासारिवाः पिबेत्॥क्षीरं सुंठी-पयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् ॥ ८९ ॥ सक्षीरा वा हिता सुंठी मधुकं सुरदारु च॥एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥९०॥

आठवें महीनेमें गर्भकी नैरोग्यताके लिये कपित्थ (कैथ) बड़ी कटीला बिल्व पटोल ईख और छोटी कटेली इनकी जड़को दूधमें सिद्ध करके वैद्य पिलावे ॥ ८८ ॥ नवम मासमें गर्भकी नैरोग्यताके लिये मुलहटी अनंतमूल क्षीरकाकोली (या अर्कपुष्पी) और सारिवा इन्हें सिद्ध दुग्ध पिलावें तथा दसवें महीनेमें सोंठ और अर्कपुष्पीसे सिद्ध किया दुग्ध पिलावें ॥८९॥ अथवा सोंठ और मुलहटी तथा देवदारु ये दुग्धके संग पिलाना हित हैं इस प्रकार उपचार करनेसे गर्भ परिपूर्ण होता है और पीडाभी शांत हो जाती है ॥ ९० ॥

निवृत्तप्रसवायास्तु पुनः षड्भ्यो वर्षेभ्यः ऊर्द्ध्वं प्रसवमानाया नार्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति ॥ ९१ ॥

(वाक्य ९१) निवृत्तप्रसवा इति । एतेन षड्भ्यो वर्षेभ्यः ऊर्द्ध्वं निवृत्तप्रसवेत्युच्यते तस्याः कुमारोऽल्पायु-तिमर्थे गर्भाशययोन्यादिदोषेण हि निवर्तते प्रसवः (इति डल्हणः) ॥

जिसके पहली संतान होनेसे छह ६ वर्ष उपरांत प्रसव होवे ऐसी स्त्रियोंकी संतान स्वल्पायु होती हैं ॥ ९१ ॥

अथ गर्भिणीं व्याध्युत्पत्तावत्यये छर्दयेन्मधुराम्लेनान्नोपहितेनानुलोमयेच्च संशमनीयंञ्च मृदु विदध्यादन्नपानयोरश्नीयाच्च मृदुवीर्यं मधुरप्रायं गर्भाविरुद्धं च गर्भाविरुद्धाश्च क्रियां यथायोगं विदधीत मृदुप्रायाः॥

यदि गर्भिणी स्त्रीको अत्यंत दारुण व्याधि होजावे और वमनकी अत्यंत आवश्यकता हो तौ मधुर अम्ल अन्नके योगसे मृदु वमन करावें और इसी प्रकार अनुलोमन (कुछ मृदु रेचनादि) भी करे तौ इसी भांति करे तथा संशमन क्रिया करनेकी आवश्यकता हो तौ वहभी मृदुही करे और खाने पीनेमें मृदुवीर्य और थोड़ा मिष्ट तथा गर्भके अनुकूल खानपान रक्खें और यथायोग्य गर्भके अनुकूल और मृदुक्रिया करतेरहें ॥ ९२ ॥

भवंति चात्र ॥ सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्टं मधु घृतं वचा ॥ मत्स्याक्षकः शंखपुष्पी मधु सर्पिः सकांचनम् ॥ ९३ ॥ अर्कपुष्पी मधु घृतं चूर्णितं कनकं वचा॥हेमचूर्णानि कैटर्यः श्वेतादूर्वा घृतं मधु ॥९४ ॥ चत्वारोऽभिहिताः प्राशाः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ॥ कुमाराणां वपुर्मेधा बलबुद्धिविवर्द्धनाः ॥ ९५ ॥

इति सुश्रुते शारीरके दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यहां श्लोक हैं कि सुवर्णका चूर्ण (मृगांक) कूट शहत घृत और वच तथा मत्स्याक्ष (मछेछी) सांखाहूली शहत घृत और सुवर्ण ॥ ९३ ॥ अर्कपुष्पी शहत घृत सुवर्णचूर्ण और वच तथा सुवर्णचूर्ण कैटर्य (पूतिकरंज) सुपेद दूध घृत और शहत ॥९४॥ ये आधे आधे श्लोकके चार योग कहे हैं इनमेंसे किसी एकको प्राशन कराना (चटाना) बालकोंकी देह और धारणा शक्ति तथा बल और बुद्धिको बढाता है॥९५॥

इतिश्री पं० मुरलीधर शर्मराजवैद्यविरचितसुश्रुतसंहितायां सान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्टभाषाटीकायां शारीरकस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(सू० ९२) अत्यये विनाशहेतौ । अत्ययकारिणि व्याधौ मृदुना द्रव्येण वमनादिकार्यमिति । अनुलोमयेच्च इति मधुराम्लेनान्नोपहितेनेति संबंधः ॥

(श्लो० ९३) सुवर्णचूर्णं सुकृतं इत्यनेन मारितं प्रतीयते । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी अन्ये तु रक्तपुष्पमानुषं मत्स्याक्षकमाहुः ॥

(श्लो० ९४) कैटर्यः पर्वनिंबः इति डल्हनः अन्ये पूतिकरंजमाहुः । निबंधसंग्रहे भेषजमात्राज्ञापनार्थं [illegible] यथा [illegible]मात्रं तु आमलकस्य भेषजम् । एतेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धित [illegible] क्षीरादैः कोलमात्रमजादोदुंबरोपमम् इति ॥

शैलाननाधीशसमाश्रितेन वैद्येन नाम्ना मुरली धरेण॥ टीकाकृता सुश्रुत-संहितायाः शारीरकं पूर्तिमगाच्छुभाय ॥ १ ॥

त्रिपंचांकेन्दुमिते १९५३ संवत्सरे चैत्रस्यासितपक्षत्रयोदश्यां समंगलायामिदं सुश्रुतसंहितायाः शारीरकं सान्वयसटिप्पणीकसपरिशिष्टसचित्र भाषाटीकासहितं समाप्तिमगमत् ॥ शुभमस्तु ॥

समाप्तमिदं शारीरकंस्थानम् ॥

सुश्रुत संहिताका शारीरक स्थान समाप्त हुवा इससे अगाडी परिशिष्ट रूपमें डाक्टरी और यूनानी मतसे जुदा शारीरक लिखा जाता है तथा शरीरसंबधी अनेक उपयोगी चित्रभी दिये है जिनसे शरीरके भीतरीभागोंका ठीक २ बोध भले प्रकार हो सकेगा जिससे आशा है कि इस समयके वैद्य विद्यारसिक सज्जनगण मेरे परिश्रमको सफलमान मुझे कृतार्थ करेंगे तथा इसके प्रकाशक विद्योद्धारक श्रीयुत सेट खेमराज श्रीकृष्णदासजीको भी अनेक धन्यवाद देंगे और इसके अगले भाग चिकित्सित स्थान और उत्तरतंत्रभी शीघ्रही प्रकाशित होंगे ॥

निवेदक मुरलीधर शर्मा.

टीकाकार.

शुभमस्तु.



इति

शारीरकस्थानं

समाप्तम् ।

श्रीः ।

डाक्टरीमतसे शारीरक ।

परिशिष्ट भाग १

प्रगट हो कि हमारे शास्त्रकारोंने शारीरकका वर्णन किया है परंतु भारत वर्षमें यूनानी और डाक्टरीका प्रचार होनेसे बहुधा लोगोंकी तृप्ति उनके मतानुसार विवेचन कियेविना नहीं होती और हमारे शास्त्रोंमें शारीरककी उत्पत्ति और शल्य-क्रियाके उपयोगी मर्मादिका विशेष ब्यौरा लिखा है परंतु आंतर्य अवयव जैसे यकृत प्लीहा वृक्क फुप्फुस आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन, कि अमुक अवयव इस प्रकारका है. यह कार्य करता है इत्यादि बहुत नहीं लिखा उन्होंने सूचना मात्र थोड़ासा लिखा है परंतु समयके अनुसार हरेक बातमें संस्कार होताही रहता है अस्तु, यूनानी लोगोंने शारीरककी विवेचनामें बहुत कुछ उन्नति की है और अपने विज्ञानके अनुसार उसमें बहुत बारीकियां निकाली हैं जिनका परिज्ञान इस समयके चिकित्सकोंको अवश्य चाहिये यद्यपि इस समय डाक्टरीकी प्रधानता सबसे अधिक है परंतु उसका शारीरक यूनानीके शारीरकसे बहुत मिलता जुलता है कारण यह प्रतीत होता है कि ग्रीक अर्थात् यूनानी भाषाके चिकित्सा ग्रंथोंका अनुवाद इधर तो अर्बोंने अपनी अरबी भाषामें कर लिया है और उधर इन्हीका अनुवाद लाटिनमें किया गया है परंच मूल इस विद्याके दो ही हैं या तो भारतके प्राचीन महर्षि वैद्य अत्रि भरद्वाज चरक धन्वंतरि सुश्रुत आदि या ग्रीस देश यूनानके विद्वान् हकीम डाक्टर सुकरात बकरात जालीनूस अरस्तातालीस लुकमान वगैरा ।

यदि कालांतर मतांतर देशांतर और प्रतिभांतरसे चाहो १ व्याधिकी औषधे सैकड़ों हजारों भिन्न भिन्न रीतिपर हों परंच शारीरक अवयवोंका सविस्तर सत्य विज्ञान निस्संदेह सर्वत्र एकहीसा चाहिये खैर कुछी हो हम अपने पाठकोंको अन्यमतीय शारीरकके संक्षिप्त परिज्ञान होनेके लिये उनके मतका सारासार अवश्य लिखना उचित जानते हैं जिनका वैद्योंको विशेष काम पड़ता है मुख्य उन अवयवोंका संक्षिप्त वर्णन करते हैं ॥

डाक्टरीमतसे संक्षिप्त शारीरक ।

शिर– (ब्रेन Brain)

खोपरी यह दो हिस्सोंमें बंटी हुईहै १ का नाम " करेनियम है " दूसरेका नाम " फेस "–" अक्सी फीटल बोन " (गुद्दीकी हड्डी) यह टेढी शकलकी हड्डी

खोपरीके नीचले और पीछले हिस्सेमें है इसके नीचले और अगले हिस्सेके छेदको " फोरामिन मैगनम " कहतेहैं जो खोपरीको " इस पाईनल कनाल " से मिलाताहै " प्राइटल बोन " ये दाहनी और बाँई दो हड्डियां हैं इनसे खोपरीकी छतका मुकद्दम हिस्सा बनताहै--"फ्रांटल बोन" यह खोपरीके सामनेकी दीवार बनातीहैं यह माथेकी हड्डी है--नेत्रगोलकके किनारेका नाम " आरबीटल आरच " है इसके भीतरी तिहाईके सूराखको " फौरमन " कहतेहैं--"टिमपोरल बोन्स" अर्थात् कनपटीकी हड्डी इसीमें कानका छिद्र रहताहै-- " नोजल बोन्स " (नाककी २ हड्डियां) ये दोनों मिलकर नाक बनाती हैं--" इथमाइड बोन " यह छलनीकी शकलकी हड्डीहैं खोपरीके नेत्रमूलके भीतरी भौंके और नाकके गढोंके बनानेमें शामिलहै-- " सुपीरीयर मगजलरी बोन " (चेहरेकी हड्डियां) ये दो हड्डियां मिलकर चेहरेका बड़ा हिस्सा बनातीहै और ऊपरके कुल दांतोंको सहारतीहै और सखंततालू और नेत्रोंके सहन और नाकके संनिकृष्टका भाग बनातीहैं " इनफीरीयर मैगलज बोन " (ठोडीकी हड्डी) यह चेहरेकी सब हड्डियोंसे मोटीहै और मजबूतहै इसकी दो शाखें हैं इनमें नीचेके दांत लगे हुवे हैं सैन्स या नेरासकी हड्डियोंके गार जो तंग सूराखोंके वसीलेसे नाकके जोफसे मिलते हैं " मगजिलरी सैन्स " के सूराख बचपनमें छोटे रहतेहैं बड़े होनेपर बढ जातेहैं बुढापेमें बहुतही चौड़े होजातेहैं इसीसे बुढापेमें बलगम बहुत गिरताहै ।

भीतर दिमागके दो हिस्से हैं १ बडा दिमागका हिस्सा दूसरा छोटा दिमागका बडा हिस्सा अगली तरफ होताहै और छोटा पिछली तरफ इनमें खाकी रंगकी और सुपेद रतूवत रहतीहै " असपाइनल कार्ड " (तुखा) इसका आकार घोड़ेकी दुमकासा है रंग सुपेद चांदीके तारोंकासाहै इसमेंसे सब पठ्ठोंकी जड़ें निकलकर नीचेको जातीहैं यह प्रायः १५ से १८ इंचतक लंबा होताहै यह दिमागके पिछले हिस्सेसे मिला हुवा होताहै सिरमें बहुतसे हड्डियोंके जोड़ बहुतसे परत और बहुतसे पट्ठे सिराये कई विभाग और कई उभार कई गेढ कई जगेंकी कई प्रकारकी द्रव रतूबंतहैं सबका समझना बहुत कठिनहै इसमे कुछ २ सार व संक्षिप्तसा लिखा गया है ॥

दिमागका अन्य शारीरक अवयवोंसे संबंध ।

" सरिबरम " (दिमागका अगला हिस्सा) अकल और होश हवाससे संबंध रखताहै और इनका मूल है क्योंकि जो अधिक बुद्धिमान है उनका दिमागका यह हिस्सा बडा होता है और उनके दिमागके भीतरी गढे गहरे होते हैं और उनकी " कार्न वालोजम " (दिमागके भीतरी उभारें) बडी होती हैं ॥

सरिवरमके जरर पहुँचनेसे दब जानेसे या इसमें बीमारी होनेसे प्रथम होश हवासमें फरक आता है "सरिवरममें" चोट लगनेसे एक या जादा दिमागी कुवतें नष्ट होजाती हैं दिमागकी खाखी रंगकी वस्तुके रोगग्रस्त होनेसे किसी प्रकारका उन्माद होताहै।

दिमागको एक दोहरा अवयव समझो जो भाग शरीरके छाती पेट आदिसे संबंध रखते हैं दिमागमेंभी पासही पास इकट्ठे रहते हैं और जो अलेहदा हिस्सोंसे संबंध रखते हैं जैसे हाथ पांव तो वे दिमागमेंभी हरतरफ जुदेही रहते हैं।

बाईं तरफकी तीसरी " कानवालोशन " के पिछले भागमें बोलनेकी शक्ति रहती है इसमें बीमारी हो तो बोलनेमें तकलीफ हो और दाहनी रुखका हमेप्लीजिया (पट्ठोंमें रोग) होगा अगर उसमें दोनों तरफ खराबी होजावे तो बोलनेका फालिज होवे सरिवरममें एक हलका संचालन शक्तिका मूल हैं उसमें खराबी होनेसे फालिज होता है इस हलकेमें तीन "फ्रांटिल" कानवो लोशंसकी जड़ हैं "एसिंडिंग फ्रांटिल" कानवालोशन का ऊपरी तिहाई हिस्सा बाजूसे संबंध रखता है और इसका ऊपरी पैराइटल कानवालोशन हाथ और कबजेसे तथा " पोस्टीरो पैराइटल लाव्यूल " पिंडली और पाँवसे "एसिंडिंग फ्रांटिल" की बीचकी तिहाई और तीसरी "फ्रांटिल" की जड़ चेहरेके पट्ठोंसे " एसिंडिंग फ्रांटिल " की नीचली तिहाई मुँह और जुवानसे तथा ऊपरी " फ्रांटिल कानवालोशन " और दूसरे फ्रांटिल कानवालोशनकी पिछली तिहाई शिर और नेत्रोंसे संबंध रखती हैं इससे उक्त जगहोंमें खराबी होनेसे उनके संबंधी अवयोंकी संचालन शक्ति नष्ट होजाती है जानना चाहिये कि दिमागके भींतरी भागकी आगली दो तिहाई शरीरकी संचालन शक्तिसे संबंध रखती हैं और दिमागके भींतरी हिस्सेकी पिछली एक तिहाई स्पर्श शक्तिसे संबंध रखतीहै और पिछले भागका प्रभाव हाथके अपेक्षा टांगोंपर विशेष हुवा करता है ऊपर जो संचालन शक्तिका मूल अगली दो तिहाई और स्पर्श शक्तिका मूल पिछली तिहाई कहा उनमें विकार होनेसे दूसरी तरफके अवयवोंकी संचालन शक्ति तथा स्पर्शशक्ति नष्ट होती हैं।

" मिडल्ला आंवलांगेटा " यह दिमागके अगले भाग और नुखाके बीचमें है इससे बड़े२ काम मुतल्लिक हैं इससे इसमें विकार होना जादा हानिकारक है नुखाके ऊपरीभाग और मिडल्लासे श्वासका संबंध पाया जाता है यदि यह विकृत हो जावे या नष्ट हो जावे तो तत्काल श्वास बंध होकर मृत्यु हो जावे दिलका स्फायनाकुंचनसे संबंध रखनेवालेभी दो स्थान हैं एक दिलकी गतिको कम करता है दूसरा गतिको तेज करता है।

सरिबरमका वजन अनुमान मर्दोंके ४४ औंस होता हैं और स्त्रियोंके ३९ औंस तथा सरिबलम (क्षुद्र मस्तिष्क) का वजन अनुमान मर्दोंमें ५ औंस ४ ड्राम और स्त्रियोंमें ४ औंस १२ ड्राम होता है तथा " पांस " और " मिडल्ला आवलांगेटा " भागका वजन अनुमान पुरुषोंमें १५ ड्राम और स्त्रियोंमें पौने सोला ड्राम होता है दिमागमें खाखी रंगकी जिसे १ . ३४ और सुपेद रंगकी जिन्स १ . ४० तथा मनुष्योंके दिमागकी नुखाका वजन अनुमान १ औंससे पौने दो औंसतक होता है हाथीके दिमागका वजन अनुमान ८ से १० पौंडतक पाया गया हैं और बैलके दिमागका वजन अनुमान ५ पौंडके होता है।

एलीमिंटरी कनाल (आहार नलका) Alimentary Canal

यह एक लंबी नली है जो मुंहसे शुरू होकर " म्यूटीरज " में खतम होती है खाया हुवा भोजन इसीमें जाता है इसीमें पकता है इसीसे मल होकर निकल जाता है भोजनका परिपाक इसीपर मुनहसर है या उन गद्ददोंपर जिनकी रतूवत इस नालीमें गिरती है मरी (कंठ नलका)और मेदा (आमाशय) तथा अमआ (अंतडियां) ये सब इसीके भाग हैं यह सब ३० फूटके अनुमान लंबी होती हैं।

इसाफेगस (मरी या कंठ नलका) Œsophagus

कंठ नलकाको अंग्रेजीमें " इसाफेगस " कहते हैं यह गरदनके पांचवें मोहरेके मुकाबिल नरम तालूके नीचेसे शुरु होती है और छातीके बीचकी हड्डी (कौड़ी) के पास मेदेके मुँहसे जा मिली है इसकी लंबाई ९ । १० इंच है यह कुल एलीमिंटरी कनालके भागोंमेंसे तंग भाग है यह ठीक सीधी नीचेको नहीं उतरती है किंतु इसमें थोड़े२ तीन खम पाये जाते हैं इसके आसपास " यूमोगास्टिक " आसाव (पट्ठे) फैले रहते हैं और नीचे सिरेके पास छूरा है भोजन इसी नलीमें होकर मेदेमें जाता है।

इस्टमक (मेदा या आमाशय) Stomach

आमाशय अर्थात् मेदेको अंग्रेजीमें " इस्टमक " कहते हैं यह इसाफेगस अर्थात् कंठ नलकासे नीचे "एलीमिंटरी कनाल" का चौड़ा भाग है भोजन इसमें कुछ ठैरता है और इस जगे की रतूवत " गेस्ट्रकजूस " से मिलकर पतला द्रव पदार्थ बन जाता है यह मेदा " ट्रांसवर्स कोलन " अंतड़ीसे ऊपर पेटकी अगली दीवारके पीछे जिगरसे नीचे है आकारमें सुराहीके समान नीचे चौड़ा है इसका बाँया शिरा बड़ा और नीचेको झुका हुवा है मेदेकी लंबाई अनुमान १० ।१२इंच है और चौडाई करीब चार इंच है खाली मेदेका वजन अनुमान ४॥ औंसके होता है जिस झिल्लीसे यह बना है चार परतवाली है सबसे भीतरी परत म्यूकसकोट (एक नरम हमवार

मोटी झिल्ली) है यह झिल्ली बुढापेमें पतली पड़जाती है जब मेदा खाली होता है इसमें शिकन (सलवटें) पड़जाती हैं मेदेके दो मुँह होते हैं एक ऊपरको जिसमें कंठ नलका खुलती है और भोजन मेदेमें आता है दूसरा दाहनी तरफ नीचेको जिसके राहसे भोजन अध पकासा) अंतडियोंमें जाता है ।

इसमालइंटीस्टाइंस (पतली अँतड़ियां) Small Intestines

ये पतली पेचीदा अंतडियां हैं मेदेके नीचले मुँहसे शुरू होकर पेटके बीचले भागमें रहती हैं इनकी लंबाई अनुमान २० फूटकी है ये लच्छा सा बनाये हुवे हैं यह लच्छा एक बड़ी मोटी आंतसे घिरा है यह लच्छोंकी आंतें तीन भागमें बंटी हैं जिसमें सबसे ऊपरी भागको जो १० । १२ इंच है डिओडिमन कहते हैं बाकीका दो बटे पांच भाग जिज्यूनम कहलाता है और नीचेवाले तीन बटे पांच भागको एलीअम कहते हैं ।

लार्ज इंटिस्टाइंस (मोटी आंतें) Largs Intestines

ये एलीअमसे शुरू होती हैं इसके बड़े तीन भाग हैं प्रथम " सीकम " दूसरा " कोलन " तीसरा " रिकटम " इसकी मुटाई २॥ इंचसे १॥ इंचतक पाई जाती है इसमें लंबे देशोंके तीन बंधसे पाये जाते हैं तथा बहुतसे फुलाव और तंगियां हैं जिससे ऐसा मालूम होता है जैसे कई थैलियाँ जुडी हों ।

" सीकम " यह एलीअमसे नीचे है और सबसे चौडा भाग है जिसकी चौडाई २॥ इंच है और पेटकी अगली दीवारके पीछे रहता है इसके नीचले पीछेके सिरेसे १ तंग गोल लंबी आंतड़ी निकली है जिसे " एपेंडक्स सीसाई " कहते हैं यह छोटी अंगुलीसा गोल है और तीनसे छः इंचतक लंबा होता है खास सीकम और एसिंडिंग कोलनके मिलापपर एक किवाड़ीसी है जो मलको फिर अंदरकी तरफ (एलीअमकी तरफ) नहीं जाने देती ।

" एसिंडिंग कोलन " यह दाहनी तरफ है खास सीकमसे शुरू होकर सीधी ऊपरको चढकर जिगरके सिरेतक पहुँचती है फिर सामने और बायेंतरफ दाहने गुरदेके पास झुक जाती है यह खास सीकमसे कुछ पतला है पर " ट्रांसकोलन "से चौड़ी है इसके सामने एलिअमके लच्छे हैं ।

" ट्रांसवर्स कोलन " यह भाग दाहने गुरदेके पाससे शुरू है पेटकी पिछली दीवारके पास आड़ा रहता है बायें गुरदेतक मररावसा बनकर आता है इसके ऊपर जिगरका नीचला शिरा गालब्लाडर मेदा और तिल्लीका नीचला हिस्सा रहता है इसके नीचे एलिआमके पेचदार लच्छे हैं ।

" डिसेंडिंग कोलन " यह ट्रांसवर्सकोलनसे शुरू होकर यकायक नीचेको झुक आती है यह बाईतरफ रहती हैं ।

" रिकटम " रोदामुस्तकीम यह सबसे नीचेका भाग है यह पहले बांई तरफसे जरा दाहनी तरफ झुककर टेढा होकर फिर अनुमान सीधासा नीचे उतर आता है और गुदातक पहुँचता है इसमेंभी थोड़े २ तीन खम पाये जातेहैं इसके बीचके खमके मुकाबिल मर्दोंके मसाना और स्त्रियोंके " यूट्रस " योनि गर्भाशयद्वार होता है इसमें मल भर जाता है तब दस्तकी हाजत होती है ॥

श्वाससंबंधीअवयव लेरिंक्स (हंजरा)

यह श्वासके रास्तोंका ऊपरी भाग है इसकी लंबाई १॥ इंच और चौड़ाई १ इंच है मुँह और नाकसे इसमें हवा पहुँचती है और आवाज (शब्द) पैदा करती है यह गरदनके ऊपरी भागके अगली तरफ है यह नरम तालूके नीचेसे आहार नलकासे पृथक् होतीहै इसके नीचे एक और खमहै जो इससे कुछ चौड़ा है इसके नीचे कई कुर्रियां सीधी खमदारहैं और कई गद्दुद हैं इसके नीचे ट्रेकिया है ।

ट्रेकिया यह दोनोंके फेफडोंमें हवा जानेका रास्ताहै और लेरिंक्स (हजरे) से शुरू होकर दो भागोंमें दाहने और बाँये वरांकस (   ) में बटजाता है इसकी लंबाई साढे चार इंच और चौड़ाई पौन इंचहै इसके पीछली तरफ इसाफिगस आहारनलका अर्थात् मरी अलेहदा है ।

लंग्स (फेफड़े Langs)

फेफड़े दोहैं और दिल (हृत्कमल) के और बडे करूकके दाहनी और बांई तरफ सीनेके अंदर रहतेहैं और ऊपरसे दोनों जुड़े हुवेहैं पर नीचे जुदे जुदे होगयेहैं ऊपरको जहांये जुड़े हैं वहां " प्लूरा " नामक दो बंधसी रस (थैलियां) सीनेके दाहनी और बांई पहलुवोंके अंदर रहतीहैं हरेक फेफड़ा सूरतमें मक्खीके छनेकी तरहका रूपमे चौड़ा नीचे तंग होता गयाहै इसका वजन अनुमान ३० से ३८ औंसतक पाया जाताहै दोनों फेफड़ोंमेंसे दाहना कुछ बडा होताहै अगर दोनों ४२ औंसहों तो दाहना २२ और बांयां २० औंस समझिये फेफड़े स्पिंज जैसे फोफ जैसे इनमें फैलाव सुकड़ाव बहुतहै बचपनमें फेफडे हलके सुर्ख गुलाबी खूनके आगमें होतेहैं पर ज्यों ज्यों उमर बढतीहै इनमें स्याही आ जातीहै श्वासकी हवा इनमें दाखिल होकर दिलको लताफत पहुंचातीहै और जब वह अंदरकी हवा गरम और गलीज होजातीहै तब बाहर निकलनेपर तगाजा करतीहै और उसकी जगह और ताजा हवाकी जरूरत पड़तीहै इसी प्रकार वायुका आना और जाना लगातार बना रहताहै और यही जिंदगीका मूलहै ।

हार्ट (दिल Heart यह दोनों फेफड़ोंके बीच सीनेमें रहता है " प्रीकार्डियम नामक गशा (झिल्ली) से ढका हुवा है यह झिल्ली दिलसे २। २॥ इंचके फासले तक दिलके बड़े अरुकको ढके हुवे है दिल सीनेके बीच जरा बाँई तरफ झुकाहुवा यूं रहता है कि बाँई तरफ ३ इंच और दाहनी तरफ १॥ इंच दिलके गिरद बहुतसी नालियां हैं जिनमें इसके परवरश करने वाले आसाव (पट्ठे) आदि हैं इनके सिवाय और बहुत शिरायें इसमें श्यामिल होती हैं दिलके " विंट्रीकिल " में दो सुराख पाये जाते हैं और इनपर किवाड़ियांसी पाई जाती हैं ये किवाड़ियां दम बदम खुलती मिचती रहती हैं इनके राह दिलमें खून आता जाता है जिगरसे ताजा खून दिलमें पहुँचकर और अवयवोंमें यहांहीसे पहुँचता है दिल एक लंबी लकीरसे दो भागमें बटा है दाहना भाग दूसरा बायां फिर एक आडीलकीरसे इसके दो हिस्से हुवेहैं इनमेंसे ऊपर वालेको " आरीकल " और नीचे वाले खानेको " विंट्रीकल " कहते है दिलका बेस खूनी अरूक से जुडा हुवा है बाकी "प्रीकार्डियम " मे लटका हुवासा है।

स्वस्थ मनुष्यका दिल ५इंचलंबा और ३॥ साटी तीन इंच चौड़ा और ढाई इंच मोटा होता है वजन अनुमान १० औंस और स्त्रीका ९. औंस होता है यह शरीरके १६० वें भागके समान होता है " रायट आरीक्युलो विंट्री क्यूलर आरी फस " यह सूराख " सटरनम " के पीछे उस लकीर पर है जो कि चौथी पसलिकी कुरियों और सटरनमके जोड़के नीचले किनारे पर खिचती है पल मोनरी शिरयान की किवाड़ियां संटरनम पास दूसरी और तीसरी बाई पसलियों की कुरियोंके मध्यके पीछे हैं–" आयार्टा " की किवाडियां सटरनम और उसके बायें किनारेके पीछे तीसरी पंसलीकी कुरीके मिलायके मुकाबिल हैं–पलमोनरी सूराख दिलके कुलदरबाजोंसे ऊंचा और सामने है–" आयार्टिक " सूराख पलमोनरी शिरयानके सूराखके पीछे और जरा नीचे है।

लिवर (जिगर) Liver

इसमें " वाइल " (पित्त) पैदा होता है और यह खूनको बनाता और साफ करता है जिगरकी लंबाई दाहनेसे बांये सिरेतक १० या १२ इंच और चौडाई पिछले किनारेसे अगलेतक ६ । ७ इंच और मुटाई अनुमान सारे तीन इंचके होती है इसका घनात्मक अनुमान कुल १०० इंच घनके होता है वजन ५० से ६० औंसतक पाया जाता है यह वास्तवमें कुल देहके ३६ छत्तीसवें भागके बराबर होता है यह ठोस है इसका रंग भूरा सुरखी लिये होता है इसका ऊपरला भाग चिकना और लजलजासा होता है और " प्रोटोनियम " झिल्लीसे ढका हुवाहै

" फालसी फारम " नामक झिल्लीसे इसके दो विभाग जुड़े हुवे होते हैं नीचेकी तरफ इसमें ५ " लीव " और फिशर (अंकुर) होते हैं जिगरका स्थान मेदेके ऊपर दाहनी तरफ छठी सातवीं पँसलीके मुकाबिल है जब मनुष्य सीधा बैठता या खड़ा होता है तो जिगरका कुछ भाग पँसलियोंसे नीचेभी आजाता है पर लेटनेके समय अनुमान एक इंच ऊपरही रहता है ।

गाल ब्लेडर (पित्ता मरारा) Gall bladder

यह नासपाती नुमा थैली तीन चार इंच लंबी और डेढ इंच चौड़ी होती है इसमें आठसे १२ ड्रामतक सफरा जमा रहता है यह जिगरके दाहने लोथड़ेके नीचेवाली जगहपर तिरछी रहती है इसके नीचेकी भूमिपर " प्रोटोनियम " ढका हुवा है जिस जगह गालब्लेडर रहता है उस गढेको " फासा सिसटिक फिली " कहते हैं इसका स्थान दसवीं दाहनी पंसलीकी नोकके मुकाबिलसे शुरू होता है और पेटकी भीतरी त्वचासे आ मिलता है इसके नीचे " ट्रासवर्स कोलन " नामक आंत है इसकी गरदन दुहराखमखाकर नीचेको झुककर " सिसटिक डैक्ट " में मिलती है यह " सिसटिक डैक्ट " अनुमान डेढ इंच लंबी है नीचे बाँई तरफ जाकर " हियाटिक डेक्ट " से मिलकर " कामन वाइल डेक्ट " बनाताहै यह दो तीन लाइन चौड़ा और तीन इंच लंबाहै यही सफरा (पित्त) को " डियोडा नम " में पहुँचाताहै और जब आंतोंमें सफराकी जरूरत नहीं होती तब सफरा " हियाटक डैक्ट " से " सिसटिक डेक्ट " में जाकर " गाल ब्लेडर " में पहुँच कर वहांही जमा रहताहै और जब हाजमेके समय आंतोंमें सफरा (पित्त) की जरूरत होतीहै तो " सिसटिक डैक्ट " की राहसे निकलकर वहां दाखिल होताहै

स्पलीन (तिल्ली)Spleen

यह नरम लजलजा अवयव है इसका रंग नीला बैंगनी खाखीसा है यह खूनके दुरुस्त करने और " कारपसक्लिस " के बनानेमें काम आती हैं इसका आकार अंडाकृति है यह पेटमें बांई तरफ मेदेके पास खडीसी रहती है स्थान इसका नवी दसवी ग्यारवी पंसलियोंके मुकाबिल है इसका प्रमाण सबके एकसा नहीं होता पर सामान्यतः पांच इंच लंबी चार इंच चौड़ी और डेढ इंच मोटी होतीहै वजन पांचसे सात ओंसतक होता है पर किसी किसीके इतनी बढ जाती है १८ । २० पौंडतक हो जाती है ।

पैंक्रआस (लवलवा) Pancreas

यह एक पतली लंबी चिपटी गद्दूद पेटमें मेदेके पीछे पहले लंबरके मोहरेके मुकाबिल आड़ी पड़ी रहती है इसका बांया तंगसिरा तिल्लीसे मिला हुवा रहता है

इसकी लंबाई छहसे ८ इंचतक होती है और चौड़ाई डेट इंच तथा मुटाई एक इंचके अनुमान होती है और वजन इसका ढाईसे साढेतीन औंसतक होता है इसमें जो रतूवत होती है उसे " पैनकिरयाटक जूस " कहते हैं यह रतूवत साफ होती है और इसमें खारकी तेजावी कैफियत होतीहै यह हाजमेको ठीक और तेज करतीहै ॥

यूरेनरी आरगेंस (मूत्रसंबंधी अवयव) किडनी (गुरदे) Kidney

गुरदोंमें पेशाव पैदा होताहै और "यूरेटर" की राह मसानेमें आकर जमा रहताहै और उसमें " यूरेथरा " के जरिये निकलताहै ॥

गुरदे दो हैं एक दाहनीतरफ दूसरा बांईतरफहै हरएक " वर्टिवलकालम " के एकतरफ " प्रोटोनियम " के पीछे पेटमें गहरा रहताहै यद्यपि गुरदोंका प्रमाण सबके बराबर नहीं होता परंतु अनुमानसे हरेक गुरदा चार इंच लंबा ढाई इंच चौड़ा और सवा डेढ इंच मोटा होताहै बांयां गुरदा जरा लंबा और पतला होताहै और दाहना जरा छोटा और चौड़ा होताहै हरेक गुरदेका वजन मर्दोंके साढे चार औंसके अनुमान होताहै और स्त्रियोंके इससे कुछ कम । दाहना गुरदा जिगरकी नजदीकीके सबब बाँयेंसे कुछेक नीचे है गुरदोंका रंग गहरा सुरख होताहै और आकार जरा उभरा हुवासा चिपटाहै दाहने तरफ गुरदेके सामने " डिओडियम " और " एसिंडिंगकोलन " है और बाँये तरफके गुरदेके पास " डीसिंडिंगकोलन " है और दाहने गुरदेका ऊपरी अगला भाग जिगरके नीचले भागके निकटहै और बाँयेंका ऊपरी अगला हिस्सा तिल्लीके पासहै ॥

यूरेटर हालवां (मूत्रकी २ नालियां)

ये दो नालियां चौदेसे सोले इंचतक लंबी और परकी कलमजैसी मोटी होतीहै ये गुरदोंसे मूत्रको मसानेमें पहुँचातीहैं और तिरछे तौरसे मसानेकी दीवारोंमें थोड़ी दूर जाकर उसके पिछले और नीचले हिस्सेमें खुलतीहैं ॥

यूरेनरी ब्लैडर (मसाना) Bladder

यह एक खोखली झिल्लीकी थैलीसीहैं इसके अंदर मूत्र जमा होताहै यह बचपनमें गावदुम होताहै और पेटमें नाफके नीचे रहताहै मसानेकी शकल खाली तथा भरे होने आदिमें एकसी नहीं होती यह खाली तिकोनासा होताहै और जब मूत्रसे भरताहै तो गोल होजाताहै और जब खूब जादा भर जाताहै तब अंडेकी सूरत हो- जाताहै और तन जाताहै और पेटमें ऊपरको चढताहै और इसका बडासिरा स्त्रियोंके " वैजाइना " और मरदोंके " रेकटम " अतड़ीपर ठैरताहै सामान्यतासे मूत्रका अनुमान २४ घंटेमें ४० से ५० औंसतक होताहै पर गरमीकी ऋतुमें पसीना अधिक

आनेसे मूत्र कुछ कम होताहै मूत्रके रासायनिक भाग यूं है कि एक हजारमें ९३३ भाग पानी और ६७ भाग सकील चीजें और उन सकील चिजोंके सौ १०० भागमेंसे यूरिया ४२ · ६८ यूरकएसिड १ · ६१ एमोनायाकल साल्टस (एक नमक) और कलाएइड सोडियमसज्जी २८ · ९५ एलकेलायन सलफेट ११ · ५८ एलकेलायन फासफेट ५ · ९५ मासफेटलाइम (चूना) और मेगनेशिया १ · ५० भाग होतेहैं।

पैनिस (लिंग) और मूत्रनलका यूरेथरा । Pneis

मूत्रनाली (यूरेथरा) यह मसानेकी गरदनसे शुरू होकर लिंगके सिरेतक पहुँचतीहै इसकी लंबाई अनुमान साढे आठ इंचके होतीहै मोकेके अनुसार इसके तीन भागहैं (१) " प्रासटेटिक " यह हिस्सा यह इस नालीका सबसे चौडा भागहै यह सवा इंच लंबा और चार पांच लकीरके बराबर चौडाहै इसमें एक थोडासा निचाव है जिसे " प्रासटेटिक साइस " कहतेहैं जिसमें " परासटेटिकडे-कटस " के बहुतसे छेद खुलतेहैं (२) भाग "पोरशन" यह हिस्सा " प्रासटेटिक "से पीछे स्पंजी पोरशनके बीचमें है इसकी अगली दीवार पोन इंच और पिछली आध इंच लंबीहै यह हिस्सा कुल यूरेथरासे तंग है इसकी गोलाई सिरफ आध इंचके लगभगहै (३) भाग " स्पंजी पोरशन " यह भाग अनुमान ६ इंच लंबाहै यूरेथराका मुँह एक खडा फटावहै, २॥ से तीन लकीर चौडा और स्पंजी हिस्सेका सबसे तंग नुकाम है ॥

टिसटीकिल्स (अंडकोश खुसिया) Testicles

दोनों टिसटीकिल्स (अंड) " इस करोटम " थैलियोंमें तिरछेसे लटकते हैं बाँया दाहनेकी अपेक्षा कुछ २ नीचा होताहै इनकी सूरत अंडेकीसीहरेक अनुमान डेढ इंच लंबा और चौडा सवा इंच और मोटा १ इंच होताहै वजन हनुमान हरे-कका पौन औंससे १ औंसतक होताहैं खुसियेका गदूद नरम जरद सुरखी मायलहै बहुतसे छोटे २ गावदुम लोथडोंसे बनाहै ये लोथडे संख्यामें ढाई सौसे चार सौतक होतेहैं इनमें मनी पैदा होतीहै और याद रहे कि खुसिये स्त्रियोंके भी होतेहैं पर अंदरको होते हैं ॥

Uteurs यूटरस (गर्भाशय रहम)

यह एक खोखला नासपातीनुमा अवयवहै यह सामनेसे पीछेको चपटा है इसके आगे मसाना और पीछे " रेकटम " अंतडी है हमल (गर्भ) के समय यह पेटके तरफ चढ जाताहै इसके दो हिस्से हैं जिसमें पिछले चौडेको " बोडी " अगले तंग हिस्सेको इसकी गरदन कहते हैं हमलके विना जवान औरतका यूटरस अनुमान ३

इंचलंबा २ इंच चौडा और १ इंच मोटा होताहै यह एक झिल्लीसे बनाहै जिसमें फलने और सुकडनेकी शक्तिहै।

अस्थियोंकी संख्या।

यद्यपि डाक्टरी मतसे मनुष्योंकी भिन्नभिन्न अवस्थाओंमें अस्थियोंकी संख्या भिन्नभिन्न होतीहै आरंभमें कई हड्डियां भिन्न २ होतीहैं और पीछे जुडकर एक हो-जातीहै परंतु मध्यम अवस्थामें हड्डियोंकी संख्या इस प्रकारहै "इस्पाइनेलकालिम" (पृष्ठवंश) में २४ हड्डियां मोहरेहैं एक " सेक्रम " (वंशाधो) और एक " काक-सिक्स " (उससेभी नीचे) कुल २६ ये हुई और खोपरीमें ८ और चेहरेमें १४ हड्डियाँ हैं पँसलियां बारा जोड अर्थात् २४ हैं और एक " सटरनम " (छातीकी हड्डी) एक " हाय आयडबोन " ये कुल २६ हुई और " सुपिरीयर एक्स ट्रीमि-टीज " (दोनों हाथों) में ६४ हड्डियाहैं और "इनफीरियर एकसट्रीमिटीज " (नीचे दोनों पावों) में ६२ हड्डियांहैं ये सब मिलकर २०० हड्डियां हुई इनके सिवाय ३२ दांत और तीन २ छोटी हड्डियां हरेक कानमें एसे ६ ये और ८ " सिस्माइड " (अंगूठे आदिके मूल) में छोटीमटरसी हड्डियां हैं तो ४६ ये हुई इनको मिलानेसे मनुष्यके शरीरमें सब हड्डियां २४६ पाई जातीहैं॥

(वक्तव्य) इसमें यह है कि हड्डियोंकी संख्या जो ऊपर लिखीहै वह पूर्ण नहीं क्योंकि जैसे ऊपरकी संख्यामें " सेक्रम " और " काकसक्स " और " सरनम " में एक एक हड्डी कही परंतु सेक्रममें ५ काकसक्सामें ४ और सरनममें ६ हड्डियां जुडी हैं इससे शरीरमें हड्डियां अधिक मालूम देतीहैं जैसे वैद्यकमें ३०० हड्डियां लिखीहैं वे अयोग्य नहीं सिद्ध होती।

शरीरकी त्वचा।

डाक्टरी मतसे त्वचा (चर्म) के मुख्य दो भागहैं उनमें नीचेवाले भागको "डर-मिस " कहतेहैं और ऊपरवालेको"एपीडरमिस अथवा " क्यूटिकिल " कहतेहै फिर इनमें प्रत्येकके दो दो भागहैं क्यूटीकिलमें नीचेके भागमें छोटे २ मृदुकोष्टोंकी परतहै जो रुधिरसे बनताहै और ऊपरके भागमें वेही पुराने होकर ऊपर आजातेहैं और करडे होजातेहैं और झडजातेहैं और डरमिसके दो भागोंमेंसे ऊपरके परतमें नसें फैली हैं तथा नीचेकी परतमेंभी नसोंका जालहै क्यूटीकिलकी मुटाई नरम स्थानमें एक इंचका २४० वां भाग और दृढस्थानोंमें २४वां तथा १२वां भागहै पसीनेके निकल-नेके छेद सब देहपर अनुमान तीस लाखकेहैं॥

" सेकरम् " पृष्ठवंशके नीचेके भागको कहते है वास्तवमें इसमें ५ हड्डियां (मोहरे) जुडे हुये होते है इन्हे डाक्टर एक मानते है " काकसिक्स " यह त्रिकके पास पृष्ठवंशका सबसे नीचला भाग है इसमें वास्तवमें ४ हड्डियां परस्पर जुडी है " सुरनम " यह छातीके बीचकी हड्डी है वास्तवमें इसमें ६ जोड है जो प्रथम अ-वस्थामें जुदे २ होते हैं और अवस्था बढानेपर जुडकर एक प्रतीत होता है (देखो अनाटमी और फीजिओलोजी) " क्यूटीकिल " मुख्यबाह्य चर्म है यह इपीथीलीयमके चपटे कोसोंके कई एक परतोंके बाहम मिलनेसे बनाहै (देखो अनाटमी)॥

डाक्टरीमतसे संक्षिप्त रोग गणना।

इंटरमेटिंट फीवर—बारीका शीतज्वर.
कोटी डेइन—नित्य चढनेवाला.
टरशन फीवर—तीसरे दिनका तप.
करटन फीवर—चौथे दिनका तप. (चातुर्थिक)
रीमीटेंट फीवर—संतत ज्वर जो बरोबर चढाही रहे.
कंटीन्यूड फीवर—गरमीका तप.
डेंगोफीवर—एक भांति वातज्वर.
यालोफीवर—यह योरपका तपहै. एक भांति संन्निपात.
टाइफस फीवर—संधिक.
टाइफाइड फीवर—यह जांतविक दुर्गंधसे होताहै.
फीमन फीवर—यह कहतमें खराब अन्न खाने आदिसे होताहै.
हेकटिक फीवर—जीर्णज्वर, तपोदक.
इनफनटाइल फीवर—आमज्वर.
पाइएमिया—दुष्टरक्तज्वर.
प्योरपेलर फीवर—प्रसूतज्वर.
आस्मालपाक्स—शीतला, चेचक.
चिकनपाक्स—खसरा.
रोब्योला—महीन खसरा.
स्कारलेटीना—मोतीज्वर.
इस्कराफ्यूला—इस्करवी.—कंठमाला, ग्रंथी, मसूढोंसे खून आना, मुँहसे वुरक्तदोष.
रोमाटेजम—गठिया, ग्रंथीवात.
मास्क्यूलर रोमाटेजम.—एकभांतिकी गठियाँ.

सेफेलिलजिया—शिरका दर्द.
कलडसहिस्ट्री—भ्रूका मस्तकशूल.
हेमेक्रीमिया—आंधाशीशी.
वरटीगो—शिरोरोग.
इनक फलाइटिस—दिमागके परदोंमें सूजन गरमीसे शिर दर्द.
न्यूरेलजिया—पट्ठोंका दर्द.
साईटीका—रांगन वायु.
पेरालसिस—शून्य वायु.
हेमेप्लेजिया—अर्द्धांगवायु.
पेरा प्लेजिया—ऊरुस्तंभ.
फेशियल पेरालिसेस—आर्दितवायु.
कोरिया—कंपवायु.
टिटनिस—धनुषवायु.
इनसानिटी—उन्माद
एडयूसी—मंदबुद्धिता
डेमनशिया—कभी२बेसुध होना.
मेलन कोलिया—वहम.
मेनिया—पूर्ण उन्माद.
डिलेरियमस्ट्रीमेंस—सिड, प्रलाप.
पलपेटीशन—खफगान.
एपेलेपसी—मृगी.
केटेलेपसी—मूर्च्छा.
लेरंजा इटिस—वात पित्तज्वर.
केटार—वात कफज्वर.
इनफलो इंजा—कफज्वर, जुखाम.
आस्मा—तमक श्वास.
इमफाईसीमा—श्वास.
होपिंगकाफ—सूखी खांसी.

न्यूमोनिया—उरक्षत.

थाइसिसपिल—
मेरा नेलस— } क्षयी—राजयक्ष्मा.

मापटेसिस—मुँहसे खून आना.

प्लोराइटिस (प्लूरिसी)—पांसूकादर्द.

हाइटरोथीरेक्स—छाती दूखे तप, शोथ.

न्यूमो थोरिक्स— } प्लोरामें हवा भरनेसे श्वास हो और दर्द.

स्टोमेंटाइटिस—मुखपाक बालरोग.

पेरोटाइटिस—कनफेड.

ट्रांसीलाइटिस—जिह्वक.

कैंजशचन ओफदी इस्टमक—रक्तपित्त.

मेलेना—अधोगत रक्तपित्त.

हेमाटेमेसस—ऊर्द्धगत रक्तपित्त.

गैसट्राइटस—पेटका दर्द मेदमेंहो.

इलसर ओफदीस्टमक—परिणामशूल.

वर्मस—कृमि पेटमें हो.

कालरा—विशूची (हैजा).

डिसेंटरी—मोडे निवाही.

डायारया—अतिसार

कान्सटीपेशन—कबजीयत.

डिसपेपसिया—अजीर्ण.

कालक—कुलंजका दर्द.

पेरेटोनाइटिस—बंधपडजाना.

टवोवर क्योलर—
परीटोनाइटिस— } उदर रोग.

आसाइटिस (ड्राप्सी) जलोदर.

हेमेटाईटिस—यकृत रोग.

एकटोरिस—पांडु (पीलिया).

इनलाजिमेंट ओफ दीसिपलीन } प्लीहवृद्धि (तिल्ली)

किडनी— { वृक्क रोग (गुरदेकी) व्याधि. (नलोंमेदर्द)

हेमाटोरिया—पित्त कृच्छ्र(सोजाक).

जायाबेटियर—बहुमूत्र.

इस्परमीटोरिया—प्रमेह.

डिसमेनोरिया—नष्टार्तव स्त्री रोग.

एपेथीलेडोमा—प्रदर.

मेरोरिलजिया—रक्त प्रदर.

ल्यूकोरिया—श्वेतप्रदर.

इनपोटेंस—नपुंसकता.

हिमरोइड—बवासीर.

पेलेथोरा—रक्तवृद्धिविकार.

एनेमिया—रक्तक्षयविकार.

इनफलामेशन—शोथ, सूजन.

एरीसिफलिस—विसर्प.

सिफलिस—उपदंश, आतशक.

प्रोराईगो—सूखी खाज.

स्केबेज—गीली खुजली.

वाइटीलेगो—श्वेतकुष्ठ.

हरपीज—दाद (दद्रु)

लेपरा—कुष्ठ.

एलोपीसिया—गज.

ओटोलजिया—कानका दर्द-

न्यूबो—बद.

कलवलशन—ऐंठन (तशन्नुज).

यहांपर संक्षेपसे रोगोंके कुछ नाम मात्र लिखे हैं विशेष वर्णन थोडा २ इन रोगोंके प्रकरणमें देखिये।अथवा इन रोगोंका निदान, लक्षण, उपाय, आदि विशेष वर्णन हमारी पुस्तक डाक्टरी चिकित्सा-सारमें देखिये जिसमें डाक्टरी और देसी दोनों भांतिसे रोगोंके नाम, लक्षण उपायादि लिखे हैं ॥

श्रीः।

यूनानीमतसे संक्षिप्त शारीरक।

परिशिष्ट भाग २

यह त्वचा अस्थि मांस और तिल्ली तथा मस्तिष्क मज्जा और उसके ऊपरका वेष्टन और शिराओं और पेशियों पठ्ठोंसे बनाहुवा है इसमें सात हड्डियां हैं इसमें मुख्य मस्तिकमज्जा जो नरम सुपेद लजलजा है यह सब पठ्ठों और रूहनफसानीका (इंद्रियज्ञानका) मूल है इससे रगें और पठ्ठे निकलकर शाखाओंकी तरह फैले हैं इसके तीन भाग हैं उनमें नीचेका भाग चौडा और बीचका उससे कम और ऊपरका छोटा है इनमें नीचेका भाग नरम है इस हेतुसे कि यह ज्ञानेन्द्रियोंकी स्नायुवोंका मूल है और ऊपरका भाग कठिन इस हेतुसे है कि वह आकुंचन प्रसारण आदि क्रियाजनक पठ्ठोंका मूल है ॥

इसके भाग इस भांति समझिये कि भ्रुकुटी तालूके ऊपरका भाग प्रथम और शिखाके स्थानके नीचे तृतीय भाग और बीचमें मध्यभाग मध्यभागके नीचे झरनासा है जिसे " मासरा " कहते हैं मूर्द्धाका मल वहांसे एकत्र होकर तालुमें आताहै॥

"नुखा" अर्थात् मास्तिष्क मज्जाका मूलहैं जिसे मगजहराम कहते हैं इससे ईश्वरने दो मुहरे तौ इस प्रकारके निकाले हैं कि उनसे दो पठ्ठे निकले हैं जिनमें एक दाहने मुहरेसे और एक बाँये मुहरेसे परंतु "अस अस" नामी मोहरेसे जो नीचे है उससे १ अकेला पठ्ठा निकला है और इन पठ्ठोंमेंसे शाखायें होकर हरेक अंग प्रत्यंगमें जा मिले हैं "असब" (पठ्ठे) दो प्रकारके हैं प्रथम वे जो दिमाग (मस्तिष्क) से उगे हैं वे सात जोड हैं चेहरेसे ऊपरकी ज्ञानेंद्रियोंकी प्रवृत्ति और धारणाशक्ति प्रतिभा आदिक इन्हींसे प्राप्त होती हैं दूसरे प्रकारके पठ्ठे वे जो " नुखा " से उगे हैं जो २१ जोड हैं और १ अकेला है ग्रीवासे नीचेके शरीरमें आकुंचन प्रसारणादि और स्पर्शशक्ति इन्हींसे प्राप्त होती है ॥

" गशा " (झिल्ली) एक नरम वेष्टन (त्वचा) सी होती है इसका प्रयोजन यह है कि आंतर्य अवयवकी रक्षा करे और जिन अवयवोंमे स्पर्शशक्ति नहीं होती उनमें स्पर्शशक्ति पहुँचावे–सिरमें ५ गशा हैं जिनमें १ कहफ (दिमागकी छत) के बाहर है और दूसरी उसके अंदर है तीसरी जोहरदिमाग मस्तिष्क मज्जाके गिरद है यह मकनत्दार है और दो गशा दिमागके नीचे पीछेकी है ॥

यूनानी मतसे शिरसे पैदा होनेवाले रोग इस प्रकार हैं (१) शिरका दर्द (२) सरसाम (जिसमें दिमागके परदोंमें शोथ होता है और इसमें प्रलाप प्रमादि अनेक उपद्रव होते हैं (३) माशरा (बाहर मस्तककी तरफ शोथ होना) (४) चक्कर और आखों अगाड़ी अँधेरी आना (५) अतिनिद्रा (६) निद्रानाश (७)निद्रा उछट उछटकर आना (८)हमूद (मूर्च्छाका भेद) (९) भूल(१०) वह मासिड(११)अत्युन्माद(१२) प्रलाप (१३)मूर्खता (१४)धत (किसी बातकी धत लग जाना) जिद (१५) सोतेमें चमकना दबजाना(१६)अपस्मार मृगी (१७) मूर्च्छा (१८) फालज (स्पर्श शक्तिका नाश होना) सुन्न पडजाना अंगका(१९)तशें नुज(ऐठाव) (२०)तमद्दुद(हनुग्रह) (२१)राशा (कंप) (२२) सुस्ती (२३) लकवा (मुँहकाए और या आधा शरीर सुन्न पडजाना टेढा हो जाना) (२४) स्फुरण (२५) आखेंलाल रहना जादा अंगडाइयां आना(२६) नजला (जुकाम) (२७) भोंकादर्द (२८) सर खुजलाना ॥

(देखो तिब अकबर)

नेत्र (चशम)

यह आजाय शरीफामेंसे है नेत्रोंमें ७ परदे अर्थात् ७ पटल हैं और तीन रतूवत हैं आंखकी प्रकृति गरम तर है इसमें पठे और फरकनेवाली तथा स्थिर सिरायें हैं पहले तवकेका नाम " मुलतष्मा " है यह सबसे बाहरकी तरफ है दूसरा " कर-निया " है इसमें वास्तविक कोई रंग नहीं है वही रंगनजर आता है जो इसके नीचे-के तबकोंमें हैं तीसरा तवका " अंबिया"है और यह किसीकी आखमें स्याहरंगका है किसीकी आँखमें जरदी मापल है और इसीके बाद रतूवत वैजिया है जो तीन रतूवतोंमेंसे १ है और यह अंडेके तुल्य सुपेद है चौथा तवका " अंकबुतिया " है यह मकडीके जालेसा है और इसके पीछे दूसरी रतूवत जलीदया है जो साफ बरफ जैसी है और इसके बाद रतूवत जजाजी है जो आवगीनेसी है पांचवा तवका " शवकिया " है इसमें जालसा पुरा है छठा तवका " मशीमिया " है यह बके दानसा है और सारी आँखपर छाया रहता है सातवाँ तवका "सलबिया" है जो सख्त झिल्लीसा है ॥

नेत्ररोग ॥

(१)सातों तबकोंकी व्याधियां (२) आखोंसे पानी टपकना (ढलका) (३) कभी आँसू बहना कभी बंद होना (४) धुंधलासादीखना (५) आंखोंमें तुनकासा गिरना (६) आँखमें चोट लगना (७) आखमें कुरा पडना (८) बयाज (का-लीपुतलीपर सुपेदी आजाना (९) आखोंमें दराडसी हो जाना (१०) हिकक

(भैंगापन)(११) रतोंधा (१२) दिनकों न सूझना(१३) आखें छोटी पडजाना(१४) आखोंमें पानी उतर आना (नजूलुलमा) (१५) भूरी आंखें होना (१६) जोफवसर (निगाहकी कमजोरी)(१७)आखें दुबली पडजाना(१८)आखें मोटी औ निकलीसी होना (१९) रोशनी ^री लगना ॥

पलकोंके रोग ॥

(१) पलकें भारीसी होना (२) पलकोंमें गाठेंसी पडजाना (३) पडवाल (४) पलकोंके बाल गिरजाना (५) पलके सुपेद हो जाना) (६) पलकें मोटी और गलीजहोना (७) पलकोंमें खाज आना ॥

कान (गोश)

यह एक अवयव मांस और त्वचा और रगोंसे बना हुवा है इसमें एक छेद होता है उसके राहसे हवामें जो शब्द लहराता है वह उस छेदकी राहसे भींतरकी त्वचामें टकरावे फिर रगोंके जरयेसे मूर्द्धाके शब्दाववोधक स्थानमें पहुँचे जिससे जीवको शब्दोंका ज्ञानहो ॥

कानके रोग ।

(१) कानका दर्द (२) कम सुनाई देना (३) कानमें आवाजसी होन (४)कानसे रुधिर निकलना(५)कानकी जड उखडना(६)कानकी जडमें वरन होना(७) जडमें जखम होना (८)कानमें खारश होना (९) कानमें जखम होना ॥

नाक (बीनी)

यह दो छेदवाला अवयव मुँहके ऊपर है इसका मार्ग तालूके पास नीचेको खुला हैं जिसमेंसे श्वास आता जाता है और आमाशय मेदेकी रतूवतभी ऊपर चढकर इसीसे निकलती है और दिमागकी तरफ इसमें एक नालीसी है सुगंध दुर्गंध इसी राहसे दिमागमें पहुँचती है और दिमागका मलभी कुछ इसी राहसे टपकता है दो छेद जो अगाडी हैं पीछे ये मिलकर १ हो जाते हैं ।

नाकके रोग ।

(१) गंध नही आना (२) ठीक गंधका ज्ञान न होना (३) नाकमें जखम होना (४) नकसीर (५) नाकसे दुर्गंध आना (६) छीकें बहुत आना (७) नाकमें खाज आना (८) नाकमें क्रिमि पडजाना आदि कई व्याधियां होती हैं ॥

मुंह जबान और दांत ।

कई चीजें मिलनेसे इसका नाम मुँह होता है पर विशेषकर दोनों होठोंहीसे मुँह समझना यहां चाहिये ये होठ केवल त्वचा मांस और शिराओं और खूनसे

बने हैं जुवानभी मांस और शिराओंहीसे बनी हुई है दांत हड्डीके छोटे २ टुकड़े हैं दांत भोजनको चबाते हैं जुवान उसका स्वाद लेकर भीतरको धकेलती है इनके आकार और काम प्रत्यक्षही दीखते हैं ॥

इनके रोग।

(१) जुवानका वरम (२) स्वाद न आना (रसाज्ञान) (३) जुवान भारी होना (४) जुवान बढजाना (५) जुवान सुस्त होना ६ जुवानके नीचे और जुवान होना (अधिजिह्व) (७) जुवान फट जाना (८) जुवान सूखना (९) जुवानमें जलन होना (१०) जुवानमें खारश होना (११) जुवानसे छिलकेसे उतरना (१२) मुह आजाना (१३) मुह और जुवानमें कुएपड़ना (१४) मुँहसे दुर्गंध आना (१५) मुहमें बहुत लुआव आना (लालास्राव) (१६) तालूका वरम ॥

होठोंके रोग।

(१) होठ सुपेद होना (२) होठ फटना (३) होठ फरकना (४) दोनों होठ खिंचना (५) होठोंमें मसा होना (६) होठ सूजना (७) होठोंका जख्म ॥

दंतरोग।

१ दांतोंका दर्द (२) दांत अँबलना (३) दांतोंकी आवजाती रहना (४) दांत भरभुरे होना (५) दांतोंका रंग बदलना (६) दांत हिलना और गिरजाना ७) अधिक दांत निकलना (८) नींदमें दांत चवाना ॥

मसूढोंके रोग।

(१) मसूढोंका वरम (२) इनमें खून आना (३) मसूढोंमें कुएपड़ना (४) मसूडे कटने लगजाना (५) मसूढोंमें मांस बढजाना (६) मसूडे पकना ॥

हलकका बयान।

मुँहके भींतर कव्वेके पाससे हलक शुरू होता है इसमें दो रास्ते हैं। वह रास्ता है जिसके राहसे भोजन मेदेमें पहुँचता हैं इसको "मरी" कहते हैं और दूसरा रास्ता वह है जिस राहसे श्वासकी वायु भीतर फेफडोंमें पहुँचती है और मनुष्य बोलता है इसे "हँजरा" कहते हैं यह हंजरेकी नली अगाड़ीको है और मरी इसके पिछाड़ीको--मरी तालूके पाससे शुरू होकर मेदेके मुँहतक जिसे "फम मेदा" कहते हैं और जो कौड़ीके मुकाबिल है वहांतक गई है और मेदेमें जाकर मिली है इसी तरह हंजरेकी नली "कसबे रीया" तक जो फेफडोंका शिरा है वहांतक जाकर फेफडोंमें जा मिली है ॥

हंजरेकी नली बहुत कोमल है उसमें शुद्ध हवाके सिवाय जरासा गरद गुवारभी चला जावे उसी वखत खांसी आकर उसे बाहर निकाल देगी इसी भांति जरासा तुनका जरासा भोजन पानका भाग जला जावे उसे कभी कबूल न करे धांससे बाहर निकाल दे–परंतु मरीकी नाली सख्त करड़ीहै करड़ेसे करडी वस्तु इसमें होकर मेदेमें जाती है ॥

(१) कव्वेकावरम (२) कव्वा ढीला पड़जाना (कागछिटकना) (३) हलकमें खरखराहट होना कोई चीज निगलनेमें दिक्कत होना (४) हलकमें गरम फुनसियां होना (५) मरीका वरम (६) हंजरेमें सुस्ती आना (७) आवाज़में फरक आना ॥

सीना और फेफडे ।

फेफड़ोंकी अरबीमें " रीया " या " शुश " कहते हैं यह नरम पोपला अवयव है और मांस शिराओंसे तथा झिल्लीसे बनाहुबा है गशा (झिल्ली) तमामपर है इस फेफड़ेमें स्पर्शज्ञान नहीं है पर उसपर जो गशा है उसमें कुछ स्पर्शज्ञानहै फेफड़ा ऊपर हसलीके पाससे शुरू होकर नीचेको लटकता हुवा है और इसके दो भागहैं एक दाहना दूसरा बायाँ दाहनेमें तीन शाव (लोथड़े) हैं और बांयेंमें२ और ऊपरसे ये दोनोंभाग जुड़े हुवे हैं और यह दिलके गिरद आ रहा है और इसमें वे सिरायें हैं जो दिलसे उगी है यह बाहरकी हवाको दिलके लायक बनाकर दिलमें पहुँचावे इसका जिसम मक्खीके छत्ते जैसा पोला है रंग हलका सुरख है यह सीनेके अंदर बीचमें कुछ ऊँचा और दोनों तरफ नीचा लटका हुवासा है ऊपरको हंजरेकी नलीसे मिला हुवा है मरीकी नाली इसके पीछे होकर मेदेमें गई है सीनामें सात हड्डियाँ हैं और २४ पँसलियां हैं १२ बाईतरफ और १२ दाहनी तरफको उनके बीचमें उजले हैं और वह गशा है जो पँसलियोंको ढके हुवे हैं छः छः पँसालियां कौड़ीसे नीचे और छः छः ऊपर शीनेमें दोनों तरफ है ॥

सीना फेफड़े और पँसलियोंके रोग ।

(१) सांसका ठीक न चलना(२)दमा(३)खाँसी (४) मुहसे खून आना (यह मेदेसे भी आ सकता है और फेफड़ेसेभी)(५) मुहसे पीव आना(६)फेफडोंपर नजूल गिरना (जातुलरिया)(७) सिल फेफड़ोंमें जखम पडजाना (८) सीनेमें पीव पड़कर बंध हो जाना (९) पँसलियोंमें वरम व दर्द (१०) जातुलजंब (पँसलियोंमें वरम होकर दर्द होना)(११) जातुल जंब गैर खालिस पँसलियोंके बीच जो उजले और झिल्ली है उनमें वरम और दर्द होना (१२) जातुल सदर और जातुल अर्ज (सीनेके अगले हिजाबमें वरम दर्द हो जातुल सदर है पिछलेमें जातुल अर्ज) (१३)पँसलियोंके हिजाबमें वरम हो (१४) सीनेमें वरम और दर्द (वरसाम) (१५) हमूद उलसदर (सीनेमेंजरदीसे दर्द होना ॥

(क़लब—दिल)।

यह मांस और असब(पट्टों)और झिल्लीसे बना हुवा सीनेके बीचमें जरा बांई तरफ झुका हुवा रहता है और बहुतसी शिरायें इसमेंसे निकली है इसका मांस करड़ा है और जो झिल्ली इसपर है वहभी करड़ी है और इसकी गशा (गिलाफ) इससे चिपका हुवा नहीं है यह गाजरकी सूरतका बना है इसका मोटा रुख ऊपरको तिरछा है शिरायें यहां हीसे पैदा हुई हैं और गज़रूफ (नरम हड्डियां) भी इसी तरफ हैं दिलके दो वतन (हिस्से) हैं एक दाहनी तरफ और दूसरा उसका बायां-रुख जिसमें दाहनारुख बहुतसे खून और थोड़ीसी रुहसे भरा है यह बायेंरुखसे चौड़ा है और बायां रुखमें रुह बहुत है और खून कम है इस रुखका खून बहुत पतला है इस लिये कि रुहमें मिला हुवा है दोनों रुखोंके बीचमें तजवीफ (हद) है दिलमें रास्तेभी हैं जिनमेंसे खून फेफड़ेकी तरफ पहुँचे और फेफड़ेसे हवा दिलमें पहुँचे और ये मोटे शिरेकी तरफ हैं और इधरही मांसके दो टुकड़ेसे जमकर खिड़-कीकी सूरत हो गये हैं इन्हें " अजनी उलकलब " कहते हैं जिस समय दिल सुकड़ता है तो ये इकट्ठेसे हो जाते हैं और जब फैलता है तब ये खुल जाते हैं और दमबदम भिंचते खुलते रहते हैं जोकि दिल " अजु रईस " (उत्तमांग) है और हरारत गरीजी (मुख्य शारीरक अग्नि) का स्थान है और रुह हैवानी (जीवनीय शक्ति) का उत्पत्तिस्थान है इस लिये इसको छातीमें ईश्वरने स्थित किया है इसका रंग सुरख है जिन जीवोंका दिल बड़ा और मजबूत जादा होता है वे दिलेर और बहादुर होते हैं ॥

दिलके रोग।

(१) सूयमिजा (दिलपर गरमी खुशकी तथा सरदीया तरी हिसाबसे जादाहो) (२) दिल धड़कना (ख़फ़गान) एक प्रकारका उन्माद (३) दिलमें धुवांसा उठना (४) दिलकी किवाड़ियोंका वरम (दिलभारीसा हो) (५) दिलभिचासा रहे कभी बेहोशीभी हो जावे (६) जैसे कोई दिलको छीलता हो और गश आजावे (तक थुर उलकलब) (७) जैसे दिल सीनेसे बाहरसा निकलता हो (८) दिल-पर रतूबत छाजावे (९) जैसे दिल नीचेको खिंचतासा हो ॥

(जिगर—यकृत्)

जिगर " अजूरईस " (उत्तमांग)है इसमें रूहतवई पैदा होतीहै और जो कूदने-वाली रगें हैं जिन्हें " आउरदा " कहतेहैं वे इसमेंसे निकलतीहैं और " कैलूस " (जो मेदेमें द्रवरूप परिपाक बनाहै उस) का खून जिगरमें बनताहै परंतु कैलूसमें

पलटा रगें मासारीकामेंभी आतीहैं (रगें मासारीका जिगरके पासहैं) कैलूसका खून बनकर तौ जिगरकी रगोंसे सारे शरीरमें पहुँचताहै और उसका द्रवरूपमल अर्थात् पेशाब यहांसे गुरदोंकी तरफ चलाजाताहै जिगरका रंग सुरखहै जैसे जमाहुवा खून, और यह खुन मांस और रगोंसे बनाहै, इसमें स्पर्शज्ञान (हस) नहीहै पर जो गशा (झिल्ली) इसपर छाई हुई है उसमें हस जादाहै जिगरमें अंगुलियोंकी तरहहै अंकुरसे हैं कईयोंमें ये अंकुर ५ होतेहैं कइयोंमें ४ कइयोंमें ३ ही इन्हीसे मेदेके गिरद लगा हुवाहै जैसे कोई अंगुलियोंसे किसी चीज़को पकड़े हुवे रहताहै ऐसे यह मेदेसे लगाहै जिगरसीनेके हिजावके मुकाबिल दाहनीतरफ रहताहै और पिछलीतरफ पँसलियोंसे बँधाहै और नीचेका शिरा मेदेके कैरके पासहै जिगरकी तलीसे १ रगनिकली है उसे "वाव" कहतेहैं उसमेंसे कई रगें निकलीहैं जिनमेंसे कुछ तो जिगरमें फैलगई हैं और कुछ बाहर आकर मेदे और अंताडियोंमें मिलगईहैं और इन्हींको "मासारीका" कहते हैं जिगर कैलूसको इसतरह खैंचताहै जैसे इसपंज पानीको खैंचताहै जिगरके मोहदबसे १ और रग निकलतीहै जिसे "अनूफ" कहतेहैं उसकी बाज़ी शाखें तो जिगरहीमें फैलगई हैं और बाकी बाहर निकलकर दोशाख होकर उनमेंसे १ ऊपरको जाकर फैलगईहै और दूसरी नीचे उतरकर नीचेके वदनमें फैलगई है खून इन्हींसे तमाम वदनमें पहुँचताहै और ये "अजूफ" ही "आउरदे" वदनमें रगोंकी असल जड़हैं और इन्हीसे दो और शाखें गरदनकी तरफ पानीके निकलनेको निकलीहैं इन्हें "तालईन" कहतेहैं और कैर (तली) की तरफ वावके ऊपर एक रास्ताहै जो पित्तेकी तरफ आताहै जिससे सफरा अर्थात् खूनका झाग पित्तेमें आवे "मरारा" (पित्ते) की थैली १ बड़े अंकुरके ऊपरहै और तलीकी तरफ जिगरमें १ औरभी रास्ताहै जो तिल्लीकी तरफ जाताहै इसराहसे "सौदा" अर्थात् खूनका तलछट तिल्लीकीतरफ चलाजावे इसीभांति जिगरसे एक रग दिलमें आतीहै जिससे जिगर और दिलमें परस्पर संबंधहो और एक दूसरेका उपकार करे ॥

जिगरसे होने वाले रोग।

(१) सूयमिजाज जिगर (जिगरमें गरमी सरदी खुश्की तरी अंदाजसे जादाहो (२) ज़ोफ जिगर (इसमें दस्त मांस धोवनसा थोड़ा २ हो भूख कम लगे जिगरमें धीमा दरदहो) (३) सुद्देकबद (जिगरमें सुद्दा पड़जावे जिससे जिगर भारीमाहो दस्त और उबकाईहो कभी तपभी आवे) (४) सुद्दे मासारीका (मासारीकामें सुद्दे पड़जावें और भारीपनहो हाजमा बिगड़े दुबलापनहो (५) नफख़ तुलकबद जिगरमें अफराहो दाहनी पहलूमें दरदभीहो (६) वजेउलकबद (जिगरका दर्द (यकृत् शूल) (७) निहार या श्रमके बाद जादे ठंडे पानीसे जिगरमें दर्द

(८) वरम कबद (वरममें जिगर जिगरपर वरम होना इसमें तप प्यास और दर्द और जलन होना थूंक बंद होवे खुश्क खांसी और बढे तब हिचकीभी (९) वरम उजलात शिकम (पेटके उजलोंमें वरम होना) यह जिगरके वरमके मानिन्दही होता है इससे यहां लिखा (१०) दबीले कबद जिगरमें कहीं पकजावे और पीब पड़ जावे इसमें तपहो दर्दहो प्यासहो सीधा न लेटसके (११) जिगरमें छोटी २ अला इयांसी होजावें इसमें जलन और कभी कंपभी होवे (१२) हिसातुल कबद जिगरमें रेता छोटी २ पथरीसी पैदाहों इसके खूनमें रेता जम जाता है (१३) इसहाल जिगरी (खूनके या पीवके दस्त आवें (१४) फिसादमिजाज व जोफजिगर इसमें पेटमें कुरकुराहट रहे कभी अफराहो कभी मसूढों और होठोंमें सुरखी और फुनसियां हों (१५) इसतिसका (जलोदर) ।

तिहाल (तिल्ली)

यह अवयव मांस और शिराओंसे बना है यह फोफला है इसका रंग कुछस्याही लिये है यह मेदेके बांई तरफको रहता है इसमें स्वयं हसनहीं है इसपर जो गशाहै उसमें हस जादा है इसके शिरेसे १ रास्ता निकलकर जिगरकी तलीमें खुल रहा है इसे तिहालकी गरदन कहतेहैं इसी राहसे जिगरसे सौदा खिंचकर तिल्लीमें आताहै तिल्ली कच्चे सौदाके रहनेकी जगह है तिल्लीमेंसे १ राह मेदेमेंभी खुला है इस लिये कि थोड़ा सौदा मेदेमें आवे और मेदेके मुँहपर खुजलावे और तुरशी पैदाकरे जिससे भूखलगे ।

तिल्लीके रोग ।

(१) यरकान (पांडु पीला प्रायः जिगर और मरारेसे होता है और स्याह तिल्लीसे जिसे हलीमक (२) सूय मिजाज तिहाल (तिल्लीमें गरमी सरदी वगेरा जादा पहुँचना) (३) वरमतिहाल तिल्लीका वरम (४) जोफ तिहाल (तिल्लीका जौफ) (५) तिल्लीका अफरा (६) तिल्ली बढजाना (७) तिल्लीमें मुद्दा पडजावे॥

(मेदाआमाशय) ।

यह एक गोल अवयव थैलीकी सूरतका मांस और पट्ठों और शिराओं और झिल्लीसे बनाहै इसके तीन भाग हैं १ " मरी " (आहार नलका) २ "फम मेदा" (मेदेका मुँह) ३ " कैरमेदा " (मेदेकी तली) " मेरी " जो मुँहके भीतरसे शुरू होकर छातीकी कौड़ीतक है इसका वर्णन पहले होचुका है " फम मेदा " यह मरीके नीचे है और " कैरमेदा " यह भाग नाभिसे ऊपर है " मेदे " में हस स्पर्श ज्ञान बहुत है इससे जो इसे बुरी लगे उसे झट वमनके राहानिकाल देता है मेदेमें

दो तबकें हैं भींतरका तबका असबानी है जिससे स्पर्शशक्ति उत्पन्न हो और बाहर-का परत लइमानी (मांसल) है ताकि हाजमेमें सहायता करे और औदर्य अग्नि यथोचित पैदा हो भींतरीपरतमें लैफ बाजी तो तिरछी है और बाजीलंबी इस वास्ते कि आहारको रोकसके और बाहरके परतमें लैफें चौड़ी हैं ताकि पके आहारको यहांसे निकालदे और मरीमें कोई लेफ तिरछी नहीं है क्योंकि यहांपर आहारकेठैर-नेका कामही नहीं है और " कैलूस " भोजनका द्रवपाक (आम) यहांहीं बनता है फिर यहांहीसे उसका सार भाग द्रव बारीक रगोंके वसीलेसे जो मेदेसे जिगरकी तलीमें मिलरही है जिगरकी तरफ खिंच जाता है और फोकस "असना अशरी" आंतकी तरफ जो मेदेकी तलीमें है चलाजाता है भोजनकी इच्छा और प्रथम परिपाक मेदेहीसे पूर्ण संबंध रखता है और सब अवयवोंको इसकी तरफही वांछा रहती है और मेदेमें विकार होनेसे सब अवयवोंमें विकार हो जाता है इस वास्ते हरेक व्याधिके इलाजमें मेदेकी रियायत जरूर रखनी चाहिये ॥

मेदेके रोग ।

(१) सूयमिजाज मेदा (मेदेमें गरमी खुश्की सरदी तरी जादा हो अंदाजेसे (२) बजे उल्मेदा (मेदेका दर्द) (३) जोफे हज्म (जोफमेदा) (क) मेदेकी कुव्वत जाजिवामें जोफ (ख) मेदेके कुव्वत मासकेमें जोफ (ग)मेदेकी कुव्वत हा-जमेमें जोफ (घ) मेदेकी कुव्वत दाफेमें जोफ (४)हैजा (विशूची) (५) नुकसान शहवततुआम (क्षुधानाश होना) (६) बहुत ज्यादे भूंख लगना (७) जूउलवकर भूकतौ हो पर मेदा न चाहे (अरुचि) (८) जूउ लगसी (भूंखकी बरदाश्त न होना) (९) प्यास ज़ियादा लगना (तृषा) (१०) वरममेदा (मेदेमें वरम और दर्द व जलन व हरवक्त तप रहना (११) मेदेमें किसी जगे पीप पड़जाना और जखम होना इसमें तप जोरका दर्द (१२) मेदेमें फुनसियां और जखम हो (१३) नफख (अफरा) (१४) डकारें जादा आवें (अत्युद्गार)(१५)जमाही जादा आना(अतिजृंभा)(१६)कै (उलटी करना वमन) (१७) जी मिचलाना (उत्क्लेद) (१८) तहूअ (उबकाई हृल्लास) (१९)तकल्लुव (जी मिचलाया रहना) (२०) के उलद्दम (खूनकी मवन होना) (२१) मेदेमें खून या दूध जमजाना (२२) हिचकी जादा आना (२३) इन कलाव मेदा (कुछ हा जमा होनेही कै हो जाना (२४) कलक (बेचैनी) (२५) इखतिलात मेदा बेचैनी और जी मिचलानेके साथ कफगानसा हो (२६) बजे उलफवाद

(क) कुव्वत जाजिया वह है जिससे भोजनको अपनी तरफ जजब करे (खेंचे) (ख) कुव्वत मासका वह है जिससे भोजन ठैरा रहै (ग) कुव्वत हाजमावह है जिससे हजम हो (घ) कुव्वत दाफे यह है जिससे पचा हुवा रस हो निकल जावे ।

(मेदेके मुहपर जोरका दर्द हो) दिलके नजदीक होनेसे इसे दर्द दिल कहते हैं (२७) मेदेमें सोजिश और जलन हो (२८) मेदेमें खारिश होना और भीतर छोटी फुनसियां होना ये तेज चीज खानेसे या नजूल मेदेमें गिरनेसे होती है (२९) इस्तर खाप मेदा (मेदा ढीला पड़जाना) (३०) तशन्नुज मेदा (मेदेमें किसी जगह ऐंठनसी होना और अकड़ावसा होना जिससे विना हजमहुईचीजदस्त में आवे (३१) हिसारत मेदा (मेदा करड़ा पड़जाना) (३२) इस हालमेदा (मेदेकी गिजा कभी पची कभी विना पची दस्तके राह निकला करे) या खातेही गिजा अंतडियोंमें उतर आवे और दस्त होवे ॥

अमआ (अंतडिया)

यह अवयव मुलायम थोथा दो तहका झिल्ली और चरबी और शिराओंसे बना हुवा होताहै आतोंमें हस (स्पर्शशक्ति) होतीहै ये आतें पेटमें छः हैं अथात् आंत तो बास्तवमें एकहीहै उसीके छः भागहैं प्रथमका नाम " असना अशरी " दूसरी " सायम " तीसरी " दकीक " ये तीन आतें ऊपरको रहतीहैं और बारीकहैं चौथी " अऊर " पांचवीं " कौलून " छठी " मुस्तकीम " ये पिछली तीनों नीचेको रहतीहैं और गलीज रहतीहै पहली आंत " असना अशरी " मेदेकी तलीसे शुरू होतीहै यह १२ अंगुल लंबीहै इसका मुह जब खुलताहै किजब मेदासे निकली गिजा तगाजा कर इसके पीछे दूसरी आंत " सायम " है यह प्रायः खाली रहती है क्योंकि यह जिगरके पासहै और पित्तेका रास्ता इसमें खुलाहै जो पित्ता (सफरा) मरेह-आतोंके धोनेको आताहै वह पहले सायमपरही आताहै और जल्द इसे साफ करदे-ताहै इसके पीछे तीसरी आंत " दकीक " है यह सबसे बारीक और लंबी और पेच-दारहै जिससे गिजा इसमें देरतक ठैरे और उसमें जो कुछ सत्वहो उसे "मासारीका" खेंचले इसके पीछे चौथी आंत " अऊर " है इसमें एकही रास्ताहै यह थैलीसीहै इसमें गिजा पकी हुई भरी रहे और हरघड़ी दस्तकी हाजत नहो और जो कुछ मेदेमें हाजमा हुवा हो वह इसमें हाजमा होजाय इसमें एक हरारत इसी लिये रहतीहै और " फितक " (अंडवृद्धि) में इसीका भाग फोतोंमें उतर आताहै इसमें एक और छोटीसी आंत लगीहै यही फोतोंमें उतरतीहै इसके पीछे पांचवीं कौलून है यह अऊरसे पीछे है यह दाहनीतरफसे ऊपरको होकर बाईतरफ आईहै यह हलककी तरहपरहै इसमें मल रहताहै और दर्द कुलंज इसीमें होताहै इसके पीछे छठी आंत " मुस्तकीमहै " यह कुलंजके हलके बाद सीधी चलीगई है और गुदाकी त्रिवलीतक पहुँचीहै यह लगभग मेदेके बराबर चौड़ीहै और " कुव्वतजाजबा " इसमें है इस लिये कि मलको और आंतोंसे अपनीतरफ खेंचले और चौड़ाई इस लियेहै कि यह मलका खजानाहै जब यह मलसे प्रायः भरजातीहै तब दस्तकी हाजत होतीहै और जबै गिजा अऊर और मुस्तकीममें पहुँचतीहै तब विष्ठाकी सूरत बनजातीहै ॥

अंतडियोंके रोग ।

(१) जलकुल अमआ (गिजाआंतोंमें नठैरे कच्चे पके दस्त लगना) (२) इस हाल खून (खूनके दस्त आना)(३)पीब और पीला पानीसा दस्त लगना (४) जहीर राध लहूका थोड़ा थोड़ा दस्त लगना (५) मरोड़ आतोंका दर्द(६)नफख व कराकुर (आतोंमें अफारा और कुरकुरी होना) (७) कुलंज ऐंठनका दर्द रहना (८) हसर कबजीयत होना (९) किरम आतोंमें कृमि पड़जाना ॥

मिकअद गुदा ।

यह फुजला (मल) निकलनेका रास्ता है इसमें कुव्वत इनकबाज संकोचन शक्ति है जिससे हर समय मल नहीं टपकता बल्कि जब मुस्तकीम अंतडी मलको बहार निकालना चाहती है तब इसका मुह खुलता है ।

गुदाके रोग ।

(१) बवासीर (अर्श) मस्से(२) नासूरे मिकअद (भगंदर)(३)और ममिक अद) (गुदाका वरम) (४) शकाक मिकअद (गुदा तड़क जाना दराड़ होजाना) (५) इस रखाय मिकअद (गुदा सुस्त होजाना (६) खरूज मिक अद (कांच निकलना गुद भ्रंश) (७) कुरुहमिकअद (गुदामें जखम होजाना (८) खारिशमिकअद गुदामें खाज होना ॥

वृक्क (गुरदे)।

गुरदे दो हैं एक दाहना दूसरा बाँयां और ये दोनों अपनी जगह पुश्तके नीचे पहलुवोंके पास जमें हुवे हैं ये मांस चरबी और रगोंसे बने हैं स्वयं इनमें हस (स्पर्श शक्ति) नहीं है पर जो गशा इनपर है उसमें हस जादा है और हरेक गुरदा जिगरसे उन रगोंके वसीलेसे संबंध रखता है जो जिगरसे गुरदोंमें आई हैं उन दोनों रगोंको कई " तालईन " कहते हैं और जो गिजाके द्रव भागमें खून और पानी मिला हुवा जिगरमें रहता है उसमेंसे पानी (मूत्र) का भाग इन रगोहींके जरयेसे गुरदोंमें आता है और खून और पानीको येही रगें जुदा करती हैं अर्थात् पानीको खेंच लेती हैं और खूनको जिगरसे नहीं खेंचती और गुरदोंसे दो रगें नीचेको और निकली हैं जो मसानेमें गई हैं इस लिये कि गुरदोंमें जोंही मूत्रका भाग आवे उसे मसानेमें पहुँचा दें गुरदोंका आकार ऐसा है जैसे आधा खोपरा मूंधा रक्खा हो रंग हलका सुरख है इनको अरबीमें कुलया कहते हैं ॥

गुरदोंके रोग ।

(१) सूअमिजाज कुलया गुरदोंमें सरदी गरमी तरी खुशकी जादा हो (२) गुरदेमें " दुबीला " (फोड़ा होना) (३) जोफ गुरदा (दोनों गुरदोंमें जौफ हो पेशाबमें

तलछट हो कभी दरदभी हो) (४) रीहुलकुलया (गुरदोंमें रीह अर्थात् गलीज हवा हो जिससे गुरदों और कमरमें दर्द हो (५) वजेउलकुलया (दर्द गुरदा) (६) वरमगुरदा गुरदोंमें वरम होना जिससे तप प्यास दर्द सर निद्रा नाश और गुरदोंमें दर्द और जलन कैमें सफरा आवे दस्त पेशाव कम हो (७) गुरदोंमें वरम हो फुनसियां होजाय कुरा पड़जाय इसमें पेशावमें खून और कुरंडसे आवे (८) गुरदोंमें अलाइयांसी हो जावें (९) जयावेतश पेशाब बारबार या जादा आवे प्रायः पानी पीतेही पेशाब आवे (१०) गुरदोंमें रेत शकरसा पड़जावे या छोटी पथरीसी पड़जावे ॥

मसाना (वस्ति)।

मसाना एकथैली है जिसके दो तबके हैं तबका भीतरी तो असबी है ताकि मूत्र-की तेजी मालूम हो और बाहरी तबका (परत) करड़ी झिल्लीका है कि भीत-रलेकी रक्षा करे मूत्रसे भरनेपर फट न जाय और मसानेमें एक नाली है अगली तरफ यही मूत्र बाहर निकलनेका मार्ग है जो मसानेसे लिंगेंद्रियमें होकर गुजरे है यह मूत्रनाली पुरुषोंके तीन खम रखती है और स्त्रियोंके एक खम मसानेमें दोनों गुरदोंसे दो रगें आई हैं जिनसे गुरदोंमेंसे मूत्र मसानेमें आवे और मूत्र मसानेमें गुरदोंसे कतरे टपक कर आता है और मसानेमें जमा होता है ॥

मसानेके रोग।

(१) औराममसाना (मसानेका वरम जिसमें मूत्ररुकर२आवे तप हो) (२) कुरह मसाना (मसानेमें कुरा पडजावे दर्द हो पीप आवें (३) मसानेसे पेशाबमें खून मिला आवे और खुरँडसे आवें (४) मसानेमें खून जमना यह खुनी पेशाबके बाद प्रायः होताहै इसमें शरीर कांपे ठंढापसीना होवे (५) दर्दमसाना (यह कई सबबसे होता है वरमसे कुरेसे पथरीसे (६) मसानेका अफरा (७) (हिस्सात मसाने मसानेकी पथरी या रेत या शर्करा) (८) पेशाबमें जलन होना (९) एहतबासुलबोल (पेशाब बंध होना) (चाहो वरमसे चाहो गुरदोंके वरमसे चाहोपथरीसे (१०) तकतीरुलबोल (पेशाब कतरे२ टपकके आना) (११) फराशुलबोल (नींदमें पेशाब निकल जाना और मालूम नहो ना) (१२) बोलुद्दम (खुनकापेशाब आना) ॥

कुजेबा (लिंग)

यह अवयव थोड़ेसे मांस और बहुतसी शिराओं और पट्ठों और नसोंसे बनाहै जब मैथुनादि करनेकी वांछा चित्तमें होतीहै तब मनीके प्रवर्त होनेके साथ रीहगलीज नसोंमें भरजातीहै और लिंगको लंबाव और मुटाईमें फुला देतीहै और जब मनी

निकलजातीहै तब वहरीह गलीजभी खारिज होजातीहै इस स्पर्शशक्ति हसमें बहुतहै ॥

खुसिये (वृषण)

दोनों खुसिये हरेक इनमेंसे मांस और मेदा तथा शिराओंसे बनाहै और जब मनी शरीरसे टपककर इनमें आती है तौ यहांकी हरारतसे गाढी और सुपेद हो जाती है ॥

इन स्थानोंके रोग प्रत्यक्षही हैं जैसे लिंगके रोग १ आतशक २ सूजाक ३ नुकसानवाह (क्लैब्य) ४ जिरयान (प्रमेह) ५ कसरत एहतलाम (स्वप्नमेंवीर्य गिरना या शीघ्रवीर्य गिरना) ॥

खुसियोंके रोग (१) खुसियोंका वरम (२) खुसिये बढजाना (अंडवृद्धि) (३) खुसियोंका दरद (४) खुसियोंमें खाज होना ॥

रहम (स्त्रियोंका गर्भाशय)

यह एक असवानी (झिल्लीका) अवयव है इसका स्थान मसाने और अमआय मुस्तकीम और नाभिके दरम्यान है और इसकी गरदन भगतक गई है और इसकी जड़में भीतरको दोनों खुसियेभी होते हैं " रहम " के दोतबके होते हैं अंदरके तबकेमें रगें और नशेव बहुत हैं गोया यह चुनवटदार थैली है और बाहरका तबका अंदरके तबकेका गिलाफसा है रहमकी लंबाई नाभिसे योनिके भीतरीद्वारतक है (यह रहमकी गरदन है) यह योनि अनुमान छः अंगुल होती है बल्की जादासे जादा ११ अंगुलसे जादा नहीं होती रहमका मुँह अंदरूनी हरवखत खुला नहीं रहता है सिरफ हैजके कुछदिनबादतक खुला रहता है फिर " नुतफा " कबूल करनेपर या हैजसे जादा दिन होनेपर बंद हो जाता है ॥

रहमके रोग ।

१ बच्चा न होना (वंध्यापना) २ कसरतसे हैज आना ३ रहमसे रतूवत बहना (प्रदर) ४ एहतवासतमस (हैजबंध होजाना) ५ रहम निकल आना ६ औराम रहम (रहममें वरम होना जिसमें नाभिमें दरद तप जुबान स्याह होना और पुश्तमें दर्द होना ७ सरतान रहम (रहममें खोलरी पड़ना) ८ इखतनाकरहम (रहममें घुटकी होना जिससे गशी बेहोशी होना और तशन्नुज होना ॥

(स्थान संबंधसे कुछ रोग दिखाये हैं बहुतसे रोगोंकी संख्या और भेद और जगह उत्तर तंत्रमें वा चिकित्सित स्थानमें उन उन रोगोंकी चिकित्साके मोकेपर यूनानी तथा डाक्टरी मतसेभी कहेंगे वहां देखना ॥

यूनानी प्रकीर्ण रोगोंका संक्षेप पृष्ठ और शाखाओंके रोग ।

(१) वजे उल जुहर (पीठका दर्द) (२) वजे मुफासिल (जोड़ोंका दर्द गठिया) (३) पिंडलियोंमें मोटीनसें होना और गाँठें पड़ना (४) फीलपा (श्लीपद) (५) वजे उल अकब (एडीका दर्द) (६) नुकरस (टाकनेसे अँगूठेतक पीड़ा) (७) वजे उल वरक (चूँतड़का दर्द) (८) अरकुन्निसा पाँवमें झन मनाहटका दर्द अर्थात् राँगन वाय) ॥

रक्त संबंधी रोग ।

(१) गजील खूनसे सुर्ख वर्म (२) सुर्खवादा (विसर्प) (३) आतशक (४) दबीला (एक भांतका फोड़ा) (५) सलआ (रसोली) (६) उकद (गाठन ग्रंथी) (७) सरतान (कछवे जैसा सोथ और पाक) (८) रिश्ता नारू (स्नायुक) (९) गंज (१०) अलाइयाँ (११) खुश्क खारश (सूखी खाज) (१२) गीली खारश (तर खुजली, पामा) (१३) कोवा (दाद) (१४) मुहासे (मुख पिडिका) (१५) तोतह (झांई) (१६) विसकटा (१७) आवले फिरंग (फिरंग रोग एक भांतकी आतशक) (१८) चेचक व खसरा (१९) वरस (श्वेतकुष्ठ) (२०) बरस असवद (स्याहदाग) (२१) खाल (तिल) (२२) सालील (मस) (२३) फसाद लौन (रंग विगड़ जाना) (२४) हाथ पाँव फटना (२५) तकशीर जिल्द (त्वचा परसे छिल केसे उतरना) (२६) जुजाम (कुष्ट अंगुलिये गलना) (२७) नाखून फटना ॥

बालोंके रोग ।

(१) तसाकुत शेर (बाल उड़ना बालोंकी जड गलना) (२) तशकीक शेर (बालोंकी नोक फटना) (३) शेब (बे समय बाल सुपेद होना (पलित)

अन्यरोग ।

(१) अरकुद्दम (पसीनेमें सुरखी खुन आना) (२) वदनसे दुर्गंध आना (३) फरवही (बहुत मोटा होजाना, स्थौल्य) (४) लागरी (बहुत दुबला होना, कार्श्य,) (५) जूं तथा लीखें जादा पडना ॥

तपके भेद ।

(१) तप हमीयूम (एक दिनमें एकवार उतरनेवाला और जरा फुरफुरी देकर चढे) (२) तप खिलतिया बलगमी फिसाद जादा हो तौ रोज तपरहे जो सफराकी फिसादसे हो तो एकदिन छोडकर हो और जो सौदाके फिसादसे हो तो दोरोज बीचमें छोडकर चौथे दिन होवे और तप खूनी फिसादसे हो तो रोज जोरसे चढे पर बना हरसमय रहे ॥

और ये खिलती तप यदि उस खिलतका माद्दा कमहो तौ ऊपर लिखे मूजिब दौरेके तरीकपर आतेहैं और यदि माद्दा अधिक हो तौ जल्दी २ दौरा करे यास्थिर होजावे॥

(क) बलगमी तपमें शरीर भारीहो आलस्यहो अर्थात् कफज्वरके लक्षणहो (ख) सफरावी तपमें बेचैनी गरमी प्यास उबकाइ (पित्तज्वरके लक्षणहो) (ग) सौदावी तपमें शरीरमें दर्द हडफूटन जमाही जादाहो बढनेपर कंप और ऐंठनहो तथा

उठउठकर भगना बाय भडकना (वातज्वरके लक्षणहो) (घ) तप खूनी चेहरा लाल सिरमें दर्द हलकमें फुन्सीवगेरा इसमें बढनेसे सरसाम हो मलाप तथा वेचैनी विशेषहो (रक्तज्वरके लक्षणहो) (३) हमीयात मुरक्कव दो या जादा खिलत जिसमें बिगडें और उन्हीं खिलतोंकी अलामत (लक्षण) मिलें (द्वंद्वज तथा त्रिदोषज या संनिपात) (४) वे तप जो आमाससे होवें ॥

(५)हमीगशिया (वे तप जो वे होशी और जौफ पैदा करें ये कच्चे बलगमसेप्रायः होतेहैं

(६) हमीदिक तपेदिक (बारीक तप जिसमें मीठी ज्वरी सदाबनी रहे अर्थात् जीर्णज्वर ठैरजाना) ॥

यूनानीकी प्रकीर्ण बातें।

शारीरकका सारांश संक्षेप लिखनेसे पीछे कुछ २ प्रकीर्णबातें जो बहुत आवश्यक हैं और जिनका जानना वैद्योंको बहुत जरूरी है वे लिखते हैं (१) "खिलत" खिलत उस द्रव पदार्थको कहते हैं जो बहुत शीघ्र शरीरमें फैलकर सब अंगोंमें पहुँच सके या यूँ कहो कि जो गिजाहम खाते हैं उससे पहले जो वस्तु द्रव हमारे शरीरके पोषणके लिये बनती है उसे खिलत कहते हैं खिलत चार हैं (१) खून यह गरम तर है (२) सफरा (पित्त) गरम खुश्क (३) बलगम (कफ सरद तर है (४) सौदा सरद खुश्क फिर इन हरेकके दो २ भेद होते हैं १ तबई स्वच्छ २ गैरतबई विकार युक्त ॥

आजाय रईसा-आजाय रईसा तीन हैं प्रथम दिल दूसरे दिमाग तीसरे जिगर) दिल कुवत हयातका मबदा है अर्थात् जीवनी शक्तिका मूल है दिमाग हस (स्पर्श ज्ञान और ज्ञानेंद्रियों) तथा हरकत चलन शक्ति कर्मेंद्रियोंका मूल है जिगर गिजाद ही तमाम बदन (पोषण शक्ति) का मूल है जिगरमें कूवत तबई रहती है और दिलमें कुव्वत हैवानी रहती है तथा दिमागमें कुव्वत नफसानी रहती है ॥

जैसे चार खिलत हैं वैसेही मनुष्योंकी प्रकृति (खासियत) भी चारही है (१) खूनी (२) सफरावी (३) बलगमी (४) सोदावी ॥

बदनका रंग बलगमकी प्रधानतासे शरीरका रंग सुपेद होता है और रक्त (खून) की प्रधानतासे रंगमें सुरखी विशेष होती है तथा सफराकी प्रधानतासे पीला रंग होता है और सौदाकी प्रधानतासे स्याह ॥

खून रुधिरको कहतेही है यह जिगरमें बनता है सफरा खूनके पकावके ऊपरके फेनमें बनता है और यह बनना तो जिगरहीमें हैं पर रहता है मुख्यतासे मरारे अर्थात् पित्तकी थैलीमें सौदा यह खूनके पकावका तलछट है इसका नियत स्थान तिल्ली है बलगम यह वह कच्चा माद्दा (रस) है जिससे खून बनता है यह मेदेमें रहता है॥

यूनानी हिसाबसे कुल शरीरमें २४२ हड्डियाँ होती है इन बातोंका विशेष वर्णन देखना होतो देखो कानूनचा बुकरातीया तिब्ब अकबर या अकसीर आजम वगैरा ॥

पाठकोंका शुभचिंतक-मुरलीधर शर्माराजवैद्य-टीकाकार.

श्री ।

सबका सारांश और ऐक्य ।

परिशिष्ट भाग ३

शरीरके मुख्य २ अवयवोंके नामोंका भाषांतर ।

संस्कृतनाम-	अंग्रेजी(डाक्टरी)नाम-	यूनानीयाफारसी अरबी नाम-	देशभाषा
मूर्द्धा	ब्रेन	दिमाग	दिमाग
बृहत्मस्तिष्क	सेरेवरम		दिमागका अगला बड़ा हिस्सा--
क्षुद्रमस्तिष्क	सेरेबलम		दिमागका पिछला छोटा हिस्सा
नेत्र	आई	ऐन (चश्म)	आँख
कर्ण	ईर	अजन (गोश)	कान
नासिका	नोज	अनफ (वीनी)	नाक
मुख	मौथ	दहन	मूह
दंत	टूथ	दंदान	दांत
आहारनलकाका ऊपरिभाग	ईसा फेगस	मरी	नाली
श्वासनलका	लेरिंक्स	हंजरा	
श्वासनलीका अधो भाग	ट्राकिया	”	
फुप्फुस	लंग्स	शुश (रिया)	फेफड़े
आमाशय	स्टमक	मेदा	
तन्वंत्र	स्मालइंटस्टाइंस	अमआये दकीक	बारीक अंतड़ियाँ
	डिओडिमन	असना अशरी	
	जिज्यूनम	साइम	
	एलीअम	दकीक	

स्थूलांत्र	लार्जइटस्टांइंस	अमआये गलीज २	मोटीअंतड़िया
	सीकम	अझूर	
	कोलन	कोलन	
	एसिंडिंग कोलन	"	
	ट्रांसवर्सकोलन	"	
	डिसडिंग कोलन	"	
मलाशय	रेकटम	मुस्तकीम	
यकृत्	लिवर	कवद जिगर	लीयार
पित्ताशय	गालब्लाडर	मरारा	पित्ता
हृत्कमल	हार्ट	कलव दिल	दिल
प्लीहा	स्पिलीन	तिहाल	तिल्ली
वृक्क	किडनी	कुलया गुरदे	गुरदे
मूत्राशय	ब्लाडर	मसाना	पेडू
अंडकोश	टैस्टीकिल्स	खुसिये	फोते
लिंग	पैनिस	कुजैब	मरदी
गर्भाशय	यूटरस	रहंम	
नाभि	नैविल	नाफ	सूंडी
पृष्ठवंश	स्पाइन	जुहर	पीठ
हस्तद्वय	सुपीरियरएक्सट्रमीटीज		
पादद्वय	इनफीरियर एक्सट्रमीटीज		
यकृतनाडी		मासारीका	
रुधिर	ब्लड	दम खून	खून
पित्त	बाइल	सफरा	पित्त
कफ	म्यूकस	बलगम	कफ
कापालिक शिरामूल	स्पाइनलकार्ड	नुखा	

सीकम अर्थात् अझूरके मूलमेंसे एक छोटी अंतड़ी निकलीहै उसे अंग्रेजीमें एपिंडकससीसाई कहतेहैं और यह अंतडीकाभी काम करतीहै ।

सबके मतका सारांश और ऐक्य ।

यदि वैद्यक यूनानी और डाक्टरी मतके शारीरकको विचारकर देखें तो ऐसा मालूम होताहै कि यूनानी और डाक्टरीका शारीरक तो मिलताही है परंतु वैद्यकके शारीरकमें कुछ न्यूनाधिक पाया जाताहै इसका कारण यह जान पडताहै कि वैद्योंने गर्भके समय जैसे शरीर बनताहै उसकेही अनुसार उत्पत्ति लिखीहै और बीजमात्र वर्णन कियाहै फिर यूनानीवालोंने उसका अधिक विवेच किया जैसे बीजसे वृक्ष बनता है उसके पीछे डाक्टरोंने औरभी खोजकरके उसमें बढायाहै ॥

देखो वैद्योंने ३०० हड्डियां लिखीं वह कुछ अयोग्य नहीं क्योंकि बहुतसी हड्डियां छोटी अवस्थामें जुदी होती हैं पर अवस्था बढनेपर मिलकर एक होजातीहैं (जैसे सेकरम पृष्ठवंशके नीचेकी हड्डी जिसमें आद्य अवस्थामें पांच जोड होतेहैं पर जवानीमें एकही प्रतीत होती है) इत्यादिकी वैद्योंने भिन्न लिखा और डाक्टरों आदिने एक लिखा बल्कि खुद डाक्टर लोगही लिखतेहैं कि पहले ये५ भिन्न भिन्न होतेहैं बस डाक्टर २४६ हड्डियां मानतेहैं और यूनानी २४२ तो हड्डियोंमें इसी प्रकार कुछ अंतरहै सो हो पर वास्तवमें अंतर नहीं ॥

आमाशय (मेदे) में प्रथम आहार जाना सब मानतेहैं सो प्रत्यक्षहीहै तथा यकृत (जिगर) रसको लेकर रुधिर बनानेमें प्रवृत्त होताहै इसेभी सब एक स्वर होकर मानतेहीहै प्लीहाको वैद्य और डाक्टर रक्त शोधन करनेवाला कहतेहैं यूनानी इसे सोदा (रुधिरकी तलछट जलन) का स्थान बतातेहैं सोभी कुछ अंतर नहीं क्योंकि जब यह रक्तकी तलछटको छांटताहै तो रक्तशोधनेवाला हुवाही ॥

हृत्कमल (दिल) सबके मतमें जीवका आधार और सर्वत्र जीवनी शक्ति पहुँचानेवाला रक्तकोश है सो ठीकहीहै ॥

अंतडियां किसीके मतमें६ हैं किसीके मतमें२किसीके मतमें ७ किसीकेमें कितनी यह बातयूंहै कि वास्तवमें परिपाककी अंतडी मेदेसे गुदातक एकही कई पेच खाये हुवेहै कहींसे मोटी कहीं पतली कहीं लंबी कही गुच्छेदार इसे किसीने (यूनानीवालोंने) ६ भाग मान लिये वैद्योंने दोही भाग माने (तन्वंत्र और स्थूलांत्र)इसीप्रकार डाक्टरोंनेभी पहले दोभाग (पतली अंतडियां और मोटी अंतडियां) मानेहैं फिर इन्हींके कई भेद यूंमानेहैं कि पतलीके तीन भाग जुदे और मोटी (कोलन) के भाग जुदे

फुप्फुस (फेफडा) वैद्योंने उत्पत्तिके समय हृदयसे बाईं तरफ उत्पन्न होता है ऐसा माना है फिर हृत्कमलके दाहनी और बांईतरफ फैल जाता है) और प्राणवायु श्वासका मुख्यस्थान हृदय अर्थात छातीही माना है सो यहभी विशेष विरुद्ध

नहीं है यूनानीवाले और डाक्टर श्वासका स्थान मुख्य फेफडा कहते हैं सो उर अर्थात् छातीका भींतरी भागही तो फेफड़ोंका स्थान है ॥

पित्ता जिसे यूनानीवाले मरारा और डाक्टर गाल ब्लाडर कहते हैं यह जिगरसे लगा हुवा ऊपरको है सो वैद्योंके मतसेभी पित्ताशय दाहनी तरफ यकृत्के समीपही माना है कई लोग इसेही मानते हैं ॥

वृक्क (गुरदे) डाक्टर इसे मूत्रका बनानेवाला मानते हैं और यूनानी कहते हैं कि ये गुरदे जिगरसे मूत्रका भाग लेते हैं अर्थात् जिगर जब रसका रुधिर बनाता है तो सारभाग रुधिरको तौ शिराओं द्वारा शरीरमें पहुचाता है और उसका जलरूप मल अर्थात् मूत्र गुरदोंकी तरफ दाखिल करता है वहांसे मसानेमें जाता है पर वैद्यकमें कहीं ऐसा नहीं पायागया वैद्यकमें ऐसाही लिखा है कि बस्ति अर्थात् मसा-ना कोरे कलशके समान उदरके अधोभागमें है जब यकृत् रसका रुधिर बनाता है तथा आमाशयसे मलका भाग आंतोंमें आता है तब उक्त स्थानोंमेंसे सहस्रों सूक्ष्म नालियोंद्वारा झिर झिरकर मूत्र स्वयं मसानेमें इकट्ठा हो जाता है देखो निदानस्थान तृतीय अध्याय जहाँ बस्तिका विवेचन है ॥

बस्ति (मसाना) मूत्रका स्थान हैं इसे सब मानतेही हैं परंतु यूनानीवाले और डाक्टर ऐसा मानते हैं कि इसमें दोनों गुरदोंसे दो नालियोंद्वारा मूत्र आता है और वैद्योंके मतसे अनेक नालियोंद्वारा आमाशय यकृत् वृक्क और अंत्रादिसे इसमें मूत्र झिर झिरकर आता है अस्तु यहभी कुछ विरुद्ध नहीं क्योंकि और अन्य सूक्ष्म ना-लियां दीखाई ठीक २ नहीं देती और उन्हींमेंसे ये दोनाली स्थूल होंगी जो दिखाई देती हैं ॥

मूर्द्धा (दिमाग) वैज्ञानिक शक्ति और शिराओं तथा पट्ठोंका मूल है इसे सब मानतेही हैं परंतु वैद्य हृत्कमलको बुद्धिका स्थान सर्वोत्कृष्ट मानते हैं और यूनानी वाले और डाक्टर दिमागको सर्वोत्कृष्ट बुद्धिका स्थान मानते हैं यहभी कुछ विशेष विरुद्धता नहीं क्योंकि सबके मतमें दोनोंही बुद्धि और विज्ञानके मुख्य स्थान हैं किंबहुना विज्ञेषु इति ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना--

खेमराज श्रीकृष्णदास,

" श्रीवेङ्कटेश्वर छापाखाना--(मुम्बई)